

"HINDI DALIT UPANYASON MEIN SAMAJ, SANSKRITI AUR SATTA KE SAWAL"

A Thesis submitted to the University of Hyderabad in partial fulfillment
of the requirement for the award

of
Doctor of Philosophy
in
Hindi
submitted

By

C.SURESH



**DEPARTMENT OF HINDI
SCHOOL OF HUMANITIES
UNIVERSITY OF HYDERABAD
HYDERABAD - 500046
TELANGANA, INDIA
2016**

भूमिका

दलित साहित्य एक ऐसा साहित्य है जिसमें सामाजिक, सांस्कृतिक और राजनीतिक क्रांति का समावेश है। यह क्रांति ब्राह्मणवाद, धर्म, जाति, अंधविश्वास, रीति-रिवाज, परम्परा और संस्कृति के खिलाफ है। जिसने सदियों से धर्म के नाम पर दलितों का शोषण किया है। जाति श्रेष्ठता के नाम पर दलितों को अछूत माना गया और उन्हें अपमानित जीवन जीने के लिए विवश किया गया उसके खिलाफ दलित साहित्य है।

वर्तमान में हिन्दी साहित्य की दिशा और दशा बदली है उसमें दलित साहित्य प्रमुख है, जो अब तक मुख्यधारा के साहित्य से उपेक्षित किया गया था। भारत में सदियों से भारतीय समाज-व्यवस्था में सवर्णों ने धर्म को आधार बनाकर दलितों पर अनेक प्रकार से शोषण और अत्याचार किए हैं, जो आज भी समाज में उसी मानसिकता के साथ जारी हैं। समाज के प्रत्येक क्षेत्र में उन्हें अपमानित, अस्पृश्य और शोषण का शिकार बनाया गया, साथ ही उन्हें स्वतंत्रता, मानवीयता तथा सामाजिक समानता के अधिकारों से उपेक्षित किया गया। सामान्य रूप से दलित साहित्य का आरम्भ 1914 में हीरा डोम की कविता 'अछूत की शिकायत' से माना जाता है लेकिन साहित्य में दलित-क्रांति की शुरुआत बहुत पहले ही आदिकाल में सिद्धों और नार्थों के द्वारा हो चुकी थी। कबीर, रैदासे, बसवेश्वर आदि ने वर्ण व्यवस्था, बाह्याडम्बर तथा भेदभाव का प्रमुख रूप से विरोध किया था। उस परम्परा को आगे बढ़ाने में ज्योतिबा फुले, रामस्वामी पेरियार तथा अम्बेडकर से होते हुए आज इन लोगों की विचारधारा पर दलित साहित्यकारों के माध्यम से दलित साहित्य एक क्रांति के रूप में हमारे सामने है।

दलित साहित्य का उद्देश्य दलितों में चेतना जगाना और सामाजिक, सांस्कृतिक एवं राजनीतिक अस्मिता को प्राप्त करना है। दलित साहित्य हिन्दू जाति व्यवस्था का विरोध करता है। यह विरोध अपने ऊपर हो रहे अपमान, छुआछूत एवं शोषण तक ही सीमित न रह कर अपने सामाजिक, सांस्कृतिक और सत्ता के अधिकारों के प्रति अब तक उपेक्षित किया गया है। डॉ.बी.आर. अम्बेडकर ने संविधान में अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति और पिछड़ी जाति के लिए सामाजिक और आर्थिक विकास के लिए आरक्षण के अधिकारों का उल्लेख किया है, लेकिन आज भी दलित अपने अधिकारों से वंचित है। इसलिए दलित साहित्य के माध्यम से चेतना और विकास होना संभव है। डॉ.बी.आर. अम्बेडकर कहते हैं कि शिक्षित बनो, संगठित रहो और संघर्ष करो। दलित विकास के लिए शिक्षा ही मुख्य आधार है।

भारतीय हिन्दू सामाजिक व्यवस्था ब्राह्मणवादी समाज व्यवस्था की देन है। इसलिए समाज में धर्म के आधार पर जाति-उपजाति, वंश, कुल, गोत्र आदि को स्थापित किया है। भारतीय सामाजिक-व्यवस्था विषमता और भेदमूलक है। दलित साहित्य में दलितों की पीड़ा, वेदना, उत्पीड़न अभिव्यक्त है। दलित साहित्य सवर्णों द्वारा निर्मित धर्म और संस्कृति का विरोधी है। दलित साहित्य अन्य विधाओं के साथ-साथ उपन्यासों के रूप में भी उभरकर लोगों के सामने आया है। इन उपन्यासों में समाज, संस्कृति और सत्ता का यथार्थ चित्रण हुआ है। इन उपन्यासों में प्रमुख रूप से देवीदयाल सेन का 'मानव की परख', जयप्रकाश कर्दम के 'करुणा' और 'छप्पर', ओम प्रकाश गौतम का 'कड़वी यादे', धर्मवीर का 'पहला खत', प्रेम कपाड़िया का 'मिट्टी की सौगंध', सत्यप्रकाश का 'जस तस भई सबेर', डॉ.विजयी का 'सैनिक का खून', डी.पी.वरुण के 'फूल बने आंगारे' और 'रक्त का रिश्ता', प्रियदर्शी का 'कमलकान्त,आई.ए.एस', मोनदास नैमिशराय के 'आज बाज़ार बन्द है', 'क्या मुझे खरीदोगे', 'वीरांगना झलकारी बाई', 'ज़ख्म हमारे', 'मुक्ति पर्व', और 'महानायक बाबा साहेब डॉ.अम्बेडकर', रघुवीर सिंह का 'आक्रोश', नन्दलाल भारती के

‘अमानत’ और ‘चाँद की हँसूली’, कावेरी का ‘मिस रमिया’, अजय नावरिया का ‘उधर के लोग’, उमराव सिंह जाटव का ‘थमेगा नहीं विद्रोह’, रुपनारायण सोनकर के ‘डंक’, ‘सूअरदान’ और ‘गटर का आदमी’, एस.आर.हरनोट का ‘हिडिम्ब’, रामस्वरूप संखवार का ‘भूगोडू के पुजारिन’ और सुशीला टाकभौरै का ‘नीला आकाश’ इत्यादि।

उपरोक्त इन तमाम दलित उपन्यासों में केवल दलितों का चित्रण न हो कर पूरे समाज का चित्रण किया गया है। इन उपन्यासों में समाज के कटु यथार्थ एवं यातना पूर्ण जीवन का चित्रण है। जो अब तक हिन्दी साहित्य से लगभग उपेक्षित रहा है। समाज में दलित व्यक्ति को सामाजिक, सांस्कृतिक, राजनीतिक और आर्थिक विकास के लिए कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है। समाज में जाति व्यवस्था इतनी हावी है कि दलित कितना भी शिक्षित हो जाए लेकिन मरने के बाद भी जाति उसका पीछा नहीं छोड़ती है। दलित आज भी धर्म, अंधविश्वास, परम्परा और रूढ़ियाँ आदि से ग्रसित है। ये सारी परिस्थितियाँ हमें इन उपन्यासों में देखने को मिलता है।

भारत में सामाजिक, सांस्कृतिक, राजनीतिक और आर्थिक विकास किस रूप में हो रहा है और समाज में दलित साहित्य दलित समाज को किस रूप में प्रभावित कर रहा है। इन विषयों को अपने शोध-प्रबंध का विषय ‘हिन्दी दलित उपन्यासों में समाज, संस्कृति और सत्ता के सवाल’ में कार्य की दृष्टि से पाँच अध्यायों में विभक्त किया है।

प्रथम अध्याय है- ‘हिन्दी दलित उपन्यासों का परिचय।’ इस अध्याय के अन्तर्गत हिन्दी दलित उपन्यासों का परिचय देते हुए शुरुआत से लेकर अन्त तक विश्लेषणात्मक परिचय दिया गया है साथ ही इन उपन्यासों का समाज में क्या महत्व है उस पर भी प्रकाश डाला गया है।

द्वितीय अध्याय है- 'हिन्दी दलित उपन्यासों में चित्रित समाज।' इस अध्याय के अन्तर्गत समाज का अर्थ और परिभाषा देते हुए हिन्दी दलित उपन्यासों में किस रूप में समाज का चित्रण हुआ है इसके हर एक बिन्दुओं को परखने की कोशिश की गई है। जिस के अन्तर्गत सामाजिक विभाजन, जाति की भूमिका, शिक्षा की स्थिति, परिवार की समस्या आदि से सम्बन्धित महत्वपूर्ण बिन्दुओं पर विचार किया गया है।

तृतीय अध्याय है- 'हिन्दी दलित उपन्यासों में चित्रित संस्कृति।' इस अध्याय के अन्तर्गत संस्कृति, संस्कृति के उद्देश्य पर प्रकाश डाला गया है। जिसमें ब्राह्मणों की संस्कृति, दलितों की संस्कृति, मुस्लिम संस्कृति को देखने और समझने का प्रयास किया गया है। इन संस्कृतियों में मौजूद धर्म, अंधविश्वास, विवाह, परम्परा, व्यवसाय, वेश-भूषा आदि पर विस्तृत चर्चा की गई है।

चतुर्थ अध्याय है- 'हिन्दी दलित उपन्यासों में चित्रित सत्ता के सवाल।' इस अध्याय के अन्तर्गत हिन्दी दलित उपन्यासों में चित्रित सत्ता के सवालों पर विचार करते हुए राजनीतिक सत्ता, आर्थिक सत्ता, धार्मिक सत्ता का चित्रण इन उपन्यासों में किस तरह हुआ है, का विस्तारपूर्वक अध्ययन किया गया है। इसमें डॉ. बी.आर. अम्बेडकर और गाँधी के राजनीतिक सत्ता के संदर्भ में उठाये गये सवालों को भी देखा गया है। साथ ही ब्रिटिश साम्राज्य तथा आजादी के बाद दलितों की क्या स्थिति रही उस पर भी प्रकाश डाला गया है।

पंचम अध्याय है- 'हिन्दी दलित उपन्यासों में भाषा और शिल्प।' इस अध्याय के अन्तर्गत हिन्दी दलित उपन्यासों में आत्मकथात्मक शैली, वर्णनात्मक शैली, पत्रात्मक शैली, अंग्रेजी भाषा का प्रयोग, गाँव की बोली, मुहावरे और लोकोक्तियों का प्रयोग दलित समाज में किस तरह हुआ है उसका विवेचन किया गया है।

शोध-विषय के निर्धारण से लेकर शोधकार्य पूर्ण होने तक मेरे शोध-निर्देशक प्रो.वी.कृष्ण जी ने मेरी जो सहायता की वह अविस्मरणीय है।

डॉ. जयप्रकाश कर्दम जी का विशेष आभार व्यक्त करता हूँ जिन्होंने मेरे इस शोधकार्य को आगे बढ़ाने में और अनिवार्य सामग्री को उपलब्ध कराने में विशेष सहयोग दिया।

अपने शोध-कार्य के दौरान मुझे डॉ. जी. राजु जी ने जो सहयोग दिया उसके लिए मैं विशेष आभार व्यक्त करना चाहूँगा। इनके अतिरिक्त सियाराम, प्रकाश चिलनवंत, कृष्ण सोनी, जितेन्द्र कुमार और संदीप जैसे मित्रों ने भी इस शोध-कार्य में मुझे सहयोग दिया है। मैं अपने सहपाठी मित्रों का विशेष रूप से आभारी हूँ जिन्होंने मुझे एम. ए. से लेकर अबतक समय-समय पर मानसिक एवं आर्थिक रूप से सहायता की। इसमें मुख्यरूप से नृसिंह बेहरा, के. रवि, दुर्गाराव, गौरांग आदि का हृदय से आभारी हूँ।

अपने माता-पिता और परिवार का ऋणी हूँ जिनके आशीर्वाद से आज मैं यहाँ तक आ सका। मेरी पत्नी का सहयोग मुझे सभी प्रकार की चिंताओं से मुक्त होकर अपने शोध-कार्य को अंजाम देने में मदद की। मैं उन सभी हृष्य अदृष्य स्रोतों के प्रति भी आभार व्यक्त करता हूँ जिनका सहयोग मुझे इस शोध कार्य के लिए लगातार प्रेरित करता रहा।

सी.सुरेश

अनुक्रमणिका

	पृष्ठ सं.
भूमिका	i-v
प्रथम अध्याय	
हिन्दी दलित उपन्यासों का परिचयात्मक विश्लेषण	1-59
1.1 दलित उपन्यासों का महत्व	
1.2 हिन्दी दलित उपन्यासों का परिचयात्मक विश्लेषण	
1.2.1 मानव की परख	
1.2.2 करुणा	
1.2.3 कड़वी यादें	
1.2.4 पहला खत	
1.2.5 छप्पर	
1.2.6 मिट्टी की सौगंध	
1.2.7 जस तस भई सबेर	
1.2.8 सैनिक का खून	
1.2.9 फूल बने अंगारे	
1.2.10 रक्त का रिश्ता	
1.2.11 कमलकान्त	
1.2.12 आज बाज़ार बन्द है	

- 1.2.13 आक्रोश
- 1.2.14 क्या मुझे खरीदोगे
- 1.2.15 वीरांगना झलकारी बाई
- 1.2.16 अमानत
- 1.2.17 मिस रमिया
- 1.2.18 उधर के लोग
- 1.2.19 थमेगा नहीं विद्रोह
- 1.2.20 डंक
- 1.2.21 चाँदी की हँसुली
- 1.2.22 ज़ख्म हमारे
- 1.2.23 मुक्ति पर्व
- 1.2.24 हिडिम्ब
- 1.2.25 भगोड़ू पुजारिन
- 1.2.26 महानायक बाबा साहेब डॉ.आम्बेडकर
- 1.2.27 नीला आकाश
- 1.2.28 सूअरदान
- 1.2.29 गटर का आदमी

द्वितीय अध्याय

हिन्दी दलित उपन्यासों में चित्रित समाज

60-125

2.1. समाज की अवधारणा

- 2.1.1. भारतीय समाज की संरचना
- 2.1.2. जाति
- 2.1.3. छुआछूत
- 2.1.4. उपेक्षित समाज
- 2.1.5. अमानवीय व्यवहार
- 2.1.6. संगठित समाज
- 2.1.7. चेतना
- 2.1.8. मुस्लिम समाज
- 2.1.9. पारिवारिक जिम्मेदारी
- 2.1.10. जीव हिंसा
- 2.1.11. दलित-परंपरा
- 2.1.12. स्वाभिमान
- 2.1.13. देश भक्ति
- 2.1.14. स्वास्थ्य-समस्या
- 2.1.15. जमीन
- 2.1.16. समाज में मीडिया का योगदान
- 2.1.17. समाज सुधारक
- 2.1.18. समाज में परिवर्तन

2.2. समाज में आर्थिक स्थिति

2.2.1. बेरोजगारी

2.2.2. गरीबी

2.2.3. कर्ज

2.3. शिक्षा

2.3.1 शिक्षा का महत्व

2.3.2 उच्च शिक्षा

2.3.3 शिक्षा से वंचित समाज

2.3.4 शिक्षा में भेद-भाव

2.3.5 शिक्षा के प्रति श्रद्धा

2.3.6 शिक्षक का योगदान

2.3.7 गुरु शिष्य के संबंध

2.3.8 शिक्षा से परिवर्तन

2.4. समाज में स्त्री की स्थिति

2.4.1. स्त्री शिक्षा

2.4.2. साहसी-स्त्री

2.4.3. स्त्री का योगदान

2.4.4. स्त्री का शोषण

2.4.5. वेश्याओं की समस्या

तृतीय अध्याय

3. हिन्दी दलित उपन्यासों में चित्रित संस्कृति

126-169

3.1 संस्कृति

3.2 संस्कृति का उद्देश्य

3.3 ब्राह्मणों की संस्कृति

3.4 संस्कार

3.5 धर्म

3.5.1 धर्म के नाम पर दंगे

3.5.2 धर्म के नाम पर भयभीत करना

3.5.3 धर्म परिवर्तन

3.5.4 धर्म से मुक्ति

3.5.5 कर्नाटक में मठों का प्रभाव

3.6 राष्ट्रीय संस्कृति

3.7 दलितों की संस्कृति

3.8. विवाह

3.8.1 अन्तर्जातीय विवाह

3.8.2 दहेज प्रथा

3.8.3 लोक गीत

3.9 मुस्लिम संस्कृति

3.10 विश्वास

3.10.1 समाज में अंधविश्वास

3.10.2 शुभ-अशुभ

3.10.3 भूत चढ़ना

3.11 परंपरा

- 3.11.1 परंपरा के विरुद्ध स्वाभिमान
- 3.11.2 परंपरा का बंधन
- 3.12 गुलामी
- 3.13 परिवर्तन
- 3.14 आंदोलन से समाज परिवर्तन
- 3.15 व्यवसाय
- 3.16 षडयंत्र
- 3.17 प्रेम
 - 3.17.1 भाई का प्रेम
- 3.18 ज्योतिष
- 3.19 वेशभूषा

चतुर्थ अध्याय

हिन्दी दलित उपन्यासों में चित्रित सत्ता के सवाल

170-208

- 4.1. राजनीतिक सत्ता
- 4.2. बी.आर.अम्बेडकर की राजनीतिक विचारधारा
- 4.3. बी.आर.अम्बेडकर और गाँधी
- 4.4. गाँधी और नेहरू
- 4.5. आरक्षण
 - 4.5.1. जाति-उपजातियों का अधिकार
- 4.6. शिक्षा में नेताओं का योगदान
- 4.7. ब्रिटिश साम्राज्य
- 4.8. अदालत
- 4.9. समाज में अधिकार
- 4.10. चुनाव
- 4.11. आर्थिक सत्ता
 - 4.11.1. नगरपालिका में दलितों की स्थिति
- 4.12. धार्मिक सत्ता
 - 4.12.1 दाह संस्कार

पंचम अध्याय

हिन्दी दलित उपन्यास : भाषा एवं शिल्प

209-227

5. भाषा और शिल्प

5.1 आत्मकथात्मक शैली

5.2 वर्णनात्मक शैली

5.3 पत्रात्मक शैली

5.4 व्यंग्यात्मक शैली

5.5 अंग्रेजी शब्द

5.6 दलित पीड़ा की अभिव्यक्ति

5.7 बोल-चाल की भाषा

5.8 मुहावरे

5.9 लोकोक्तियाँ

उपसंहार

228-240

सन्दर्भ-ग्रन्थ सूची

241-254

1. आधार-ग्रंथ

2. सहायक-ग्रंथ

3. पत्र-पत्रिकाएँ

4. वेब-सामग्री

प्रथम अध्याय

हिन्दी दलित उपन्यासों का
परिचयात्मक विश्लेषण

प्रथम अध्याय

हिन्दी दलित उपन्यासों का परिचयात्मक विश्लेषण

1.1 दलित उपन्यासों का महत्व

1.2 दलित उपन्यासों का परिचयात्मक विश्लेषण

1.2.1 मानव की परख

1.2.2 करुणा

1.2.3 कड़वी यादें

1.2.4 पहला खत

1.2.5 छप्पर

1.2.6 मिट्टी की सौगंध

1.2.7 जस तस भई सबेर

1.2.8 सैनिक का खून

1.2.9 फूल बने अंगारे

1.2.10 रक्त का रिश्ता

1.2.11 कमलकान्त

1.2.12 आज बाज़ार बन्द है

1.2.13 आक्रोश

1.2.14 क्या मुझे खरीदोगे

1.2.15 वीरांगना झलकारी बाई

1.2.16 अमानत

1.2.17 मिस रमिया

1.2.18 उधर के लोग

- 1.2.19 थमेगा नहीं विद्रोह
- 1.2.20 डंक
- 1.2.21 चाँदी की हँसुली
- 1.2.22 ज़ख्म हमारे
- 1.2.23 मुक्ति पर्व
- 1.2.24 हिडिम्ब
- 1.2.25 भगोड़ू पुजारिन
- 1.2.26 महानायक बाबा साहेब डॉ.आम्बेडकर
- 1.2.27 नीला आकाश
- 1.2.28 सूअरदान
- 1.2.29 गटर का आदमी

1.1 हिन्दी दलित उपन्यासों का महत्त्व :

प्रसिद्ध लेखक रैफल फॉक्स उपन्यास को परिभाषित करते हुए कहते हैं कि “मनुष्य जीवन को सर्वांगीण रूप से जितना उपन्यास चित्रित कर सकता है उतना साहित्य का दूसरा अंग नहीं कर सकता।”¹

मुंशी प्रेमचंद उपन्यास के बारे में लिखते हैं कि “मैं उपन्यास को मानव जीवन का चित्र मात्र समझता हूँ। मानव चरित्र पर प्रकाश डालना और उसके रहस्यों को खोलना ही उपन्यास का मूल तत्व है।”²

हिन्दी साहित्य के उपन्यासों में दलित समाज के विकास की बात नहीं उठी। हिन्दी दलित साहित्य लेखन में दलित उपन्यासों का अपना महत्त्व है। उपन्यास में जीवन समग्र रूप से प्रस्तुत होता है। उपन्यासकार के समक्ष जीवन के सभी पहलुओं पर विचार करने की सुविधा होती है। वह दलित वर्ग के सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक और धार्मिक सदर्भों से जुड़े जीवन का चित्रण करता है। दलित उपन्यास व्यक्ति विशेष पर केन्द्रित न होकर पूरे समाज और जाति पर केन्द्रित है। देश की और समाज की परिस्थितियों, परंपराओं, नीतियों के अन्याय के विरुद्ध आवाज उठाकर समाज में परिवर्तन लाना दलित उपन्यासों का उद्देश्य है। देखा जाए तो सामाजिक उपन्यासों में समाज के जीवन की समस्याओं तथा विचारधाराओं की अभिव्यक्ति की जाती है। और दलित उपन्यास समाज के विस्तृत क्षेत्र को अपने अंतर्गत समाविष्ट रखते हैं।

दलित उपन्यास की शुरुआत देवीदयाल सेन के ‘मानव की परख’ उपन्यास से हुई। यह उपन्यास 1954 में छपा। इसके बाद कई दलित उपन्यासकारों ने दलित साहित्य को आगे बढ़ाते हुए अपना योगदान दिया जिसमें प्रमुख रूप से है- जयप्रकाश कर्दम का पहला

¹ अपेक्षा, सं. तेजसिंह, जनवरी-जून 2010, पृष्ठ सं.-43

² हिन्दी आलोचना की पारिभाषिक शब्दावली, डॉ.अमरनाथ, पृष्ठ सं.-129

उपन्यास 'करुणा' 1986 में छपा। ओम प्रकाश गौतम का 'कड़वी यादे' 1988 में, धर्मवीर जी का 'पहला खत' उपन्यास 1991 में प्रकाशित हुआ। जयप्रकाश कर्दम का दूसरा उपन्यास 'छप्पर' 1994 में प्रकाशित हुआ था। इस उपन्यास को हिन्दी का प्रथम दलित उपन्यास माना जाता है। प्रेम कपाड़िया का 'मिट्टी की सौगंध' 1995 में, सत्य प्रकाश का 'जत तस भई सबेर' 1998 में प्रकाशित हुआ था। डॉ. विजयी का 'सैनिक का खून' 2000 में, डी.पी.वरुण का 'फूल बने अंगारे' 2002 में प्रकाशित हुआ था।

दलित उपन्यासकार और सवर्ण उपन्यासकारों का लेखन अलग-अलग है। सवर्ण उपन्यासकारों ने ऐसे उपन्यास लिखे हैं जिनके उपन्यास में नायक-नायिका हैं। इनमें दलितों के संदर्भ आए हो उपन्यासों की संख्या बहुत कम है। संदर्भ आये भी हैं तो उन उपन्यासों के दलित पात्रों में चेतना, जागृति और अपनी अस्मिता की पहचान नहीं है। वे अपनी पीड़ित, शोषित, स्थिति से उभर नहीं पाते हैं। कई दलित पात्र तो अपनी उसी स्थिति में खुश नजर आते हैं। सवर्ण उपन्यासकार ऐसे दलित पात्रों को मनमाने रूप में प्रस्तुत करके उनकी दीन हीन स्थिति को पाठकों के मनोरंजन की सामग्री बना देते हैं। इनके उपन्यासों में दलित पात्रों को आदर्शवादी और गाँधीवादी विचारधारा के समर्थन में दिखाया जाता है। दलित उपन्यासों का उद्देश्य इसके ठीक विपरीत है। सामाजिक कटु यथार्थ को बताने के लिए दलित साहित्य विशेष उद्देश्य से लिखा जा रहा है। अतः दलित उपन्यास आदर्शोन्मुख न होकर यथार्थवादी ही हैं, जिनमें समाज में व्याप्त अन्तर्विरोध, विसंगतियाँ बताई गई हैं।

दलित उपन्यासों का नायक एक व्यक्ति होकर भी एक व्यक्ति नहीं बल्कि शोषित-पीड़ित अपने अधिकारों से वंचित अपने समाज का प्रतिनिधि है। जो विरोध और आक्रोश के साथ विद्रोह की आवाज उठाकर समाज को अपने अधिकारों के लिए ललकारता है, अपने संघर्ष में अन्त तक टिका रहता है और अपने समाज के लिए उत्साह, जागृति और

प्रेरणा का श्रोत बनता है। क्योंकि वह अत्याचारी को सजा देकर अपने वर्ग का हौसला बढ़ाता है।

दलित उपन्यास लेखन की शैली अधिकतर सामान्य ही रही। धर्मवीर का ‘पहला खत’ उपन्यास पत्र शैली में, अजय नावरिया का ‘उधर के लोग’ आत्मकथात्मक शैली में, मोहनदास नैमिशराय का ‘वीरांगना झलकारी बाई’ भोजला गाँव की शैली में लिखा गया।

1.2.1 मानव की परख

‘मानव की परख’ देवीदयाल सेन का उपन्यास है। इस उपन्यास की शुरुआत मथुरा नगरी में दक्षिण की ओर एक बस्ती के झोपड़े में विधवा रानी भंगिन और उनका बेटा रौतास से होती है। इसमें बाबत गाँव की कथा है। भारतीय हिन्दू समाज व्यवस्था में दलितों के लिए परंपरा के अनुसार अपने-अपने व्यवसाय निश्चित हैं, उसके काम बदल नहीं सकते। रानी भंगिन अपने पति कलजुग मरने के बाद गाँव छोड़कर मथुरा की एक बस्ती में रहने लगी थी। रानी भंगिन सेठ के घर में सफ़ाई का काम करती है। बेटा रौतास बाज़ार के चौक पर झाड़ू लगाने का काम करता है।

रानी भंगिन बहुत सुन्दर थी। गिरधारी रानी भंगिन की सुन्दरता को देखकर कलजुग से दोस्ती करता है। गिरधारी कलजुग के घर आ जाया करता है। कलजुग काम के लिए तीन दिन शहर जाता है। उस मौके पर गिरधारी रानी भंगिन का बलात्कार करने की कोशिश करता है तब रानी बचाओ... बचाओ..कहकर चिल्लाने लगती है। चिरंजी कलजुग का सच्चा मित्र था। वह आकर आस-पड़ौस वालों से कहने लगता है कि “मारो साले को, लुच्चा है, विश्वासघाती है।”¹ उपर्युक्त कथन से पता चलता है कि गिरधारी ने रानी को भोगने के लिए कलजुग से दोस्ती बनाया था। चिरंजी से गिरधारी बदला लेने के लिए

¹ मानव की परख, देवदयाल सेन, पृष्ठ सं.-14

षडयंत्र रचता है। गाँव में प्रचार करने लगता है कि रानी भंगिन को चिरंजी चाहता है इसलिए उसके घर जाता है। चिरंजी की माता भुरिया, पिता धर्म चौधरी और पत्नी शरबती चिंतित होने लगते हैं। शरबती चिंतित होकर रोगग्रस्त हो जाती है।

गाँव का प्रधान सदियों से अप्रजातांत्रिक रूप से ज़मींदारी सदियों से चला रहा था। कलजुग सभा में अप्रजातांत्रिकता का विरोध करते हुए, कहता है कि “नहीं, ऐसा नहीं होना चाहिए। बहुमत हमारा है। हमें किसी के कहने से किसी को प्रधान नहीं बनाना चाहिए। यह प्रजातन्त्र का ज़माना है। शक्ति का राज्य गया, यह भक्ति का राज्य है।”¹ उपर्युक्त कथन से मालूम होता है कि ज़मींदार बिना चुनाव के गाँव में प्रधान बनकर अधिकार चलाता था। भारत में प्रजातंत्र होने पर भी पुराने शोषण की परंपरा चल रही थी। ज़मींदार ने चुनाव में गाँव वालों को शराब और ताड़ी पिलाई जिससे वह जैसे बोलता है वैसे सुनने के लिए लोग तैयार हो जाते हैं। ज़मींदार ने गाँव के चन्दे के पैसों से जलसे का प्रबंध कराया था, लेकिन कलजुग और चिरंजी दोनों अपने पैसों से जलसे का प्रबंध कराते थे। जिस दिन कलजुग के घर बेटे का जन्म हुआ था, उसी दिन ज़मींदार ने कलजुग का कत्ल गिरधारी के हाथों से करवाया था। और गाँव में यह अफवाफ फैलाया कि चिरंजी ने यह कत्ल रानी के लिए किया है। पुलिस चिरंजी को कत्ल के अपराध में गिरफ्तार करती है। बिहारी, धर्म चौधरी को मुकदमा चलाने के लिए वकील के पास ले जाता है। बिहारी इस के लिए वकील के पास से कमीशन भी लेता है।

चिरंजी का मुकदमा लड़ने के लिए धर्म चौधरी पैसे, गहने और बड़े-बूढ़ों की निशानी झोपड़ी भी खो देता है। गाँव में ज़मींदार गाँव का प्रधान होने के बाद गिरधारी को धोखा देता है। उससे गिरधारी पश्चताप से अदालत के कठघरे में जाकर कलजुग के कत्ल को

¹ मानव की परख, देवदयाल सेन, पृष्ठ सं.-33

स्वीकार लेता है। चिरंजी रानी भंगिन को धर्म-बहन मानता है। रानी विधवा होने के कारण जमींदार और बिहारी अपनी बनाने की कोशिश करते हैं।

मथुरा में रानी भंगिन सेठ के घर में सफाई का काम करती है। सेठ रानी भंगिन का बलात्कार करने की कोशिश करता है। रानी से कहता है कि “रानी! तेरे सुन्दरता ने उसी दिन से मुझे लटटू की तरह नचा रखा है जिस दिन से तू यहाँ आई है। कई महीने से तेरी प्राप्ति के लिए सुबह-शाम इस गुसलखाने में तपस्या कर रहा हूँ।”¹ उपर्युक्त कथन से पता चलता है कि सेठ की कामुक निगाहें रानी भंगिन पर हैं। और वह उससे शारीरिक सुख का अनुभव करना चाहता है। सेठानी एकादशी का व्रत करती है तो सेठ शारीरिक सुख के लिए रानी भंगिन के घर जाता है। रानी का बेटा रौतास खो जाता है। सेठ रानी से कहता है की मैं जानता हूँ तुम्हारा बेटा कहाँ है। तुम मेरे साथ चलो कहकर विष्णु मंदिर में ले जाता है। मंदिर के अंधेरी सुरंग मार्ग से एक कमरे में ले जाता है। उस कमरे में रानी को शराब पिलाकर सेठ भोगने लगता है। रानी को शराब पीने की आदत हो जाती है। सेठ रानी का एक मास तक उसी कमरे में शारीरिक शोषण करता रहता है। उस नशे में बेटे रौतास को भूल गयी थी। भारतीय समाज व्यवस्था में विधवा स्त्री के प्रति दुर्व्यवहार करते हैं और चैन से जीने नहीं देते हैं। रानी बिहारी के साथ रहने लगती है। सेठ की बेटी इन्दु रोहित से प्यार करती है। शिकारी कर्नल गुप्ता चार शादी करने पर भी संतानहीन था। कर्नल गुप्ता को शिकार करते समय रोहित मिला था। रोहित रानी भंगिन का बेटा था।

‘मानव की परख’ उपन्यास के बारे में ‘अपेक्षा पत्रिका’ के भूतपूर्व संपादक तेजसिंह लिखते हैं कि “लेखक ने उपन्यास में चरित्रों का विभिन्न सामाजिक अंतर्विरोधी परिस्थितियों में रखकर विकास किया है। हरेक चरित्र अपनी दुर्बलताओं और अच्छाइयों के साथ अभिव्यक्ति पाता है। इसलिए लेखक सामाजिक अंतर्विरोधों पर गहरी पकड़ बनाए

¹ मानव की परख, देवीदयाल सेन, पृष्ठ सं.-125

रखते में सफल रहा है। तथाकथित हिन्दू समाज विभिन्न सामाजिक-आर्थिक अंतर्विरोधों से ग्रस्त है जिसका असर विभिन्न समुदायों पर पड़ता है। जातिवाद का एक ही सामाजिक समाधान है- अंतर्जातीय विवाह।... यहाँ लेखक डॉ.अम्बेडकर के विचारों से सहमत होता दिखाई देता है। इसी बिंदु पर आकर उपन्यास की सामाजिक उपयोगिता निर्दिष्ट होती है। कथा संरचना और चरित्रों के विकास की दृष्टि से उपन्यास अपने समय से काफी आगे है। कुछ रहस्यमय और तिलिस्म जैसी घटनाओं को छोड़कर लेखक को उपन्यास के स्वाभाविक विकास में पूर्ण सफलता मिली है। इस उपन्यास से आज के तथाकथित दलित लेखकों को कुछ सिखना चाहिए कि उपन्यास का स्वाभाविक विकास कैसे किया जाता है। यह इस लेखक का ही नहीं बल्कि किसी भी निम्न समुदाय के लेखक का भी पहला सशक्त उपन्यास है।”¹

1.2.2 करुणा

जयप्रकाश कर्दम का पहला उपन्यास ‘करुणा’ 1986 में प्रकाशित हुआ है। इस उपन्यास की कथावस्तु संक्षेप में इस प्रकार है। ‘करुणा’ उपन्यास का पात्र बाबू हरिशंकर धामपुर गाँव का रहने वाला है। और सरकारी प्रतिष्ठान में क्लर्क की नौकरी करता है। चार बेटे और दो बेटियाँ हैं। हरिशंकर क्षय की बीमारी से मर जाता है। उनके बड़े बेटे रमेश को माता-पिता के मरने के बाद भाई बहनों की जिम्मेदारी संभालनी पड़ती है। करुणा और रमेश दोनों एक दूसरे से प्रेम करते हैं। लेकिन एक दिन रमेश सड़क दुर्घटना में घायल हो जाता है। दो महीने में ठीक हो जाता है, लेकिन विवाह करने के लिए काबिल नहीं रहता। रमेश की छोटी बहन रीता का विवाह होता है। रीता को बच्चे न होने के कारण उसका पति उसे मायके भेज देता है। दुखी होकर रीता आत्महत्या कर लेती है।

¹ अपेक्षा, संपा.तेजसिंह, जनवरी-जून 2010, पृष्ठ सं.-134

ठाकुर सुखदेव सिंह धामपुर गाँव के सरपंच है। उनका बेटा सूरज विलासी है। भुल्लन एक दलित गरीब परिवार से है। उनकी बेटी अंगूरी को अकेली देख कर सूरज बलात्कार करने की कोशिश करता है। उसके चिल्लाने पर आस-पास खेतों में काम करनेवाले आ जाते हैं, सूरज भाग जाता है। इस घटना को लेकर रमेश पंचायत में न्याय माँगता है। सूरज को पंचायत दण्ड के रूप में दो वर्ष गाँव से बहिष्कृत करती है। सूरज रमेश से बदला लेना चाहता है। इसलिए सूरज दोस्तों की सहायता से गाँव में प्रचार करवाता है कि रमेश की बहन बोझ बनने के कारण हत्या की है। सूरज इंस्पेक्टर रघुनाथ सिंह को रिश्त दे कर रमेश को जेल भिजवाता है। और सूरज के दो वर्ष का दण्ड समाप्त होने के बाद कोठे से एक वेश्या चम्पा को अपने घर लेकर आता है। करुणा सारनाथ जाकर बौद्ध भिक्षुणी बन जाती है और उसकी प्रेरणा से रमेश भी भिक्षु बन जाता है।

सुशीला टाकभौरे ने ‘करुणा’ उपन्यास के बारे में लिखा है कि “‘करुणा’ उपन्यास को बुद्ध के प्रेम, सद्भाव, मैत्री भाईचारा आदि सिद्धान्तों पर केन्द्रित किया गया है। उपन्यासकार ने विशेष रूप से उपन्यास में बौद्ध धर्म की वैज्ञानिकता को बताते हुए उसे एकमात्र विश्वव्यापी धर्म बताया है। ‘करुणा’ उपन्यास दलित जीवन की अपेक्षा बुद्ध के धर्म और दर्शन पर आधारित है। वैसे दलित उपन्यासों में बौद्ध धर्म के महत्व की अपेक्षा दलितों के जीवन की समस्याओं और उनके संघर्ष को महत्व दिया है। शिक्षा संगठन और संघर्ष के साथ वे अपने समता सम्मान के अधिकार प्राप्त करें और दलितों में चेतना-जागृति का संचार हो-यही दलित साहित्य का उद्देश्य है। साथ ही काल्पनिक तत्वों की अपेक्षा यथार्थ जीवन के चित्रण का अधिक महत्व है।”¹

¹ दलित साहित्य समग्र परिदृश्य, संपा. डॉ.मनोहर भंडारे, पृष्ठ सं.-241

1.2.3 कड़वी यादें

‘कड़वी यादे’ ओम प्रकाश गौतम का उपन्यास है। इस उपन्यास में सोहन को चोरी के आरोप पर रामपुर ठाकुर बलदेव सिंह जेल भेजता है। सोहन के पिता हरिया की मृत्यु होने पर उनके दहन संस्कार के लिए सोहन को जेल से बाहर छोड़ते हैं। इस अवसर का फायदा उठाकर सोहन भाग जाता है। सोहन डाकू बन कर ठाकुर की हवेली में जाकर ठाकुर की पत्नी पार्वती का बलात्कार करते समय कहता है कि “क्यों ठकुराईन? मेरी सोना नहीं गिड़गिड़ाई होगी उस कमीने के सामने क्या उसने बलदेव सिंह के हाथ नहीं जोड़े होंगे।”¹ उपर्युक्त उद्धरण से मालूम होता है कि एक स्त्री को बलात्कार का किस तरह दुःख होता है। सोहन को बलात्कार नहीं करना था। ठाकुराईन को समझाना था। सोहन अतः ठाकुराईन से कहता है मुझे माफ करना मालकिन....मालकिन तो माँ के समान होती है। सोहन मालकिन से इज्जत के साथ व्यवहार करता है।

ठाकुर जगतपाल, ठाकुर बलदेव सिंह की पत्नी पार्वती का बलात्कार करना चाहता था। उस समय सोहन ने आकर पार्वती की इज्जत बचायी थी। ठाकुर जगत पाल की बेटी वीणा को सोहन उठा लाता है और कहता है कि “पार्वती की जगह तुम लोगी...जगत पाल तुम से खेलेगा....तुम्हारी आबरू से खेलेगा।”² उपर्युक्त कथन से पता चलता है कि जगतपाल से सोहन कहता है कि लो अब अपनी बेटी का बलात्कार करो। जगतपाल सोहन से माफी माँगता है ऐसा कभी नहीं होगा। जगतपाल से बेटी वीणा कहती है कि समाज के लोग कहते हैं कि वीणा को डाकू पूजा करने ले गये हैं। लोग मेरी छाया से भी दूर भागते हैं। इस अपमान से वीणा घर छोड़कर आत्महत्या करने पर्वत पर चढ़ती है, तब चम्पाबाई उसे रोकती है। वह बेहोश हो जाती है। चम्पाबाई वीणा को वेश्यागृह में ले जाती है। वीणा से चम्पाबाई कहती है “अगर तुम पेशा नहीं करोगी तो जागीरा तुमसे रोज खेलेगा

¹ कड़वी यादे, ओम प्रकाश गौतम, पृष्ठ सं.-15

² वही, पृष्ठ सं.-19

और रात तुम देख ही चुकी हो कि जागीरा को झेलना कितना मुश्किल है।”¹ उपर्युक्त उद्धरण से मालूम होता है कि वीणा पेशा करने से मना करने पर चम्पाबाई वीणा को दर्दनाक सजा देती है।

एक बार पार्वती मंदिर की सीढ़ियों से गिर जाती है जिससे उसका खून बह रहा था। गोपाल यह देखकर पार्वती को उठाकर कार में बिठाता है। पार्वती को हॉस्पिटल ले जा रहा था। गोपाल की कार रेड सिग्नल क्रॉसिंग पर नहीं रुकी जिससे इन्सपेक्टर विजय गोपाल की कार का पीछा करता है। गोपाल ने विजय की माँ पार्वती की जान बचायी थी। गोपाल और मेरीना दोनों स्मग्लिंग का धन्धा करते हैं। नटराज होटल में गोपाल मेरीना से मिलता है। मेरीना के पास दस लाख का हीरा रहता है। होटल में पुलिस से बचने के लिए दोनों खिड़की से कूदकर कार लेकर भाग जाते हैं। ठाकुर बलदेव सिंह की बेटी सीमा गोपाल से प्यार करती है। सोहन देव की पत्नी सोना ने अपनी इज्जत बचाने के लिए अठारह वर्ष पहले रामपुर के ठाकुर बलदेव सिंह का खून किया था। इस उपन्यास में ठाकुर जगतपाल की बेटी वीणा जो वेश्या बनने की त्रासदी से गुजरती है। उसके इस भयानक जीवन का यथार्थ चित्रण इस उपन्यास में हुआ है। इन्सपेक्टर विजय वीणा से शादी कर लेता है।

1.2.4 पहला खत

डॉ.धर्मवीर का उपन्यास ‘पहला खत’ 1991 में समता प्रकाशन दिल्ली से प्रकाशित हुआ है। यह उपन्यास पत्र शैली में लिखा गया है। धर्मवीर जी ने इस उपन्यास में दिल्ली से केरल त्रिवेन्द्रम लौटने तक यात्रा वृत्तांत का चित्रण किया है। उन्होंने रेल यात्रा में संगति-विसंगति के बारे में समझाने की कोशिश की है। इसमें लेखक अपने यात्रा वृत्तांत के साथ-साथ अपने अनुभव, विचार, विश्लेषण और विमर्श को बताते हुए अपनी मित्र, प्रिय सखी को सम्बोधित करते हुए पहला खत के रूप में एक लम्बा खत लिखा है।

¹ कड़वी यादे, ओम प्रकाश गौतम, पृष्ठ सं.-31

लेखक रेल यात्रा करते समय केरल की प्रकृति के बारे में लिखते हैं कि “केरल देखने के लिए किसी को पूरा केरल देखना पड़ता है। यह एक पूरा सुन्दर बाग है। यहाँ जन संख्या की दृष्टि से जमीन बहुत कम है, लेकिन चप्पे-चप्पे को शस्य-श्यामला से हरा-भरा किया गया है। यहाँ जमीन का एक इंच टुकड़ा भी बेकार नहीं है। भूमि पुत्रों ने अपनी मेहनत से हर जगह कोई न कोई पौधा जमा रखा है।”¹ उपर्युक्त कथन से पता चलता है कि ये उपन्यास केरल के प्राकृतिक सौन्दर्य के बारे में लेखक ने सूक्ष्मता से चित्रण किया है।

इस उपन्यास में बताया गया है कि शंकराचार्य का जन्म कालड़ी में हुआ था। डॉ.धर्मवीर शंकराचार्य को दार्शनिक शत्रु मानते हैं। नारी को एक मनोरंजन की वस्तु न मानकर, उनकी इच्छा और स्वतंत्र विचारों को भी प्रोत्साहित करना चाहिए। और पति-पत्नी, भगवत गीता, ब्राह्मणवादी संस्कृति, विकलांग, योग, ज्योतिष ‘सूर्य स्टेज एंड फिल्म सोसायटी’, के बारे में लेखक ने समझाने की कोशिश की है।

पहला खत उपन्यास के बारे में राजेश कुमार लिखते हैं कि “वास्तव में पहला खत इसी वर्ण-व्यवस्था के विरुद्ध लिखा गया खत है। यदि लेखक ने स्वयं ही इसे दलित विमर्श का घोषणा पत्र भी घोषित किया होता तो भी यह उनकी विमर्श केंद्रित अन्य रचनाओं की तरह बहुपठित और बहुचर्चित हो गया होता। लेकिन लेखक ने उपन्यासकार होने अथवा ऐसी ही किसी अन्य रचनात्मक विधा का प्रस्तावक होने की महत्वाकांक्षा के चलते इस पर पता ही गलत लिख दिया है। यदि लेखक ने सही पता लिखा होता तो पहला खत यूँ बेपता न रहता।”²

¹ पहला खत, डॉ.धर्मवीर, पृष्ठ सं-12-13

² अपेक्षा, संपा.तेजसिंह, जनवरी-जून 2010, पृष्ठ सं.-63

1.2.5 छप्पर

जयप्रकाश कर्दम का दूसरा उपन्यास ‘छप्पर’ हिन्दी दलित साहित्य में बहुत ही महत्वपूर्ण और चर्चित उपन्यास है। इस उपन्यास में नायक चंदन और नायिका रजनी है। इस उपन्यास में दलित समाज की समस्याओं और उनके शोषण-उत्पीड़न की त्रासदी का चित्रण हुआ है। इस उपन्यास में दलित स्त्री के यौन-शोषण और बलात्कार मुख्य समस्याएँ हैं। मालिकों द्वारा श्रम शोषण और दलित औरत कमला के सामूहिक बलात्कार की घटनाएँ हैं। चंदन दलित युवकों का एक सर्किल बना लेता है। उसमें रामहेत, रतन और नन्दलाल शामिल होते हैं। वे लोग चंदन के साथ कॉलेज में पढ़ते थे। इस उपन्यास में नायक समाज के लिए प्रतिबद्ध है। चंदन समाज के बारे में उन लोगों से कहता है कि “मैं अपनी शिक्षा का उपयोग अपने दीन-हीन समाज के उत्थान के लिए करूँगा। मैं उन पीड़ित, शोषित और उपेक्षित लोगों को ऊपर उठाने के लिए काम करूँगा जो कीड़े-मकोड़ों की तरह जीते हैं। शेष समाज जिनके साथ पशुवत् व्यवहार करता है, उनको पास नहीं बिठाता और उनसे घृणा करता है। पीढ़ी-दर-पीढ़ी के कर्ज ने जिनकी कमर तोड़ दी है और कर्ज को चुकाने के लिए जो बंधुआ बनकर जीने को विवश होते हैं। ठाकुर-जमींदारों की मार सहते हैं, हर तरह के अन्याय, शोषण और उत्पीड़न के शिकार होते हैं।”¹ उपर्युक्त कथन से अवगत होता है कि दलित समाज के लोगों के लिए चंदन प्रतिबद्ध है। पीढ़ी-दर-पीढ़ी शोषित होनेवाले लोगों को चंदन मुक्ति दिलाना चाहता है। ठाकुर-जमींदार दलितों से सदियों से गुलामी करवाते आ रहे हैं और उन के प्रति अमानवीय व्यवहार करते आ रहे हैं इसलिए दलितों को उन लोगों से मुक्ति दिलवाना चाहता है।

डॉ. संजय नवले ‘छप्पर’ उपन्यास के बारे में लिखते हैं कि “उपन्यास के उत्तरार्ध में लेखक गाँधीवादी विचारधारा को लेकर चलता दिखाई देता है। फुले, शाहू, अम्बेडकर के

¹ छप्पर, जयप्रकाश कर्दम, पृष्ठ सं.-41-42

साथ-साथ गाँधीवादी विचारधारा से परिवर्तन की कोशिश दिखाई देती है। इसके प्रमाण उपन्यास में मिलते हैं। जैसे शहर से गाँव की ओर जाने की चंदन की इच्छा म.गाँधी के ‘गाँव की ओर चलो’ की याद दिलाती है। चंदन चाहता है कि हिंसा का जावब हिंसा से नहीं अहिंसा से देना चाहिए। वह यह भी चाहता है कि सारा समाज सदैव शांति और सद्भाव से मिल-जुलकर रहे। यहाँ यह निश्चित है कि लेखक वैचारिक और सशक्त समाज निर्माण की अपेक्षा करता है। यहाँ ठाकुर का हृदय परिवर्तन भविष्य की दृष्टि से अत्यंत महत्वपूर्ण है।”¹

1.2.6 मिट्टी की सौगंध

प्रेम कपाडिया कृत उपन्यास ‘मिट्टी की सौगंध’। उपन्यास की कथा उत्तर प्रदेश के रामनगर गाँव की है। दलित गरीब परिवार की लड़की शीला का ठाकुर मोहन सिंह बलात्कार करता है। ठाकुर के पास धन और सत्ता होने के कारण इंस्पेक्टर जगजीवनराम उसे गिरफ्तार नहीं कर पाता। ठाकुर मदन सिंह के दो बेटे हैं। बड़ा बेटा शमेन्द्र भोग विलासी है। छोटा बेटा विजेन्द्र समाज सुधारक और दलित हितैषी है। विजेन्द्र शीला को न्याय दिलाने के लिए पच्चीस नवजवानों से ‘न्याय सेना’ बनाता है। शमेन्द्र अनेक लड़कियों के साथ शरीरिक संबंध रखता है। शमेन्द्र से गंगा कहती है कि “आपका तो कुछ नहीं बिगड़ेगा...मेरा बापू दवाई के बिना मर जाएगा...उसी के इलाज के लिए तो अपना शरीर बेचती हूँ।”² उपरोक्त उद्धरण से पता चलता है कि गंगा आर्थिक कठिनाइयों के कारण अपने शरीर को बेचती है। विजेन्द्र गंगा को बहन मानता। विजेन्द्र दलित लड़की शीला के साथ विवाह करके उसे नई जिंदगी देता है और अपने बाप को दस साल कैद करवाता है।

¹ अपेक्षा, संपा. तेजसिंह. जनवरी-जून 2010, पृष्ठ सं.-107

² मिट्टी की सौगंध, प्रेम कपाडिया, पृष्ठ सं.-13

सुशीला टाकभौरे 'मिट्टी की सौगंध' उपन्यास के बारे में लिखती है कि "यह उपन्यास भी दलित साहित्य में चर्चित नहीं हो सका। दलित उपन्यास का नायक या नायिका दलित ही होना चाहिए ताकि वे स्वयं अपनी पीड़ा और समस्या को बताते हुए उसका निदान खोज सकें। इस उपन्यास में काल्पनिकता का तत्व भी अधिक है जिससे सामाजिक यथार्थ को समझना मुश्किल होता है। दलित उपन्यास लेखक के आरम्भिक दिनों में लिखा गया कपाड़िया जी के उपन्यास का महत्व है लेकिन दलित साहित्य की दृष्टि से दलित उपन्यास के रूप में 'मिट्टी की सौगंध' उपन्यास का महत्व नहीं पा सका है। दलित उपन्यास में अम्बेडकरवादी विचारधारा दलित चेतना और दलित अस्मिता की पहचान होना आवश्यक है।"¹

1.2.7 जस-तस भई सबेर

सत्यप्रकाश कृत उपन्यास 'जस-तस भई सबेर' उपन्यास धार्मिक अंधविश्वास पर केंद्रित उपन्यास है। इस उपन्यास में दलित समाज की विवशता और प्रतिरोध के द्वन्द्व की मार्मिक कथा कही गई है। इसमें दलित जीवन में बलात्कार जैसे स्त्री-त्रासदी का समाजशास्त्रीय विवेचन हुआ है।

यह उपन्यास राजस्थान के बागड शहर में जाहनवीर मंदिर के सिरियल देवी पर केन्द्रित है। पंडित हरसन्ना भगत ने हंसा को देवी पर विश्वास दिलाया था। जिसके कारण हंसा बागड़ जात में एक सप्ताह भर जाकर आता है। हंसा अपने बिरादरियों को अमांत्रित कर घर में 8-10 दिन देवी का पूजा-पाठ करवाता है। पूजा-पाठ का खर्चा कुल मिलाकर पांच हजार तक हो जाता है। हंसा का भाई सरवन इन सबके कारण बड़ा दुखी था।

¹ दलित साहित्य समग्र परिदृश्य, संपा.डॉ. मनोहर भंडारे, पृष्ठ सं.-242

चौधरी देवपाल के खेत में घास के लिए रामरती, धुसिया और सन्नो जाते हैं। देवपाल धुसिया का बलात्कार करके हत्या कर देता है। देवपाल कहता है तुम लोग मुँह खोलेंगे तो, तुम्हारा भी यही हाल होगा। रामरती देवपाल की रखैल है। पुलिस गाँव में आकर चौधरी देवीपाल से दान-दक्षिणा लेकर बिना कुछ लिए लौट जाता है।

हंसा की भैंस बीमार होकर मर जाता है। उसकी पत्नी सुनहरी का खेत की मेंढ से फिसलकर गिरने से दायीं टाँग टूट जाती है। हंसा इन सब घटनाओं से दुःखी हो जाता है और वह सोचने लगता है कि जात के बाद भी देवता उन पर क्यों कोप कर रहा है? इसी कारण वह फिर से पंडित हरसन्ना भगत के पास जाता है। पंडित भगत हंसा से कहता है कि “आज रात मैं एकान्त में देवता से बात करूँगा। सुबह आकर पता कर लेना। इस समय निश्चित होकर घर चला जा। चिन्ता करने की कोई बात नहीं है। मैं सब सँभाल लूँगा। आखिर तो गलती इन्सान से ही होती है।”¹ उपर्युक्त कथन से पता चलता है कि देवता के नाम पर हंसा को हरसन्ना भगत बरबाद कर देता है। वह दुबारा पूजा करने के लिए कहता है। हंसा देवपाल से पाँच हजार रुपये कर्ज लेता है। और पाँच हजार में भैंस को बेच देता है। और घर में पूजा-पाठ भी करवाता है। इसके लिए अपने भाई सरवन से मार पीट भी करता है। सरवन का सिर फट जाता है। दूसरी बार सरवन पर चोरी का आरोप लगाता है। चौधरी देवीपाल कर्ज नहीं चुकाने के कारण हंसा की पिटाई करवाता है। लेकिन हंसा के पिता मंगल पहलवान पिटाई से बचा लेते हैं।

सरवन का बेटा शिवदास को कॉलिज में अनुशासन परिषद का वरिष्ठ सदस्य के रूप में चुना गया था। सुमेधा शिवदास से प्रेम करती है। प्रो.दत्त का इन दोनों का प्यार मंजूर नहीं था। प्रो.दत्त सुमेधा का रिश्तेदार है। प्रो.दत्त सुमेधा की शादी अपनी जाति के लड़के से

¹ जस तस भाई सबेर, सत्यप्रकाश, पृष्ठ, सं.-19

करवाना चाहता है। गाँव का चौधरी देवीपाल धुसिया की हत्या की थी। इसलिए धुसिया के पति मनसुख बदला लेने चौधरी देवीपाल और हरसन्ना भगत पर गोली चलाता है।

1.2.8 सैनिक का खून

डॉ.आर.एम.एस.विजयी जी का उपन्यास ‘सैनिक का खून’ है। उपन्यास की शुरुआत शंकर लाल से होती है वह टी.बी. की बीमारी से पीड़ित है। शंकर लाल का डॉ.अवनीन्द्र कुमार इलाज करते हैं। शंकर लाल का भाँजा प्रवीण कुमार और बेटी कमला से डॉ.अवनीन्द्र कुमार कहते हैं शंकर लाल चौबीस घंटे से अधिक जीवित नहीं रहेंगे। शंकर लाल प्रथम विश्वयुद्ध का सैनिक था। शंकर लाल अपनी बेटी कमला से कहता है कि “मैं तुम्हें छोड़कर जाना नहीं चाहता हूँ, लेकिन मेरे चाहने न चाहने से होता भी क्या है? मेरी एक बात याद रखना तुम एक सैनिक की लड़की हो जाति, धर्म एवं व्यक्तिगत स्वार्थों को राष्ट्र पर बलि चढ़ा देना। समय का सबसे अच्छा सदुपयोग राष्ट्रहित के लिए करना। जहां तक हो सके, कोई काम ऐसा न करना जिससे देश की जड़े कमजोर हो तथा मातृभूमि की शान को धब्बा लगे मानवतावाद की आड़ में राष्ट्रीयता को खतरा पहुँचे तो समय के अनुकूल निर्णय लेना।”¹ उपर्युक्त कथन से पता चलता है कि शंकरलाल एक सैनिक होने के कारण वह अपनी बेटी को देश के प्रति अपनी जिम्मेदारी निभाये और राष्ट्र के हित के लिए काम करने को प्रेरित करता है। कमला और कवीन्द्र आगरा विश्व विद्यालय में बी.ए. के प्रथम वर्ष के छात्र थे। कमला अपने फुफेरे भाई प्रवीण के साथ आगरा में रहती है। कमला कवीन्द्र से प्यार करती है।

कवीन्द्र का ममेरा भाई प्रियपाल चंडीगढ़ स्टेट बैंक में मैनेजर था। वह लगभग सात वर्ष से नौकरी कर रहा था। शादी पाँच वर्ष पूर्व हुई थी। दुर्भाग्य से बच्चा पैदा नहीं हुआ था। उसके पत्नी का नाम सुशीला था। प्रियपाल को अचानक कैंसर की बीमारी हो गई थी। वह

¹ सैनिक का खून, डॉ.आर.एम.एस. विजय, पृष्ठ सं.-17-18

स्वयं जीवन की आशा छोड़ कर पत्नी सुशीला के भविष्य के बारे में चिंचित होने लगा था। प्रियपाल कवीन्द्र को अपने भाई जैसे मानते थे। प्रियपाल कवीन्द्र को पत्र लिखता है। कवीन्द्र पत्र मिलते ही तुरंत चंडीगढ़ के लिए निकल पड़ता है। कवीन्द्र घर से सुशीला को लेकर अस्पताल पहुँच जाता है। प्रियपाल से कवीन्द्र बीमारी के बारे में पूछता है। कवीन्द्र अस्पताल में प्रियपाल की तीन दिन सेवा करता है। प्रियपाल से आज्ञा लेकर कवीन्द्र अपने घर निकल जाता है।

प्रियपाल मरते समय अपनी पत्नी सुशीला को अपने भाई कवीन्द्र को सौंपता है। कवीन्द्र अपनी भाभी सुशीला को घर ले कर आता है। सुशीला कवीन्द्र के साथ रहने लगी थी। कवीन्द्र के माता-पिता सुशीला को जीने नहीं दे रहे थे। इसलिए घर छोड़कर वह मद्रास जाती है। वहाँ पर रोजगार के लिए सिलाई का काम और लड़कियों को ट्यूशन लेने का काम करती है।

मद्रास सूती कपड़े के मिल में आर्येश कुमार का मामा एकाउन्टेन्ट था। सुशीला का मिल रोड़ पर दूसरी साइड में कमरा था। मिल मजदूर वेतन बढ़ाने के लिए हड़ताल करते हैं। उस हड़ताल में मजदूरों के नायक जयकुमार पर गोली चलायी जाती है। सुशीला गोली चालाने वाले आदमी को देख लेती है। इसलिए सी.पी.अयंगर उस घटना को भूल ने के लिए सुशीला को 5000 रुपया देता है, लेकिन सुशीला पैसे लेने से मना करती है। शंकरलाल का बेटा अर्येश कुमार सुशीला से पूछने पर वह उस घटना का बयान देने के लिए तैयार हो जाती है। सुशीला बयान देने पर डाकू दामोदर को पुलिस हथकड़ी पहना देती है।

1.2.9 फूल बने अंगारे

डी.पी.वरुण के उपन्यास 'फूल बने अंगारे'। यह उपन्यास टीकमगढ़ जिले पूरनपुर गाँव से संबंधित है। उपन्यास की कथा स्वतंत्रता पूर्व और स्वतंत्रता के बाद की है। पूरनपुर गाँव में ठाकुर अलीमर्दन सिंह ठाकुरों में अधिक सम्पन्न थे। ठाकुर के पास 500 एकड़ जमीन थी। स्वतंत्रता के बाद 1952 में जमींदारी खत्म हुई, उन्होंने दूसरों के बिनामी नाम से जमीन लिखवाकर जमीन को बचा लिया। ठाकुर की पत्नी देवराजी सीधी-साधी थी। उनकी पुत्री सुषमा थी। ठाकुर अलीमर्दन सिंह के पिता ठाकुर गजराज सिंह विलासी थे। “प्रत्येक दिन एक नई महिला से संगत करने के इच्छुक रहते। जिस महिला को देख लिया और उनकी आँखों में चढ़ गई तो बस उनका कुछ भी करना पड़े, उसको पाकर ही दम लेते थे।”¹ उपर्युक्त उद्धरण से पता चलता है कि स्त्री को एक भोग वस्तु के समान इस्तेमाल किया है। ठाकुर पूरनपुर गाँव में अपना वर्चस्व बरकरार रखने के लिए कलेक्टर से लेकर थाने के सिपाही तक दोस्ती करते थे। पूरनपुर गाँव के आदिवासियों में मारुसिंह नाम का एक भूमिहीन आदिवासी और उसकी बेटी श्यामा रहते थे। मारुसिंह जितना डरपोक था उतनी ही श्यामा निर्भीक थी। बाल्यावस्था में ही माँ गुजर गई थी। श्यामा के पड़ोसी कल्याण सिंह का बेटा गबरु रहता है। वह स्कूल जाकर पढ़ता है। श्यामा स्कूल जाना चाहती है वह अपने पिता से कहती है। मारुसिंह गरीबी के कारण श्यामा को स्कूल भेज नहीं पाता। इसलिए घर पर ही गबरु के मदद से श्यामा पढ़ना सीख गयी थी। गबरु पढाई छोड़कर बेगारी का काम करने लगता है। गबरु बेगारी का काम का विरोध करता है यह बात ठाकुर को पता चलता है। ठाकुर गबरु के घर आ कर, गबरु को, उनकी माँ को पीटता है। इस घटना से गबरु गाँव छोड़कर अपने मामा मायाराम के घर पहुँच जाता है। मामा को संतान नहीं थी। मायाराम ने गबरु को नौवीं कक्षा में भर्ती करा देता है। श्यामा जनार्दन सिंह से मजदूरी बढ़ाने को कहती है। श्यामा से जनार्दन कहता है कि “आप ठीक कहती है। मैं तो इसी विचारधारा का हूँ

¹ फूल बने अंगारे, डी.पी.वरुण, पृष्ठ सं.-17

परन्तु पिता जी के सामने मेरी एक भी नहीं चलती है। जब तक वे जीवित है मैं मजदूरी बढ़ाने में मजबूर हूँ परन्तु मैं छिपके सबको अधिक मजदूरी दूँगा ताकि गरीबों का अहित न हो।”¹ उपर्युक्त उद्धरण से स्पष्ट होता है कि पुरानी पीढ़ी और नई पीढ़ी की विचारधारा में बहुत अन्तर दिखाई पड़ता है।

अलीमर्दन सिंह के पूस माह की अमावस्या के दिन न्यायालय के काम से शहर जाना पड़ा। दिनभर न्यायालय के कार्य में वह व्यस्त रहा। शाम को गाँव जाना था, बारिश होने लगी तो कुछ देर के लिए झोपड़ी के अन्दर जाता है। बारिश कम हो गयी। अंधेरे में पूरनपुर गाँव जाना मुश्किल था। इसलिए शहर के अशोक होटल में रहता है। बेरर रामदीन खाना लेकर आता है। ठाकुर को रामदीन अच्छूत जैसा लगता है तो उनके साथ दुर्व्यवहार करने लगता है। दुर्व्यवहार में वह पीटा जाता है। ठाकुर को पुलिस इन्सपेक्टर हथकड़ी डालता है तो ठाकुर रामदीन से माफी माँगता है। अली मर्दन सिंह गाँव जाने के लिए अशोक होटल से रात में ही निकलता है। रात में गश्ती कर रहे सिपाही चोर समझकर जेल में डाल देते हैं। बाद में पता चलता है कि पूरनपुर का अलीमर्दन सिंह है तब उन्हें छोड़ देते हैं। श्यामा पढ़ने के लालच में जनार्दन से मिलने उनके बगीचे में जाती है। जनार्दन श्यामा से शरीरिक सम्बन्ध बनाने की कोशिश करता है। शादी से पहले शरीरिक सम्बन्ध रखने के लिए श्यामा मना करती है। जनार्दन श्यामा से फर्जी शादी कर लेता है। शादी के बाद दोनों मिलते रहते हैं। कुछ महीने के बाद श्यामा गर्भवती हो जाती है। श्यामा गर्भवती होने के बाद जनार्दन श्यामा से नहीं मिलना चाहता है।

गबरू दसवीं कक्षा की परीक्षा होने के बाद शहर से पूरनपुर गाँव जाता है, क्योंकि गबरू को शहर गये हुए दो साल हो गये थे। शहर में रामस्वरूप वर्मा के भाषण से प्रभावित होकर गबरू अपने आदिवासियों को बेगारी के काम से छुटकारा दिलवाना चाहता है। गबरू

¹ फूल बने अंगारे, डी.पी.वरुण, पृष्ठ सं.-58

ने अली मर्दन सिंह को हंटर से मारा था। अलीमर्दन सिंह षडयंत्र रचाकर गबरु को चार साल के लिए जेल भेज देता है। गबरु चार साल के बाद जेल से आकर वह आगे पढ़ने के लिए इण्टर कॉलेज जाता है और प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण हो जाता है। गबरु पूरनपुर गाँव जब लौटता है तब उसके ऊपर मुकदमा चलाते हैं कि किसी डाकू ने अमुपुर गाँव में दो ब्राह्मणों की हत्या की है। ये हत्या गबरु के ऊपर थोपी जाती है। इस कारण से गबरु घर छोड़कर जंगल चला जाता है। जंगल में एक गुप्त किले में जेल में परिचित डाकू हिम्मत सिंह मिलता है। हिम्मत सिंह गबरु को अस्त्र चलाने का प्रशिक्षण देता है। गबरु अलीमर्दन सिंह का सामना करने के लिए डाकू बन जाता है। गबरु डाकू बनकर श्यामा की शादी जनार्दन से करवाता है। खुद भी सुषमा के साथ शादी कर लेता है। उन दोनों का एक बेटा होता है। वह है शूरवीर सिंह। अतः अली मर्दन सिंह आदिवासियों से बेगारी का काम कराना बंद कर देता है। अंत में गबरु बौद्ध धर्म को स्वीकार करता है।

1.2.10 रक्त का रिश्ता

डी.पी.वरुण के उपन्यास 'रक्त का रिश्ता'। इस उपन्यास की शुरुआत धामपुर गाँव से होती है। धामपुर गाँव की कच्ची सड़क और यह गाँव किसी सम्पर्क मार्ग से नहीं जुड़ा है। गाँव में सभी धर्म के लोग निवास करते हैं। गंगू चौधरी को दो पुत्रियाँ जन्मी थी। चौधरी लड़कियाँ नहीं चाहता था, उनको लड़के चाहिए थे। चौधरी की पत्नी रमा का गर्भाशय उलट जाने से तीसरी संतान नहीं हुई थी। चौधरी भगवान ईश्वर पर विश्वास करता था। लेकिन ईश्वर ने कृपा नहीं की। गंगू चौधरी दलित जाति से था। इसलिए दलित होने के कारण छुप-छुपाकर बड़े-बड़े मंदिरों में पुत्ररत्न प्राप्ति के लिए हर देवी-देवता को चढ़ावा-चढ़ाकर आता था। गंगू चौधरी अपनी पत्नी रमा को भी मंदिर साथ में ले जाता था। मंदिर जाने के लिए पत्नी की चाँद की हँसुली बेचकर और ढेर सारे रुपये कर्ज लेकर जाता था।

धामपुर गाँव बहुत पिछड़ा हुआ था। गाँव से कई मील तक चिकित्सा की व्यवस्था नहीं थी। इसलिए सरकार ने धामपुर के निकट एक महिला अस्पताल खोल दिया था। डॉ. सुषमा ने चिकित्सा अधिकारी का कार्य भार ग्रहण किया था। डॉ. सुषमा ने रमा को दाई पद के लिए चुन लिया था। डॉ. सुषमा को भूख लगी थी। रमा से डॉ. सुषमा कहती खाना बनाके लेकर आना। रमा कहती है हम तो अछूत हैं। रमा से डॉ. सुषमा कहती है कि “कौन नीच समझता है? अरी तू तो बड़ी साफ सुथरी रहती है, अच्छा काम करती है तो तुझको नीच कौन समझेगा? नीच तो वे हैं जो दूसरों का शोषण करते हैं, करों की चोरी करते हैं या डाका डालते हैं या फिर चोर बाजारी करते हैं। तू तो ऐसा कुछ नहीं करती है? फिर तू नीच कैसे हो गई ? मैं यह कुछ नहीं मानती। मैं डाक्टर हूँ। डाक्टर की कोई जाति नहीं होती। वह इन्सान होता है। दुःखियों के दुःखों को दूर करना डाक्टर का कर्तव्य है। तू फिकर मतकर। मेरे लिये खाना बना कर ले आ। बस जल्दी जा और आ, पेट में चूहे कूद रहे हैं।”¹ उपर्युक्त कथन से पता चलता है कि गाँव में अशिक्षित और बूढ़े लोगों में छुआछूत की भावना ज्यादा दिखाई देती है। लेकिन विज्ञान के क्षेत्र में रहने वालों में छुआछूत कम दिखाई देती है।

रमा को ठीक से महीना नहीं होने के कारण गर्भवती हो नहीं पायी थी। डॉ. सुषमा दवाई देखकर ठीक करती है। उसके बाद गर्भवती होकर एक बेटे को जन्म देती है। गंगू चौधरी समझने लगता है कि ईश्वर की कृपा से बेटा हुआ है। गाँव में लोगों के एक बैठक में डॉ. सुषमा महिलाओं के लिए सामान्य जानकारी देती है बच्चा पैदा नहीं होना है तो निरोध और दवाई का उपयोग करना चाहिए। एक बच्चा पैदा होने के बाद 4-5 साल का अन्तर होना चाहिए। बैठक होने के बाद कुछ महिलाएँ डॉ. सुषमा से अलग बात करना चाहती थीं।

रमा के बेटे को डॉ. सुषमा ने अजय नाम दिया। गंगू चौधरी ने बेटे अजय को तीन बार गंगा मैया स्नान करवाया था। गंगू चौधरी बारह वर्ष में एक बार आनेवाले कुम्भ मेले में बेटे

¹ रक्त का रिश्ता, डी.पी.वरुण, पृष्ठ सं.-7

को भी साथ ले गया था। मेले में भयंकर रूप से वर्षा होने लगी। सैकड़ों व्यक्ति बाढ़ में बह गये। सैकड़ो व्यक्ति पेड़ो, बिजली के खम्भों आदि से घायल होकर मर गये। गंगू चौधरी को होश आया। उसका अजय न जाने कहां चला गया। अजय की उम्र का एक बेहोश बच्चा मिला, उसे लेकर सीधा घर पहुँच गया। उसको डर था कि कोई देख लेगा कि बच्चा उसका नहीं है तो बच्चा भी छिन जायेगा और जेल अलग भुगतनी पड़ेगी। इसलिए उसने बड़ी चालाकी से काम लिया। उसे अपने ससुर के घर छोड़कर आया था। अजय को वहाँ कोई नहीं जानता था इसलिए वहाँ उसका रहना व पढ़ना सुरक्षित था। अब डॉ.सुषमा के मार्गदर्शन में अजय उच्च शिक्षा प्राप्त कर रहा था। रमा को अजय के बाद बेटी पैदा हुई। अजय ने बहन का अजीता नाम रखा था। अजीता स्कूल से घर जा रही थी। उसको रास्ते में प्यास लगी। ब्राह्मण राम प्रसाद का कुँआ दिखाई पड़ता है तो, कुआं के पास जा कर पानी पीने वाली थी तभी राम प्रसाद आ गया। वह अजीता को डण्डे से पीटता है।

गंगा प्रसाद शर्मा अपने इकलौते पुत्र के साथ गंगा स्नान के लिए आये थे। पहली पत्नी निःसन्तान ही चल बसी थी। उसने दूसरी शादी की थी दूसरी पत्नी से शादी के कई वर्ष उपरान्त अजय जन्मा था। इसलिए गंगा मैया के स्नान से पवित्र करना था। गंगा प्रसाद शर्मा धनी परिवार के थे इसलिए उनके साथ कई नौकर भी आये थे क्योंकि उनके परिवार को कुम्भ मेले में कोई कठिनाई न हो।

कुम्भ मेले में गंगू चौधरी का बेटा अजय गंगा प्रसाद शर्मा के पास रह जाता है। और गंगा प्रसाद का बेटा अमर गंगू चौधरी के पास रह जाता है।

माधोराम की दो पुत्रियाँ थी बड़ी नलिनी और छोटी नन्दिनी। नलिनी पढ़ने में तेज थी। नन्दिनी पढ़ने में मन्दबुद्धि थी। अजय नन्दिनी को दो साल से घर पर पढ़ाता था। अमर एक अमीर बाप का पुत्र था। नलिनी का अमर के साथ अच्छा परिचय था। अमर नलिनी के घर कई बार जा चुका था। माधोराम परिवार के साथ अपने सम्बन्धियों की शादी में जाने को

तैयार हो जाते हैं। लेकिन नलिनी कॉलेज के अधूरे काम से जा नहीं पायी। इस मौके को देखकर अमर नलिनी के घर आ कर बलात्कार करने की कोशिश करता है उसी समय अजय नन्दिनी को पढ़ाने के लिए आ जाता है। नलिनी को बचाता है। अजय से बदला लेने के लिए अमर उसका दो गुंडों से पिटाई करवाता है। अमर धोखे से नलिनी को अपने घर ले जाता है। अमर के घर पर गंगू चौधरी और रमा दोनों आ जाते हैं। गंगू चौधरी और रमा अमर के शरीर पर बने चिन्ह से अपने-अपने बच्चों को पहचान लेते हैं। माधौराम आ कर कहता है कि अजय मेरा होनेवाला दामाद है।

1.2.11 कमलकांत आई.ए.एस

प्रियदर्शी का उपन्यास ‘कमलकान्त, आई.ए.एस’ है। इस उपन्यास की कथा की शुरुआत मुरादाबाद में विनय कुमार से होती है। इस उपन्यास की कथा वर्तमान से अतीत की ओर है। फुलिया अपने पति कन्ना मरने के बाद तीन बच्चों को लेकर डूंगरपूर गाँव छोड़कर जाती है। फुलिया चमार जाति से है। फुलिया का बड़ा बेटा चिरौंजी है। चिरौंजी रोजगार माँगने केदार सिंह के पास जाता है। केदार सिंह फुलिया को काम वासना से देखता है। अगले दिन फुलिया का सबसे छोटा बेटा गंगा में नहाते समय डूबकर मर जाता है। केदार सिंह फुलिया और दो बेटे को राजपुर गाँव में रहने वाले ठाकुर शमशेर सिंह के पास भेजता है। सथरा में कन्ना का ममेरा भाई फूलचन्द रहता है, उनके पास तीनों पहुँच जाते हैं। फूलचन्द घर पर ही था। चिरौंजी का काका फूलचन्द कुछ भी मदद नहीं करता है। राजपुर गाँव में फुलिया रहने लगी। केदार सिंह की ज़मीन में चमार होरी काम करता था। होरी की पत्नी चम्पा और दो पुत्रियाँ जमुना और नन्ही थी। होरी की पत्नी चम्पा आर्थिक स्थिति के कारण केदार सिंह से सम्बन्ध रखती है। केदार सिंह राजपुर के पश्चिम पिलुवा गाँव के रहने वाले है। केदार सिंह ने शमशेर सिंह की दूसरी पत्नी शारदा से भी शारीरिक सम्बन्ध रखा था। केदार सिंह की हत्या शमशेर सिंह करवाता है। केदार सिंह का कत्ल करने का आरोप

होरी पर डाला जाता है, क्योंकि केदार सिंह को चम्पा से भी शारीरिक सम्बन्ध था। रामपुर गाँव में अच्छी फ़सल देखकर लोग त्यौहार मनाते हैं। उसमें फुलिया ढ़सक बजाती है। अच्छी फ़सल होने के बाद बाढ़ आ जाती है। बाढ़ आने के कारण ठाकुर से चमार जाति के लोग अनाज माँगने आते हैं। ठाकुर अनाज देता है, लेकिन फिर गुलामी भी करवाता है। जब होरी जेल गया तो, बेटी जमुना प्रसाद के साथ भाग जाती है।

चिरौंजी का विवाह सथरा गाँव के नानक की बेटी चमेली से हुआ था। चमेली का गर्भ के कारण पेट खराब हो गया था। चमेली को बार-बार घने खेतों में शौच को जाना पड़ता था। चमेली का गाँव के तीन-चार गुंडे बलात्कार करते हैं। चमेली घर नहीं जाती है। चिरौंजी की दूसरी शादी चमेली की बड़ी बहन प्यारी से होती है। चमेली बाबूराम की पत्नी के रूप में रहने लगी थी। चमेली और चिरौंजी का बेटा शंकर का जन्म हुआ था। ठाकुर गुलाब सिंह की पुत्रियाँ राधा और विमला का शमशेर सिंह से शारीरिक सम्बन्ध था। इसलिए गुलाब सिंह ने शमशेर सिंह के बंगले को आग लगा कर बदला लिया। ठाकुर की पत्नी और तीन बेटियाँ आग में मर गई थी। किन्दर की पत्नी ने एक पुत्र को जन्म दिया, जिसका नाम राम मोहन रखा था। शंकर की शादी कलावती से हो जाती है। बाबूराव शंकर को लेकर रामपुर गाँव जाता है। वहाँ उनके पिता चिरौंजी से मिलाता है। बाबूराम बीमारी के कारण मर जाता है। चमेली, कलावती और शंकर रामपुर गाँव में चिरौंजी के साथ रहने लगते हैं।

1.2.12 आज बाज़ार बन्द है

मोहनदास नैमिशराय का ‘आज बाज़ार बन्द है’ महत्वपूर्ण उपन्यास है। भारतीय समाज और आध्यात्मिकता का दर्शन भी इससे अछूता नहीं रहा बल्कि धार्मिक परंपराओं ने देह दर्शन की ओर भी अलौकिक तरीके से शुरुआत की है। मंदिरो ने नारी उत्पीड़न की परंपरा को विकसित किया है। देवदासियों से लेकर वेश्याओं की मार्मिक कथा को उजागर करता है ‘आज बाज़ार बन्द है’ उपन्यास में है।

इस उपन्यास में देह व्यापार से देह उत्सव की भूल-भुलैया में फँसी दलित महिलाओं की दारुण कथा का जैसे सजीव चित्रण हुआ है। इसमें देह सम्मोहन से तनाव के बीच छटपटाती राष्ट्र की बेटियों के जीवन का विभिन्न परिस्थितियों पर ठीक और बेबाक टिप्पणी की गई है। यह उपन्यास उनकी अस्मिता तथा सरोकारों का दर्शन भी कहा जा सकता है। मोहनदास नैमिशराय को देह व्यापार की अँधेरी और तंग गलियों से भरे परिवेश की गूँज से असीम संभावनाओं की तलाश है। देह बेचने वालियों के जीवन रंगों के उभरते विरोध पर आधारित रचना की सार्थकता भी तभी होगी।

खोई हुई अस्मिता की तलाश में संघर्ष करती राष्ट्र की बेटियों के जीवन की घटनाओं, दुर्घटनाओं के हर पहलू को उजागर करती यह सशक्त रचना है।

मोहनदास नैमिशराय के 'आज बाजार बन्द है' उपन्यास में समाज का सबसे उत्पीड़ित वर्ग यदि कोई है तो वे हैं वेश्या। यह उपन्यास वेश्यावृत्ति को केंद्र में रख कर लिखा गया है। समाज में वेश्याओं को अपराधी और अनैतिक मानते हैं। उपन्यास की कथा इस प्रकार है कि कस्बे से शहर आया एक पत्रकार सुमीत अचानक हिन्दू-मुस्लिम दंगे फूट पड़ने से, अपनी जान बचाने के लिए अनजाने में एक कोठे पर दस्तक देता है। जब वह कोठे में जाकर उन वेश्याओं को देखता है तो उसे वे सामान्य गृहस्थ औरतें दिखाई देती हैं।

कर्फ्यू की वजह से दो दिन दुकान बंद रहने के कारण अधिकांश कोठों पर अंधेरा छा गया है। इससे छुटकारा पाने के लिए परिवार के पुरुष की तरह अपनी जिम्मेदारी समझते हुए सुमीत मिट्टी का तेल लेने के लिए खाली कनस्तर लेकर नीचे उतरता है। थोड़ी दूर जाते ही पुलिस वाले उसे रोक लेते हैं। प्रश्न-उत्तर से ही भड़का कर पुलिस वाले उसे हवालात में डाल देते हैं। कर्फ्यू खुलने पर वेश्याएँ सुमीत को छुड़ाने पुलिस थाने जाती हैं। सुमीत की जमानत करा कर उसे वापस ले आती हैं। वापस आकर सुमीत उसी कोठे पर रहने लगता है।

वेश्या गृह में कोई वेश्याओं से शादी करके उन्हें बाहर नहीं लाता, सिर्फ वेश्याओं को एक भोग वस्तु की तरह रखते हैं।

उपन्यास में वेश्याओं के प्रति पुलिसवालों और समाज के ठेकेदारों की अमानवीयता और शोषण का भी चित्रण हुआ है।

वेश्याएं भी समाज के दूसरे वंचितों की तरह ही हैं, गरीबी, दुख, लाचारी, और अत्याचार से पीड़िता। इसलिए प्रतिकार का रास्ता भी साझा संघर्ष ही हो सकता है। अंततः वेश्याएं अपनी स्थिति से मजबूर हो कर विरोध प्रदर्शन करती हैं। अन्य मजदूरों की तरह निरीह वेश्याओं पर पुलिस लाठीचार्ज करती हैं। लाठी की चोट से शरीर घायल होता है, लेकिन उनका आत्मविश्वास नहीं टूटता। शबनम बाई मरते हुए भी आजादी की कामना से भरी है।

1.2.13 आक्रोश

‘आक्रोश’ उपन्यास रघुवीर सिंह द्वारा लिखा गया है। यह उपन्यास भोयापुर गाँव पर केन्द्रित है। इस उपन्यास का नायक बालदीन दलित जाति का है। नायिका उमा ब्राह्मण जाति की है। गाँव के अन्दर बेगार प्रथा को लेकर झगड़ा होता है। बेगार प्रथा को लेकर दलित और सवर्णों के बीच मुकदमा तीन साल तक चलता है। चौधरी हरबीर सिंह मुकदमा चलाने के लिए प्रधान गुप्ता जी से पैसे कर्ज लेकर कर्ज में ही फँस जाता है।

यह उपन्यास वर्णव्यवस्था पर आधारित है। लेखक अपने बारे में नहीं बात करते बल्कि पूरे दलित समाज की वेदना के बारे में बात करते हैं। उपन्यास का पात्र उमा के घर वाले उसके प्रगतिशील विचारों को पसंद नहीं करते हैं। वह नहीं चाहते थे कि उनकी लड़की पढ़-लिख कर युवकों के साथ घर-घर गाँव-गाँव घूमे। लड़कियों को पढ़ाने का एक मात्र मतलब यही था कि अच्छी गृहणी के रूप में दूसरे को सुशोभित करे। अच्छे रिश्तेदार

मिल जाए। उमा ने अपने माता-पिता के इन विचारों का विरोध किया। और घर छोड़कर छात्रावास में रहकर पढ़ने लगती है। समाजशास्त्र में एम.ए करने पर नौकरी लग जाती है। उसका मानना है कि स्त्री की स्वतंत्रता शिक्षा से ही हो सकती है। स्त्री ही क्यों दलित की मुक्ति भी शिक्षा से ही हो सकती है। उसके पास तर्क हो सकता है अपने विचार रखने के लिए।

बालदीन सरकार की नौकरी करने पर भी दलित जाति से होने के कारण दिल्ली जैसे महानगरों में भी उसको किराये का घर नहीं मिलता है। उसे घर के लिए जाति छुपाना पड़ता है। वह अपना नाम बालदीन शर्मा रखता है। उमा और बालदीन शर्मा समाज मंत्रालय में सोशल सर्वेयर के पद पर काम करते हैं। दोनों मिलकर समाज सुधार करते हैं। भज्जूराम अन्तर्जातीय विवाह करता है फिर भी उसकी जाति नहीं छूटती है। इस उपन्यास में नायिका पर गाँधीवाद का प्रभाव दिखाई पड़ता है तथा बालदीन पर अम्बेडकरवाद का प्रभाव।

‘आक्रोश’ उपन्यास के बारे में राजेश राव लिखते हैं कि “रघुवीर सिंह अपने उपन्यास आक्रोश में गंभीर सवाल उठाते हैं। उपन्यासकार का मानना है कि दलित और गैर दलित में विगड़ का स्वागत होना चाहिए लेकिन इससे जाति-पाति टूटेगी इसमें संदेह है क्योंकि सवर्ण विवाह के बाद भी अपनी मानसिकता में कितना बदलाव लाता है, इस को देखने की जरूरत है। विवाह के बाद भी सवर्ण अपनी जातिगत श्रेष्ठता को नहीं छोड़ता है। इसके लिए उपन्यास में दलित इंजीनियर बी.राम और सवर्ण महिला भानुप्रिया के विवाह को सामने रखते हैं। मैं लेखक के इस विचार से सहमत नहीं हो पाता हूँ। क्योंकि जाति पाति को तोड़कर मनुष्यता की समान अवधारण पर समाज को स्थापित करने की दलित विमर्श की वैचारिकी है वह कमजोर होती प्रतीत होती है। मेरा ही नहीं अधिकांश विचारकों, लेखकों का भी मानना है कि छुआछूत, जाति-पाति की वैमनस्यता, ऊँच-नीच एक दूसरे से मेल-मिलाप, बातचीत से ही जा सकती है। विवाह भी एक कारगर तरीका हो सकता है। हाँ

यह जरूर है कि व्यक्तिगत रूप से किसी का अनुभव खराब रहा हो लेकिन सामूहिक रूप से छुआछूत, खान-पान, विवाह आदि अपनाने से ही समाज में समरसता तथा समानता आएगी।”¹

1.2.14 क्या मुझे खरीदोगे

‘क्या मुझे खरीदोगे’ मोहनदास नैमिशराय का उपन्यास है। इस उपन्यास में कथा वर्तमान से अतीत की ओर है। उपन्यास की शुरुआत मुंबई के लालबत्ती क्षेत्र में सरिता ग्राहक के लिए भटकती हुई दिखने से होती है। पेशेवर लड़की सरिता से कहती है कि “सरिता अब तू ठंडी होती जा रही है। अपने में गर्मी इकट्ठा करा। गर्म नहीं होगी तो तुझे कोई खरीदेगा नहीं।”² उपर्युक्त कथन से पता चलता है कि सरिता का शरीर ठंडा पड़ जाने पर ग्राहक नहीं मिलते हैं। अब सरिता अतीत में खो जाती है। भीम बस्ती में दमयंती और उनकी बेटी सरिता रहते थे। बीस साल पहले सरिता के पिता का ट्रांसफर हुआ था तब ये लोग भीम बस्ती में आये थे। इस बस्ती में सरिता का जन्म हुआ था। सरिता के छः साल की उम्र में पिता गुजर गये थे। कॉलेज में सागर और सरिता साथ पढ़ते थे। सागर सरिता प्यार करते थे। वे दोनों कॉलेज से सटे हुए पार्क में हर दिन मिलते थे। कॉलेज से सटा हुआ पार्क में लंबी-लंबी झाड़ियाँ, घनी छाया अनगिनत पेड़ थे। यह पार्क सागर और सरिता दोनों के लिए मिलने का बेहतर स्थल था। सरिता गर्भवती बनी थी। सरिता के गर्भवती होने के बाद बात आ गयी जाति की क्योंकि सरिता दलित जाति से थी और सागर सवर्ण जाति से। सागर को सरिता से प्यार करने के लिए जाति से मतलब नहीं था, जब शादी की बात आ गयी तो जाति से मतलब हो गया था। सरिता से सागर कहता है कि “जिस जाति से तुम हो उस जाति की बहू को वे अपने घर में सहन नहीं कर पाएँगे।”³ उपर्युक्त उद्धरण से

¹ अपेक्षा, सं.तेजसिंह, जनवरी-जून 2010, पृष्ठ सं.-102-103

² क्या मुझे खरीदोगे, मोहनदास नैमिशराय, पृष्ठ सं.-16

³ वही, पृष्ठ सं.-44

पता चलता है कि सवर्ण समाज दलित स्त्री को बहू के रूप में मानने के लिए कभी तैयार नहीं हैं। उसे केवल भोग्या रूप में ही इस्तेमाल किया जाता है।

सरिता की एक मात्र सहेली नीलम थी। सरिता सागर के साथ मुंबई जाते वक्त उनकी माँ दमयंती का ख्याल रखने के लिए नीलम को कही थी। सरिता ने जीवन में पहली बार ट्रेन में इतनी लंबी यात्रा की थी। सरिता सागर के साथ दादर स्टेशन पर उतर गयी थी। ऑटो लेकर होटल पहुँच गयी थी। दोनों ने होटल में अलग कमरा ले लिये थे। होटल में एक सप्ताह भर दोनों ने जी भर कर मज़ा किया था। अगले दिन दोनों को दादर से चर्च गेट जाना था। फास्ट ट्रेन रुकी पहले सरिता चढ़ी। सागर ट्रेन चढ़ नहीं पाया। सरिता को सागर छोड़कर भाग गया। सरिता सागर को चर्चगेट पर खोजने लगी वहाँ पर सागर नहीं मिला फिर सरिता होटल वापस आ गयी। सरिता ने होटल में भी तीन-चार दिन सागर के लिए प्रतीक्षा की वहाँ भी नहीं आया। होटल का बिल दो सौ सत्तर रुपया हुआ था। लेकिन सरिता के पास सिर्फ दो सौ रुपये थे।

सरिता होटल छोड़कर सागर तट पर आ गयी थी। रमेश चार वर्ष पहले मुंबई आया था। रमेश के सागर तट पर सरिता से परिचय हुआ तो, अपने घर लेकर आया था। रमेश अकेला रह कर रोजी-रोटी के लिए लेखन कार्य करता था। प्रकाशक शर्मा जी ने रमेश के दो उपन्यास भी छपवाये थे। सरिता रमेश की पत्नी के रूप में रहने लगी थी। शर्मा जी को रमेश के लेखन कार्य का पाँच सौ रुपये देना था। लेकिन तीन सौ रुपये देकर दो सौ बाद में दूँगा बोला था। एक दिन शर्मा जी रमेश को दो सौ रुपये देने आये थे। घर में सरिता को देखकर चकित हो गया था। शर्मा जी रमेश का पैसा दो सौ रुपया सरिता को दे दिया। शर्मा जी ने सरिता को कहानी लिखने के लिए प्रोत्साहित किया। सरिता ने कहानी लिखी थी। सरिता की कहानियाँ ‘समंदर में डूबती लड़की’ और ‘डूबता सूरज का मैं’ मधुपर्क पत्रिका में शर्मा ने जी प्रकाशित करवाई थी। शर्मा जी रमेश के घर आने-जाने लगे। सरिता को कुछ

सामान भी दे गये थे। रमेश को सरिता का शर्मा जी से नजदीक होना अच्छा नहीं लग रहा था, क्योंकि शर्मा जी अच्छा आदमी नहीं था। अतः सरिता रमेश का घर छोड़कर शर्मा जी के पास चली गयी। शर्मा जी ने वेश्या धंधा करनेवाली मीरा से सरिता का परिचय करवाया था। शर्मा जी सरिता को नशीला कोलड्रिंक्स पिला कर भोगने लगा।

1.2.15 वीरांगना झलकारी बाई

मोहनदास नैमिशराय का उपन्यास 'वीरांगना झलकारी बाई' है। यह ऐतिहासिक उपन्यास है। यह उपन्यास झाँसी जिला के भोजला गाँव की पृष्ठभूमि पर लिखा गया है। बुन्देलखंड की ज़मीन पर वीरांगना झलकारी बाई का जन्म एक निर्धन कोली परिवार में हुआ था। झलकारी बाई के पिता का नाम सदोवर सिंह और माता का नाम जमुना देवी था। जब झलकारी बाई बहुत छोटी थीं तब उनकी माँ की मृत्यु हो गयी थी और उसके पिता ने उन्हें एक लड़के की तरह पाला था। उन्हें घुड़सवारी और हथियारों का प्रयोग करने में प्रशिक्षित किया था। उन दिनों की सामाजिक परिस्थितियों के कारण उन्हें कोई औपचारिक शिक्षा तो प्राप्त नहीं हो पाई, लेकिन उन्होंने खुद को एक अच्छे योद्धा के रूप में विकसित किया था। झलकारी बचपन से ही बहुत साहसी और दृढ़ प्रतिज्ञ बालिका थी। झलकारी घर के काम के अलावा पशुओं के रखरखाव और जंगल से लकड़ी इकट्ठा करने का काम भी करती थी। एक बार जंगल में उसकी मुठभेड़ एक बाघ के साथ हो गयी थी और झलकारी ने अपनी कुल्हाड़ी से उस जानवर को मार डाला था। एक अन्य अवसर पर जब डकैतों के एक गिरोह ने गाँव के एक व्यवसायी पर हमला किया तब झलकारी ने अपनी बहादुरी से उन्हें पीछे हटने को मजबूर कर दिया था। उसकी इस बहादुरी से खुश होकर गाँव वालों ने उसका विवाह रानी लक्ष्मीबाई की सेना के एक सैनिक पूरन कोरी से करवा दिया, पूरन भी बहुत बहादुर था और पूरी सेना उसकी बहादुरी का लोहा मानती थी। एक बार गौरी पूजा के अवसर पर झलकारी गाँव की अन्य महिलाओं के साथ महारानी को सम्मान देने झाँसी के

किले मे गयीं, वहाँ रानी लक्ष्मीबाई उन्हें देख कर अवाक रह गयी क्योंकि झलकारी बिल्कुल रानी लक्ष्मीबाई की तरह दिखतीं थीं। अन्य औरतों से झलकारी की बहादुरी के किस्से सुनकर रानी लक्ष्मीबाई बहुत प्रभावित हुईं। रानी ने झलकारी को दुर्गा सेना में शामिल करने का आदेश दिया। झलकारी ने यहाँ अन्य महिलाओं के साथ बंदूक चलाना और तलवार चलाने का प्रशिक्षण लिया। यह वह समय था जब झांसी की सेना को किसी भी ब्रिटिश दुस्साहस का सामना करने के लिए मजबूत बनाया जा रहा था।

1.2.16 अमानत

नन्दलालराम भारती का उपन्यास ‘अमानत’ है। एक बिना माँ के बच्चे की व्यथा की कथा है। तोहरा गाँव में मीठू और सुमारी देवी की बेटी विद्यावती के मरने से उपन्यास की कथा की शुरुआत होती है। गाँवपुर में रहने वाला बैजू लँगड़ा ठीक से देखे बिना मीठू दादा और विद्यावती की विवाह तय करके आता है। उनके साथ ही विद्यावती की शादी होती है। विद्यावती का भाई सच्चिदानन्द कहता है कि “बैजू के घर जाकर मेरी बहन कि किस्मत उजड़ गयी। बेचारी जितने दिन जीवित रही। मर-मर के जीवित रही। मरी भी तो दुर्दशा हो गयी थी। वाह रे मेरी बहन की किस्मत इतना धोखा दिया तूने। जिस बहन की शादी के लिए सड़क पर नहर पर माटी फेंका जमींदारों के खेत में काम किया, पढ़ाई छोड़कर सब व्यर्थ चला गया। बेचारी विद्यावती को जिन्दगी भर के लिए आँसू मिल गये बैजू के साथ में ब्याह करा।”¹ उपर्युक्त उद्धरण से मालूम होता है कि सच्चिदानन्द गरीब होने के बावजूद बहन के लिए बहुत मेहनत कि थी, उसकी मेहनत सब व्यर्थ हो गयी। बैजू विद्यावती को ठीक से खाना नहीं देता था। बीमार पड़ने पर दवाई नहीं दिलवाता था। विद्यावती मरते समय उनकी एक साल की बेटी सुषमा थी। सच्चिदानन्द की पत्नी धनवन्ती सुषमा का पालन-पोषण करने की जिम्मेदारी लेती है। मीठू दादा बेटे सच्चिदानन्द

¹ अमानत, नन्दलालराम भारती, पृष्ठ सं.-21

बेरोजगार होने के कारण हमेशा गालियाँ दिये जा रहे थे। कुछ दिन बाद सच्चिदानन्द को नौकरी मिल जाती है।

विद्यावती मरने के बाद बैजू बावला हो रहा था। उनकी माँ बैजू की दूसरी शादी सुमित्रा के साथ करती है। बैजू को नई पत्नी से पुत्र रत्न की प्राप्ति हो गयी। सुमित्रा बैजू से कहती है कि “क्यों जी तुम्हारी बिटिया तो अब सयानी हो गयी होगी। बच्चे को तो सम्भाल ही सकती है। उसे लाने की मैं सोच रही हूँ सुषमा वही तुम्हारी लाडली अब तो घर का काम करने लायक हो ही गयी होगी चलते है उसे ले आते एक दिन।”¹ उपर्युक्त कथन से पता चलता है कि सौतेली माँ सुमित्रा को घर लेकर आने का मकसद अपने बेटे की सेवा करने और घर का काम करने के लिए था।

बैजू से सुमित्रा कहती है कि “रजत की अब चिन्ता छोड़ो उसके लिए नौकरानी तो ला ही दिये हैं।....अब तो ये इस घर की नौकरानी हैं। चूल्हा चौका का जिम्मा भी तो यही सम्भालेगी। रजत की मालिश और हमारी मालिश तो यही करेगी। नानिहाल में भैंस का दूध पीकर खूब मोटी हो रही है। अब कुएं का पानी पीकर रहेगी ना तब पता चलेगा सौतेली माँ क्या होती हैं।”² उपर्युक्त कथन से पता चलता है कि सौतेली माँ सुषमा को हमेशा कष्ट देना और उसके प्रति अमानवीय व्यवहार करती नज़र आती है। सुषमा अपनी सौतेली माँ की व्यवहार से परेशान थी। वह घर से भाग कर नाना-नानी के पास पहुँच जाती है। सौतेली माँ का जुल्म सह सह कर तंग आकर भाग कर आयी है सब बोलने लगते हैं। मीठू दादा और समारी देवी सुषमा का हाल देख कर रोने लगे थे। उसके बाद सुषमा को गाँवपुर गाँव नहीं भेजते। सुषमा का ब्याह सुन्दर बाबू के साथ तय हो जाता है। सुषमा की शादी में सच्चिदानन्द कन्यादान करता है।

¹अमानत, नन्दलालराम भारती, पृष्ठ सं.-136

² वहीं, पृष्ठ सं.-156

1.2.17 मिस रमिया

कावेरी का 'मिस रमिया' एक महत्वपूर्ण उपन्यास है। इस उपन्यास में मुख्य पात्र मिस रमिया है। उपन्यास की कथा श्यामली और रमिया के स्कूल के शुरुआत के दिन से होती है। श्यामली पिछड़ी जाति से है और रमिया दलित जाति से। दोनों की दोस्ती स्कूल तक न रह कर एक-दूसरे के घर आने जाने, खाने-पीने, एक दूसरे के प्रति प्रेम, विश्वास तक जाती है। रमिया स्कूल में प्यास लगने पर अंदर बने कुएं पर से पानी की पीने वाली बाल्टी उठाकर लायी थी। टीकाधारी मास्टर रमिया को देखकर कहता है कि “अरे ! तू कौन है ? बाल्टी छू दी।”¹ पानी का बाल्टी छूने से टीकाधारी मास्टर ने रमिया की डंडे से पिटाई की। रमिया बीमार पड़ जाती है। स्कूल नहीं जाती है। रमिया के स्कूल नहीं आने के कारण श्यामली रमिया के घर जाती है। रमिया और श्यामली का तीसरा सहपाठी बैजू दलित समाज से है। ये तीनों स्कूल से छुट्टी होते ही जंगल में बेर तोड़ने जाते हैं। रमिया, श्यामली और बैजू की मित्रता को सवर्ण सहपाठी सह नहीं पाते हैं। इसलिए बैजू को घेर कर रतन, शंकर और अनुज मारते हैं। बैजू पिटाई के कारण बीमार पड़ जाता है। रमिया को स्कूल फीस अप्रैल 30 तक भरना था लेकिन घर की अर्थिक स्थिति खराब थी। रमिया का सहपाठी शिव रमिया की स्कूल फीस 5 रुपया भर देता है। शिव रमिया की आर्थिक स्थिति का फायदा लेना चाहता है। रमिया शिव पर नोट फेंकते हुए कहती है कि “किसी गरीब का इज्जत पांच रुपये के बराबर मत समझना?”² उपर्युक्त उद्धरण से मालूम होता है कि दलित स्त्री स्वाभिमान और इज्जत से जीती हैं।

श्यामली बैजू की ओर आकर्षित है। लेकिन श्यामली और बैजू दोनों ही समाज के बनाए जाति प्रथा को तोड़ नहीं पाते हैं। श्यामली की शादी कहीं और हो जाती है, बैजू शादी नहीं करता है। श्यामली और बैजू दोनों ही समाज की जातीय दुश्मनी की क्रूरता को

¹ मिस रमिया, कावेरी, पृष्ठ सं.-7

² वही, पृष्ठ सं.-22

जानते-समझते हैं। इस दुश्मनी का अनुभव उन्हें बचपन में ही हो गया था। रमिया ने बारहवीं कक्षा के बाद गरीब बच्चों के लिए स्कूल खोल लिया पर किसी दलित लड़की के लिए स्कूल खोलना इतना आसान नहीं था। स्कूल खोलने के बाद सौ बच्चे हो गये और स्कूल अच्छे से चलने लगा तो माधो चाचा उसे हड़पने को तैयार हो गए और अपनी बहू मधु को हेडमास्टर बनाकर ले आए। स्कूल नियमित कराने के लिए प्रयत्नशील हो गए। माधो चाचा और उनकी बहू मधु रमिया से इस कदर चिढ़ने लगे कि उसकी हत्या करने के लिए शंकर, अवध और रतन को पैसे दिए गए, शराब पिलाई गई। परंतु योजना की भनक शमी को लग जाने से शमी और बैजू दोनों ने तीनों का बहादुरी से मुकाबला किया। रमिया गाँव में होने वाले अत्याचारों से बचने का रास्ता निकालती है। रमिया और श्यामली डॉ. अम्बेडकर के शिक्षित बनो, संगठित रहो, संघर्ष करो, नारे को आदर्श बनाकर दोनों उच्च शिक्षा ग्रहण करने के लिए रांची चले जाते हैं। रमिया को रांची के हॉस्टल में जाति को लेकर वार्डन और छात्राएँ परेशान करती हैं। मिस रमिया अध्यापिका बनने के बाद जातीय विद्वेष के खिलाफ तनकर खड़ी होने लगती है। मिस रमिया विद्यालय के सांस्कृतिक कार्यक्रम की अध्यक्ष है और उसने जिले में होने वाले 26 जनवरी के कार्यक्रम में भाग लेने के लिए छात्राओं से बड़े मनोयोग से कार्यक्रम तैयार कराया। ए.के. सिंह, रमिया का सांस्कृतिक आध्यक्षा होना सह नहीं पा रहा था। रमिया ए.के. सिंह के दबाव के आगे ना झुककर अपने समुदाय के लोगों और दलित सामाजिक संगठनों की मदद लेकर ए.के. सिंह के सामने फौलाद की तरह खड़ी हो जाती है। रमिया की हिम्मत और अडिगता ए.के. सिंह को रमिया के पैरों में गिरकर माफी मांगने पर मजबूर करते हैं। उसे अपनी नौकरी खोने का डर है। रमिया का मानना है जब बेइज्जती सबके सामने की है तो माफी भी सबके सामने मांगना पड़ेगा। अंत में रमिया अपने चरित्र की ऊंचाइयों तक पहुंचती हुई ए.के. सिंह को अभय दान देती है। इस संघर्ष से उसके चरित्र के कई पहलू सामने आते हैं। वह 'मिस रमिया' के रूप में अविवाहित रहकर समाज सेवा का संकल्प लेती है।

1.2.18 उधर के लोग

‘उधर के लोग’ उपन्यास अजय नावरिया द्वारा रचित नवीनतम कृति है। यह उपन्यास एक जातिवाद के कलंकित समाज का आईना है। ‘उधर के लोग’ उपन्यास में छुआछूत से उत्पन्न कुंठित विचारधारा से ग्रसित समाज का चित्रण है। उच्च वर्गों में ही नहीं दलित वर्गों में भी जातिवाद से मानवतावाद की हत्या कैसे होती है इस उपन्यास में बताया गया है। इस उपन्यास में स्त्री पर भी विचार किया गया है।

इस उपन्यास में मुख्य रूप से चार पात्र हैं। वे हैं- मास्टर जी, आयाशा, संगीता और वंदना। अजय नावरिया ने उपन्यास की शुरुआत मौत में जीवन को खोजती एक वेश्या आयाशा से किया है। यह उपन्यास दलित साहित्य के नये पन्नों को खोलते हुए दलित साहित्य पर आनेवाले विमर्श का समाधान करता है। इस में अपनी जाति, अपनी पहचान, अपनी अस्मिता, अपनी राजनीतिक लोगों के बारे में बहस होती है। इस उपन्यास का नायक मास्टर जी है। मास्टर की आयाशा के प्रति विशेष सहानुभूति है। एक बार कालरा ने प्रोफेसर को घर बुलाया था। प्रोफेसर बार-बार मना करने पर भी अंत में कालरा के घर जाना पड़ा वहाँ राना भी उपस्थित था। अपनी शारीरिक भूख मिटाने के लिए कालरा व राना ने आयाशा को भी वहाँ बुलाया था। यहीं पर प्रोफेसर की आयाशा से पहली बार भेंट हुई थी। कालरा प्रोफेसर को भी आयाशा के साथ शारीरिक संबंध करवाना चाहता था। प्रोफेसर का व्यक्तित्व स्त्री को सम्मानित करने वाला था। प्रोफेसर का व्यक्तित्व देखकर आयाशा के मन में प्रोफेसर के प्रति सम्मान की भावना उत्पन्न होती है। आयाशा आदमी को बुरी नज़र से देखती थी वही आयाशा प्रोफेसर से प्रभावित होकर अपने बारे में बोलने लगी। इस के बाद दोनों एक दूसरे को दोस्त की नज़र से देखने लगते हैं।

एक दिन सुबह जब प्रोफेसर की नींद खुलती है तो पिछले दिन की सारी घटनाएँ उसके आँखों के सामने मँडराने लगती हैं। इतने में ही उसकी अम्मा चाय लेकर आती है।

मास्टर की दूसरी पत्नी संगीता को घर छोड़कर लगभग सात-आठ महीने हो चुके थे। किंतु धीरे-धीरे वह प्रोफेसर के नज़दीक आती चली गई थी। वंदना से विवाह करने से पहले ही प्रोफेसर कॉलेज में पढ़ाने लगा था। मास्टर एम.ए करते समय ही यू.जी.सी. की परीक्षा पास कर चुके थे। उसके साथ-साथ एम.ए में स्वर्णपदक मिलने से युनिवर्सिटी में महत्ता काफी बढ़ गयी थी। अध्यापक भी अधिक स्नेह-भाव से देखने लगे थे। उनमें से नज़दीक आने वालों में प्रो.अमरेश तिवारी थे और शहर के एक विख्यात कॉलेज में प्रोफेसर के पहले ही साक्षात्कार में नौकरी मिल गई थी।

प्रोफेसर की माँ सोचती है कि वंदना उसके काम में हाँथ बटाये लेकिन अपने आलसीपन के कारण वंदना पाँच मिनट के काम को कई घंटों में करती है। इसी बात को लेकर प्रोफेसर की माँ और पत्नी के झगड़ों के बीच में प्रोफेसर पिसता चला जाता है। प्रोफेसर के पिता इस शादी से पहले ही खिलाफ थे। धीरे-धीरे वंदना का स्वभाव झगड़ालू होता गया। वह बात-बात पर प्रोफेसर से लड़ने लगी थी। प्रोफेसर दलित है उसके साथ विवाह होने के कारण वंदना को अपराध-बोध महसूस हो रहा था। जिस दिन वंदना के जन्म दिन की पार्टी थी उस पार्टी में कोल्डड्रिंक्स के साथ-साथ शराब का भी इंतजाम किया गया था। जयंत, फिरोज, असलम, सुशील, और वेद प्रकाश सभी आए थे। सुशील को ड्रिंक्स की आदत थी। वह अपनी जेब से रॉयल स्टैग का हाफ निकालकर पीने लगता है। दो पैग लगाने के बाद सुशील प्रोफेसर पर पीने के लिए दबाव डालता है और प्रोफेसर को मजबूरन पीना पड़ता है। वंदना यह देखकर गुस्से से लाल हो जाती है और खुद भी पीने लगती है। भला-बुरा कहती है। प्रोफेसर वंदना को एक थप्पड़ मारता है। वंदना भी थप्पड़ मारकर ऊपर के कमरे में चली जाती है और प्रोफेसर की सारी इज्जत नीलाम हो जाती है।

अगली सुबह दोनों एक-दूसरे से माफी माँग लेते हैं। प्रोफेसर तो इस बात को भूल जाता है पर वंदना इस बात को नहीं भूलती। मास्टर अलग रहने के लिए पिता से आज्ञा

लेने जाता है तो पिता यही कहता है कि जैसा तुम्हें ठीक लगे वही करो। क्योंकि पिता अपने बेटे से बहुत प्यार करते थे। प्रोफेसर के माता-पिता को छोड़कर अलग घर में रहने पर भी वंदना के जिद्दी और झगड़ालू स्वभाव में परिवर्तन नहीं हुआ। वह बात-बात पर शक करती थी। वंदना के शक करने का कारण यह था कि कभी-कभी अनजाने नंबर से प्रोफेसर को फोन आते थे और वे कोई उत्तर नहीं देते थे।

अगले दिन शाम को प्रोफेसर नए साल की पूर्व संध्या की पार्टी में शामिल होना चाहते थे। लेकिन वंदना उसे जाने नहीं देना चाहती। वह मरने की धमकी देती है। प्रोफेसर इसे हमेशा की तरह एक फिजूल की धमकी ही समझता है। प्रोफेसर बहाना बनाकर चला जाता है। जयंत और असलम वहाँ पर पहले से मौजूद थे। पार्टी में जातिवाद, उपजाति और आरक्षण पर आधारित बहस होती है। प्रोफेसर को घर जाना था लेकिन भूल जाते हैं। फिर बाद में घर जाने की कोशिश करते हैं लेकिन ऑटो नहीं मिलता। प्रोफेसर और असलम दोनों सुशील के घर में ही रुक जाते हैं।

अगले दिन सुबह प्रोफेसर नींद से उठकर असलम को लेकर अपने घर जाता है। वहाँ भीड़ जमा थी। प्रोफेसर ने कभी सोचा भी नहीं था कि वंदना इस तरह आत्महत्या कर लेगी। वंदना की डायरी में एक पन्ने पर लिखा था कि शराब पीकर पति ने उसे पीटा। उसी के आधार पर प्रोफेसर को छः महीने जेल में रहना पड़ा। केस तीन साल तक चला था। उस जिंदगी के बाद अब नया जीवन शुरू होता है। वह उसे भूल नहीं पाता है। इसी बीच उनके घर वाले उसकी शादी संगीता से तय कर देते हैं। तब प्रोफेसर उनके पिता और चाचा से कहता है कि वंदना के बारे में संगीता को सब कुछ बताया जाय। लेकिन वह इस बात को छुपा कर उसकी शादी कराते हैं। जब यह बात संगीता को पता चलता है, वह घर छोड़कर चली जाती है।

अचानक आयशा एक दिन प्रोफेसर को फोन करके अपने घर बुलाती है। वहाँ पर प्रोफेसर आयशा को बीमार हालत में देखता है वह उसे देखकर भयभीत हो जाता है। पर उसे आयशा पर दया भी आती है। प्रोफेसर आयशा की ये हालत देखकर डर जाता है कि कहीं आयशा को एड्स तो नहीं है। वह आयशा का पूरा ईलाज करवाता है। आयशा की टेस्ट रिपोर्ट के बाद पता चलता है कि वह ठीक हो जाएगी। उसके एक महीने के बाद वह ठीक हो जाती है। इस बीच उसने दो काम किये। एक तो अपना घर बेचकर शहर के दूसरे हिस्से में किराये पर रहने चली गई। और दूसरा अपना मोबाईल नंबर बदल दिया था। नया नंबर वह सिर्फ प्रोफेसर को यह कहकर देती है कि आप मुझसे पूछे बिना यह नंबर किसी को मत देना। प्रोफेसर इस बात से खुश होता है। कालरा सुशील, असलम और राना अपने-अपने तरीके से आयशा का पता लगाने की कोशिश करते हैं। लेकिन उन्हें आयशा का कोई सुराग नहीं मिल पाता है।

प्रोफेसर एक दिन अपने दोस्तों के साथ एक गाँव में जाने का प्रोग्राम बनाते हैं। उस गाँव का नाम था लालपुर खुर्द। राजबीर नाम का लड़का इन सबको वहाँ ले जाता है जो कि पास के गाँव राजपुर खुर्द में रहता है। प्रोफेसर की टीम उस गाँव के डॉ. बने सिंह और प्रधान भारती राम से मिलते हैं। इनसे मिलने के बाद प्रोफेसर और उसके दोस्त यहाँ पर एक शिशु-गृह और प्राथमिक चिकित्सालय बनवाना है यह तय कर लेते हैं।

अचानक प्रोफेसर को आयशा का फोन आता है। वह प्रोफेसर से मिलने के लिए सेंट पॉल मिशनरी चर्च पर बुला लेती है। क्योंकि तीन दिनों के बाद आयशा को जाना था। अब वह मिस्टर वेबर के साथ रह रही थी और उसमें अपना मकसद ढूँढ़ लिया था। इस बीच एक दिन प्रोफेसर संगीता से मिलता है।

सुशील से प्रोफेसर को फोन आया था। सुशील चौदह अक्तूबर को अस्पताल का शिशुगृह और आंगनबाड़ी के भवन-निर्माण की नींव की ईंट रखने की बात करता है। और

आगे कहता है कि इस प्रॉजेक्ट में चमार न रहे वे लोग हमें कभी लीडरशिप नहीं देंगे। सुशील को चमारों के बारे में घृणा थी।

अम्मा प्रोफेसर को फोन करती है और कहती है कि संगीता को भारतीय आयुर्विज्ञान हॉस्पिटल ले गए हैं। प्रोफेसर के पास पिता और चीकू भी उपस्थित थे। पिता कहते हैं कि तुम यहाँ का काम निपटा के आना। मैं और चीकू चलते हैं। बाद में प्रोफेसर हॉस्पिटल पहुँचते हैं। बेटी को देखकर खुश होते हैं। वह भविष्य के बारे में सोच रहे थे। प्रोफेसर को चिंतित देखकर अम्मा कहती माँ-बाप से अलग होना इतना आसान नहीं है।

1.2.19 थमेगा नहीं विद्रोह

उमराव जाटव का पहला उपन्यास ‘थमेगा नहीं विद्रोह’ 2008 में वाणी प्रकाशन से प्रकाशित हुआ। इस उपन्यास में दरियापुर गाँव के पात्रों की कथा बताई गई है। दरियापुर गाँव तीन भागों में बटा हुआ है। गाँव के पूरे उत्तर, पूर्व और आधे पश्चिम में गूजर बसते हैं। गाँव के दक्षिण में आधे पश्चिम पर जाटव बसते हैं। दरियापुर के लगभग सभी खेतों के मालिक गूजर हैं और जाटव मजदूर हैं। कटाई के महीनों में जाटवों को साल भर की लगभग आधी अन्न की कमाई उसी समय की जाती है। गाँव के कुएँ को सैकड़ों वर्ष पूर्व बंजारों ने खोदा है। पचास वर्ष तक अंग्रेजों ने इस गाँव को बसने नहीं दिया। बाद में इस गाँव में गूजर और जाटव साथ-साथ आए। जाटव गूजर से खेत खरीद कर बसते हैं। कुएँ के पानी पीने को लेकर गूजर और जाटव के बीच गाँव पंचायत से लेकर कोर्ट-कचहरी तक संघर्ष चलता है। जाटवों को गूजर कुएँ से पानी भरने नहीं देते हैं। इसलिए मुथरा जाटव के नेतृत्व में लाठी का जवाब लाठी से देने का निर्णय लिया जाता है। गूजर चंदन, जाटव नंबरदास रहम से कहता है कि “औकात में रहो, गूजर मालिक हैं और जाटव प्रजा। इसलिए शासकों के द्वारा पारित आदेश की खिलाफत हुई तो घरों से निकाल-निकालकर जाटवों को पीटा जाएगा। जाटवों की बहू-बेटियाँ भी सुरक्षित न रह पाएंगी। यह भी बता

दिया कि वे अपने जवान लड़कों को नियंत्रित रख पाने की स्थिति में न तो हैं और न ऐसी इच्छा रखते हैं।”¹ उपरोक्त उद्धरण से पता चलता है कि एक जाति दूसरी जाति पर अधिकार चलाती है। जाटव का रिपोर्ट लिखवाने के लिए थाना जाने पर पुलिस वहाँ से भगा देती है। गंगाराम जाटव की पत्नी रामबती गूजर और जाटव संघर्ष में सामूहिक बलात्कार का शिकार बन जाती है। उस अपमान से रामबती आत्महत्या कर लेती है। पुलिस के आने और पोस्ट मार्टम करने के बाद बलात्कार का मामला सामने नहीं आता है।

‘थमेगा नहीं विद्रोह’ उपन्यास के बारे में रामजी यादव कहते हैं कि “‘थमेगा नहीं विद्रोह’ कुंठित आग्रहों और कमजोर तथ्यों पर गढ़ा गया उपन्यास है, जिसमें आने वाली सामान्य सूचनाएँ उसे हाल में प्रकाशित दलित उपन्यासों में सबसे बेहतर उपन्यास बना सकती थी लेकिन कृतिकार की दृष्टि हीनता ने उसे लगभग तर्कहीन और हास्यास्पद बना दिया है। इसी कारण वह विद्रोह का रूपक नहीं बनता बल्कि जाति विद्वेष और सांप्रदायिकता का पुलिंदा बन जाता है। इसमें भी स्त्रियों और बाल्मीकि समाज का अपमानजनक चित्रण ही अभीष्ट है। विद्रोह की कोई प्रेरणा संभव: इसलिए इसमें दिखाई नहीं देती।”²

1.2.20 डंक

रूपनारायण सोनकर का पहला उपन्यास ‘डंक’ 2009 में प्रकाशित हुआ है। डंक उपन्यास की शुरुआत नायक विराट और नायिका संध्या मध्यप्रदेश के टिनहारीया गाँव से भ्रमण करने से शुरू करते हैं। इस उपन्यास में विभिन्न प्रदेशों के नगरों, गाँव और जंगल में आदिवासी बस्ती उनका रहन-सहन, खान-पान, वेश-भूषा और कामक्रीड़ा के बारे में वर्णन हुआ है। आदिवासी जितना सेक्स में संतुष्ट रहते हैं, उतना अमीर लोग संतुष्ट नहीं रह पाते

¹ थमेगा नहीं विद्रोह, उमराव सिंह जाटव, पृष्ठ सं.-66

² अपेक्षा, सं.तेजसिंह, जनवरी-जून 2010, पृष्ठ सं.-29

हैं। इस उपन्यास में आदिवासियों की परंपरा और शादी की प्रथा पर प्रकाश डाला गया। अमीर लोग आदिवासियों की वेशभूषा की तस्वीर खींचकर विदेशों में लाखों डालर कमाने का कार्य करते हैं।

लेखक भारत के गाँव तक सीमित न रह कर अमेरिका में स्थित एन.आर.आई परिवार की जीवन शैली परंपरा के बारे में भी बात करते हैं। अमेरिका और भारत की महिलाओं के बीच का अन्तर बताते हैं। उत्तर प्रदेश में फतेहपुर जिले में पुल बनाने के लिए दलितों की बलि चढ़ाना जैसे अंधविश्वासों के बारे में इस उपन्यास में चित्रण किया गया। साथ ही दलित और आदिवासी जीवन की विभिन्न कथाओं का विवरण दिया गया।

चमार जाति का भगतुआ की बहु गुजर जाती है। घर में अपने बेटे मैकू और बहू कंचनिया के साथ रहता था। मैकू दूसरे गाँव के रिश्तेदार की शादी में जाता है। कंचनिया को घर में अकेली पाकर ससुर भगतुआ बलात्कार करता है। बहू पवित्रता के लिए बदन पर आग लगा लेती है। भगतुआ भी प्रायश्चित के लिए आग लगा लेता है।

लखनऊ शहर में जगत सिंह डिप्टी एस.पी पद पर आसीन है। उनकी पत्नी गाँव में रहती है। इसलिए जगत सिंह बड़ी बहू गीतू से शारीरिक संबंध बनाने की कोशिश करता है। लेकिन वह विरोध करती है। जगत सिंह की छोटी बहू नीतू शारीरिक संबंध बनाने के लिए स्वीकृति देती है।

ओम राज 'डंक' उपन्यास के बारे में लिखते हैं कि "मेरी दृष्टि में विराट और संध्या उपन्यास के नायक तथा नायिका नहीं उपन्यास में वर्णित घटनाओं को उदघोषित करने वाले कथानक को आगे बढ़ाने वाले पेड़ की डाल पर बैठे तोता-मैना की तरह मात्र सूत्रधार हैं। उपन्यास घटनाओं से बंधा हुआ है, अतः प्रत्येक घटना को गतिशीलता प्रदान करने के लिए हर घटना में एक सक्रिय पात्र नायक की भूमिका का निर्वाह करता प्रतीत होता है।

कहीं-कहीं हमें खलनायक ही नायक जैसे दिखाई देते हैं। क्योंकि कथानक का पूरा भार उनके वजूद पर टिका है। भगतुआ, जगत सिंह, देव नारायण, सी.के.साधी ऐसे ही पात्र हैं। चेखोव की मान्यता है कि उपन्यासकार को प्रश्न उभारने चाहिए, उनका हल प्रदान नहीं करना चाहिए। रुपनारायण सोनकर इसको अमान्य घोषित करते हुए प्रश्न भी उभारते हैं, और उनका समाधान भी प्रस्तुत करते हैं।”¹

1.2.21 चाँदी की हँसुली

‘चाँदी की हँसुली’ नन्दलाल भारती का उपन्यास है। गुदरीराम दलित जाति से है। जो इस उपन्यास का मुख्य पात्र है। गाँव में लोग जाति का भेदभाव करते हैं। इसलिए गुदरीराम गाँव छोड़कर कलकत्ता जाता है। गुदरीराम कलकत्ता शहर में चटकल का काम करता है। गुदरीराम को तीन बेटे, दो बेटियाँ, इनमें सबसे छोटी सोनरी। सोनरी को बचपन से गहने का मोह था। गुदरीराम से सोनरी गहने माँगती है। गुदरीराम की आर्थिक स्थिति ठीक नहीं होने के कारण गहने दे नहीं पाता। मंगरी बेटी सोनरी से कहती है कि “तू ब्याह कर अपनी ससुराल ही तो जायेगी। तुम्हारी गहने की ख्वाहिशें तेरे ब्याह से ही पूरी होगी। तेरे दूल्हाजी लेकर आयेगे हँसुली और भी गहने। ब्याह का गहना पहनकर रानी लगेगी।”² उपर्युक्त कथन से पता चलता है कि गरीबी के कारण बेटी की इच्छा पिता पूरी कर नहीं पाते हैं।

सोनरी की शादी प्रेमनाथ से तय होती है। प्रेमनाथ के चार भाई एक बहन और विधवा माँ। प्रेमनाथ का बड़े भाई दीनानाथ घर का मुखिया है। खिचडू काका कहता है कि “भइया हम कमरी दुनिया के लोग मेहनत-मजदूरी पर बसर करने वाले हैं। कहाँ हमारी बहू-बेटियों को महलों में बैठे रहना है! खेतीबारी का काम तो करना है। सोना भी

¹ अपेक्षा, संपा. तेजसिंह, जनवरी-जून 2010, पृष्ठ सं.-34

² चाँद की हँसुली, नन्दलाल भारती, पृष्ठ सं.-18

पास रखना खतरे से खाली तो है नहीं।”¹ उपरोक्त उद्धरण से स्पष्ट होता है कि गरीब मजदूर का सोना पहनना मतलब डाकूओं से जान का खतरा होना है।

दीनानाथ ने अपने भाई प्रेमनाथ की शादी में गहने सोनार से कर्ज के रूर में लिये थे। दीनानाथ का कर्ज सिर पर चढ़ गया। दीनानाथ को बहन की शादी करनी है। प्रेमनाथ का छोटा भाई काशीनाथ छोटी-मोटी चोरी करने लगा है। भीखानाथ शहर जाकर सबको भूल गया है। दीनानाथ गाँव-गाँव में घूम-घूम कर नाच-गाकर रुपया लाता है। प्रेमनाथ खेतों में मजदूरी करता है। सोनारी को बच्चों की फिक्र होने लगी थी। कुछ दिन बाद सोनारी को बेटा पैदा हुआ। सोनारी का बेटा राजू उच्च शिक्षा ग्रहण करता है। सोनारी आशा करने लगी की मेरा बेटा बड़ा अफ़सर बनेगा। मुझे हँसुली बनवायेगा। प्रेमनाथ राजू को तार भेजता है कि आप की माँ बिमार है। राजू को तार शाम को मिली थी। लेकिन गाँव आने के लिए उसके पास कोई साधन नहीं था। राजू सुबह गाँव जाने के लिए रेल पकड़ता है। राजू के आने तक सोनारी मर चुकी थी। सोनारी की लालसा किसी अमीर महिला से कम ना थी। सोनारी की इच्छा पूरी नहीं हो पायी। इसके साथ ही उपन्यास समाप्त होता है।

1.2.22 ज़ख़्म हमारे

‘ज़ख़्म हमारे’ मोहनदास नैमिशराय का उपन्यास है। मोहनदास नैमिशराय दलित साहित्य के सुप्रसिद्ध लेखक और चिंतक हैं। यह उपन्यास एक अति संवेदनशील कथाकृति होने के साथ-साथ समकालीन इतिहास का एक मार्मिक दस्तावेज भी है। यह गुजरात के हिन्दू मुसलमान दंगों पर केंद्रित उपन्यास है। उस समय के दलितों की स्थिति को चित्रित किया गया है।

¹ चाँद की हँसुली, नन्दलाल भारती, पृष्ठ सं.-31

कथा की शुरुआत होती है भूकंप से, जिसमें धर्मों और जातियों के बीच विरोध होता है। धर्म और जाति विभेद की स्थिति भूकंप राहत के कार्यक्रम में भी दिखाई पड़ती है। शहर डेरों और कैम्पों में बँटा था। वहाँ पर दलित गुलाम से सवर्ण कहता है कि “कलियुग आ गया है। मुझे तो फिर नहाना पड़ेगा।”¹ उपर्युक्त उद्धरण से पता चलता है कि वे सब भूकंप से निर्वासित लोग थे, फिर भी उनके अंदर की जाति नहीं छूटी थी। इस व्यवस्था में जन्म से लेकर मृत्यु तक जाति पीछा नहीं छोड़ती है। दलित, दलित के रूप में रह जाता है। समाज का एक कुचला हुआ समाज है जिसके साथ पशुओं की तरह सलूक किया जाता है। लेकिन गुजरात के जन-जीवन में एक और भूकंप आने वाला है, जिसके चलते इन्सानियत के सारे मूल्य सांप्रदायिक विद्वेष की गिरोह में फँस जाते हैं। ‘गोधरा कांड’ के बहाने मुस्लिम अल्पसंख्यकों के साथ पाशविक क्रूरता दिखाई पड़ती है।

‘ज़ख्म हमारे’ उपन्यास में गुजरात के सांप्रदायिक तांडव का विवरण बहुत ही बारी की से हमारे सामने उपस्थित होता है। लेकिन यह मूल रूप में दलित पीड़ा का आख्यान है, जिसमें हम पाते हैं कि सिर्फ दलित परिवार में जन्म लेने के कारण देश के एक बड़े हिस्से को लगातार अपमानित तथा प्रताड़ित होना पड़ता है। इससे भी आगे दलित और मुस्लिम एकता की खोज की कथा है, जो दूषित सवर्ण हिन्दू मानसिकता का विकल्प बन सकती है। इस एकता के लिए जिस साहस और संघर्ष की आवश्यकता है, उसका जीवंत चित्रण कर मोहनदास नैमिशराय ने यह भी संकेत कर दिया है कि रास्ता किस तरह का है।

1.2.23 मुक्ति पर्व

मोहनदास नैमिशराय का उपन्यास ‘मुक्ति पर्व’ है। यह उपन्यास दलितों की गुलामी से मुक्ति पर आधारित है। इस उपन्यास में बंसी की माँ छमिया, पत्नी सुंदरी और बेटे सुनीत है। आजादी की सुबह सूरज निकलते ही सुन्दरी को बेटा पैदा होता है। नवाब अली खाँ की

¹ ज़ख्म हमारे, मोहनदास नैमिशराय, पृष्ठ सं.-11

हवेली में बंसी काम करता है। बंसी आजादी मिलने के दिन नवाब की हवेली की गुलामी की नौकरी छोड़ कर आता है। उसी दिन बेटे का जन्म होता है। इसलिए मुक्ति पर्व कहा जाता है। बंसी सदियों से चली आ रही पुरानी परंपरा को तोड़ने के लिए पंडित के बिना स्वयं ही उसका नाम सुनीत रखता है। पंडित केशव प्रसाद को खाली हाथ वापस भेज देता है। क्योंकि पंडित दलित बच्चों के नाम घृणास्पद तरीके से रखते थे जैसे कालू, चेतू, बुद्धू, रगडू, झगडू, दगडू आदि। बंसी नौकरी छोड़ने के बाद खेत पर मजदूरी का काम करता है। आर्यसमाजी रामलाल दलित बस्ती से चुनाव में जीत कर वहाँ के दलित बच्चों के लिए स्कूल खोलता है। सुनीत उसी स्कूल में पढ़ता है। जूनियर हाईस्कूल में छठवीं कक्षा में पहले दिन सुनीत को जाति के अपमान का सामना करना पड़ता है। सुमित्रा सहानुभूति व्यक्त करके मित्र बन जाती है। सुनीत से कोई दोस्ती नहीं करते थे क्योंकि वह चमार है। सुमित्रा शर्मा जी की बेटी है। वह जाति को नहीं मानती है। इस उपन्यास में शिक्षक पाण्डे को सुनीत का विरोध करने वाले पात्र के रूप में चित्रण किया गया है। सुनीत और सुमित्रा शिक्षक का प्रशिक्षण पूरा होने के बाद एक साथ शिक्षक बन जाते हैं। सुनीत करतारा की बेटी भूरी को स्त्री शिक्षा का महत्व बताकर उसे स्कूल भेजने के लिए कहता है।

कैवल भारती 'मुक्ति पर्व' उपन्यास के बारे में लिखते हैं कि “मोहनदास नैमिशराय ने आजादी की अर्थवत्ता और आजादी को हासिल करने के लिए दलितों की भूमिका का इस उपन्यास में बहुत मार्मिक वर्णन किया है। उसे वही अनुभव कर सकता है, जिसने गुलामी को जिया है। लेखक न शिक्षा को मुक्ति पथ माना है और इसी पथ को उपन्यास की कहानी के केंद्र में रखा है। सुनीत जो कहानी का नायक है, कलेक्टर या कप्तान बनने का स्वप्न नहीं देखता है, ये वैयक्तिक उत्थान और मुक्ति के सपने हैं। लेखक के समक्ष एक व्यक्ति की मुक्ति का सवाल नहीं है, वरन संपूर्ण समाज की मुक्ति का सवाल है और इस सवाल का हल वह शिक्षा में देखता है। एक अशिक्षित समाज एक सुस्त और गुलाम समाज होता है। वह परंपराओं और रूढ़ियों से मुक्त होने में कोई उत्साह नहीं दिखाता।

इसलिए, सुनीत कलेक्टर, कप्तान न बनकर एक शिक्षक बनने का स्वप्न देखता है। वह शिक्षक बनकर अपनी बस्ती के तमाम बच्चों को शिक्षित बनाता है, ताकि वे आजादी के लिए संगठित होकर संघर्ष कर सके, जो बाबासाहेब अम्बेडकर का लक्ष्य था।”¹

1.2.24. हिडिम्ब

एस.आर.हरनोट द्वारा रचित एवं चर्चित उपन्यास ‘हिडिम्ब’ है। इस उपन्यास में शावणू नडन को अपने पिता के मरने पर 20 बिघा जमीन देते हैं। अपने पिता के देहान्त के बाद शावणू और उसकी पत्नी सुरम देई, माँ नड, बेटी सूमा और बेटे कांसी राम ये सब लोग उस जमीन पर रहते हैं। उसी जमीन को अपनी रोजी रोटी का साधन बना लेते हैं। पूरा परिवार सुखशांति से रहता है। शावणू को दी गयी जमीन एक ऐसी जगह पर रहती है जो सभी के मन को अपनी तरफ आकर्षित करती है। उसके जमीन के नीचे से एक पवित्र नदी बहती है।

जब चुनाव के लिए एक नेता उधर आता है, तब उसकी नजर इस जमीन पर पड़ता है। वह किसी भी हालत में वह जमीन पाने के लिए योजना बना लेता है। वहाँ पंचतारा होटल का निर्माण करने योजना बनाता है। उस योजना को साकार करने के लिए शावणू से मंत्री कहता है कि “मुझे तुम्हारी वो जमीन चाहिए....नदी किनारे वाली। बोलो कीमत बोलो।”² उपर्युक्त कथन से पता चलता है कि मंत्री जमीन पाने के लिए शावणू को खरीदना चाहता है।

उस प्रदेश के पटवारी, ठेकेदार, स्कूल टीचर और प्रधान आदि लोगों को मंत्री अपने वश में कर लेता है। ये लोग मंत्री के लिए कुछ भी करने को तैयार हो जाते हैं। वे लोग शावणू को बार-बार सताते हैं। ग्राम प्रधान, ठेकेदार और सेक्रेटरी एक दिन शावणू के घर

¹ अपेक्षा, सं.तेजसिंह, जनवरी-जून 2010, पृष्ठ सं.-19

² हिडिम्ब, एस.आर.हरनोट, पृष्ठ सं.-20

जाते हैं, कहते हैं कि तुम अपनी जमीन मंत्री को दे दो। शावणू इस बात को नहीं मानता है। शावणू को तंग करने लगते हैं, उनकी पत्नी सुरम देई घर से आ कर कहती है कि “हरामजादे आ तो तू क्या कर लेता ? बोल-बोल क्या कर लेता तू ? जमीन म्हारी है। तेरे और तेरे मंतरी के बाप की नी है ये ज़मीन। हमने इसको खून-पसीने से बाया-कमाया है। मेरा मरद तुम्हारे को कुछ नी बोला तो तुम समझ गए कि तुम्हारी टांग ऊपर हो गई। तुम्हारे मुँह में जो आए बकते जाओ।... मैं बोलती हूँ तुम मेरे घर से निकल जाओ। फटाफट। नहीं तो जितने में तुम्हारे मंतरी को पता लगेगा उतने में तो मैंने तुम्हारे टुकड़े-टुकड़े कर देणे। इसी जमीन में दफणा देणा मैंने तुमको।”¹ यह बात मंत्री को पता चलता है। मंत्री शावणू के परिवार को खत्म करने की योजना बनाता है।

मंत्री शावणू का बेटा कांसी राम को खत्म करने के लिए षडयंत्र बनाता है। स्कूल मास्टर के द्वारा प्रसाद में अफीमदाना और भांग के बीज मिलाकर और उसे खिलाकर कांसी राम को मरवा देता है। कांसी राम के मरने से उनकी माँ सुरम देई पागल हो जाती है। शावणू को पत्नी और बेटे के मरने से बहुत दुःख होता है और सोचने लगता है कि बेटी सुमा का क्या हाल होगा? सुमा विदेशी लड़का एरी से प्यार करती है। एरी सुमा से तीन साल के लिए कण्ट्रैक्चुअल शादी कर लेता है। इस शादी में तीन साल पत्नी के रूप में रहने के लिए दो लाख देता है अगर बच्चा हुआ तो और एक लाख का शर्त रखता है। सुमा एरी के साथ चली गयी। और घर में शावणू अकेले रह गया था।

मंत्री शावणू पर चोरी का इल्ज़ाम लगा कर जेल भेजता है। शावणू मंत्री को जमीन देना नहीं चाहता था। इसलिए जमीन को वहां के दलितों, गरीबों, आदिवासियों और अस्पताल के लिए दान देता हैं। उस समय मंत्री की आशाएँ ओझल हो जाती है।

¹ हिडिम्ब, एस.आर.हरनोट, पृष्ठ सं.-35-36

1.2.25 भगोड़ू पुजारिन

डॉ.रामस्वरूप संखवार का उपन्यास ‘भगोड़ू पुजारिन’ है। यह उपन्यास तीन भागों में विभाजित है। भाग-1 में लेखक संकेत करते हैं कि मंदिर में किस तरह का कार्यकलाप होता है और ब्राह्मण जाति में स्त्री की स्थिति को में चित्रण किया है। इस उपन्यास में शिव मंदिर के पुजारी मुरलीधर से कथा की शुरुआत होती है। भारतीय व्यवस्था में हिन्दुओं में विशेषतः ब्राह्मण जाति में से साठ-सत्तर वर्ष की उम्र तक शादी करना मान्य है। अगर ब्राह्मण कन्या की एक बार शादी हो चुकी है तो किसी भी दशा में दूसरी शादी नहीं कर सकती है। राधा पुजारी की पाँचवीं बीबी है। इससे पहले दो बीबियों को मार-पीट कर भगा दिया था। एक बीबी स्वयं उसे छोड़कर भाग गई थी। अंतिम चौथी बीबी की रहस्यमय ढंग से हत्या कर दी जाती है। पुजारी पाँचवीं बीबी राधा को पाने से खुश था। उस अवसर पर अलीफकीर, ठाकुर जगत सिंह, गोपाल पंडित करोड़िमल, धसीटा मंडक और अडियल डोम को भांग की दावत देता है। दलित जाति से होने के कारण पुजारी अडियल डोम को कुल्हड़ में भंग पिलाकर बेइज्जत करता है। एक ब्रिफकेश में सोने का बिस्कुट, विदेशी करेन्सी पुलिस वालों को मिलती है। पुजारी, जाकिर अली, पंडित हरि गोपाल और भंवर सिंह इन चारों की ब्रिफकेश में भागीदारी थी इसलिए पुलिसवाले इन्हें हथकड़ी पहना कर जेल भेज देते हैं। डेविड रुस्तम जो एक अंतर्राष्ट्रीय स्मगलर है उसके साथ इन लोगों का संबंध है। पुजारी के जेल जाने के बाद पुजारिन राधा रामू चमार को मंदिर का पुजारी बना देती है और उनके साथ शारीरिक संबंध रखती है। गाँव में रामू के मंदिर का पुजारी बनने के कारण सब लोग विरोध करते हैं। राधा रामू से कहती है कि “भारतीय संविधान में ऐसी कोई धारा नहीं है, जो देश के किसी शूद्र या स्त्री को मंदिर का पुजारी बनने से रोकती हो। इसलिए मीटिंग में जो निर्णय लिया गया है, वह गैर कानूनी है। इस मीटिंग के विषय में

शासन व प्रशासन को अवगत करा दो।”¹ उपर्युक्त उद्धरण से मालुम होता है कि संविधान के अनुसार मंदिर का पुजारी कोई भी बन सकता है लेकिन वास्तव में भारतीय समाज व्यवस्था में मनु का शासन चलता है।

इस उपन्यास के दूसरे भाग में ठाकुर भंवर सिंह की बेटी रिचा सिंह से राधा कहती है मनुष्य के प्रति मनुष्य में उदासीनता का कारण क्या है? राधा से रिचा सिंह कहती है कि “एक ही कारण है, शादी प्रथा ! शादी प्रथा कृत्रिम सम्बन्धों को जन्म देती है। सम्बन्ध चाहे जैसे हों, पारिवारिक, जातीय, धार्मिक अथवा सांप्रदायिक, सभी पक्षपात को जन्म देते हैं। पक्षपात से अन्याय पनपता है। अन्याय से समाज में अव्यवस्था फैलती है। मनुष्य संवेदनहीन होकर एक दूसरे का शोषण करने लगता है। जिससे मनुष्य का जीना दूभर हो जाता है। शादी के कारण इधर दहेज, हत्यायें हो रही हैं। नवजात कन्याओं की भ्रूण हत्यायें बहुत बढ़ गयी हैं। शादी के कारण स्त्री परतंत्र है।”² उपर्युक्त कथन से पता चलता है कि वह शादी प्रथा का विरोध करते हैं। स्त्री के लिए शादी एक बंधन है और स्त्री को धार्मिक और सांप्रदायिकता के नाम पर शोषण किया जाता है। वर्तमान में लोग शादी प्रथा को छोड़कर फ्री सेक्स की ओर बढ़ रहे हैं।

पंडित हरि गोपाल की हत्या हो जाती है। गोपाल की हत्या होने के बाद रिचा सिंह से राधा कहती है कि “पंडित हरि गोपाल की कोठी में जिस गोपनीय लाँकर में मैंने विपुल सम्पत्ति देखी है, उसे केवल मैं ही जानती हूँ। उस कोठी पर हमारा अधिकार होना आवश्यक है।”³ उपर्युक्त कथन से पता चलता है कि राधा गोपनीय लाँकर के बारे में जानती है। डॉ.रमण को यह संपत्ति देती है। रिचा सिंह से वैज्ञानिक डॉ.रमण विश्व एकीकरण की बात करता है। विश्व एकीकरण और रोबोट के लिए उपयोग करता है। रिचा सिंह रोबोट

¹ भगोड़ू पुजारिन, डॉ.रामस्वरूप संखवार, पृष्ठ सं.-33

² वही, पृष्ठ सं.- 56

³ वही, पृष्ठ सं.-60

पर बैठकर ‘एक विश्व’ बनाने के लिए सारे देश के राष्ट्रपति और प्रधान मंत्रियों को पत्र देने के लिए निकलती है। भारत के राष्ट्रपति, रूस के प्रधान मंत्री, अमेरिका के राष्ट्रपति, कनाडा, दक्षिण अमेरिका, अफ्रिका, अरब देशों, पाकिस्तान, आस्ट्रेलिया, और अंत में श्रीलंका पहुँची। यहां पर सारे काम रोबोट करेगा तो, मनुष्य क्या करेगा और रोबोट से बेरोजगारी बढ़ेगी।

उपन्यास का तीसरा भाग अधिक काल्पनिक है। यह भाग रोबोट पर केंद्रित है। रोबोट सूचित करता है, भूमि जैसा और एक ग्रह हैं। वह ग्रह ‘नागवत’ है। राधा को रोबोट नागवत ग्रह ले जाता है। वहाँ के मुक्ति समाज से परिचय करवाता है। रोबोट को चलाने के लिए उल्लू को प्रशिक्षण दिया जाता है।

1.2.26 महानायक बाबा साहेब डॉ.अम्बेडकर

‘महानायक बाबा साहेब डॉ.अम्बेडकर’ उपन्यास मोहनदास नैमिशराय द्वारा लिखा गया है। यह उपन्यास डॉ.बी.आर.अम्बेडकर के जीवन पर आधारित है। कथा की शुरुआत डॉ.बी.आर.अम्बेडकर दफ्तर जाने से होती है। दफ्तर में अम्बेडकर से वहाँ के लोग पूछते हैं तुम कौन हो? अम्बेडकर कहते हैं मैं हिन्हू हूँ। नहीं तुम अस्पृश्य हो। सवर्ण लोग बी.आर.अम्बेडकर का कोट पैण्ट पहना, सूट पहना, टाई लगाए, सहन नहीं होता? बी.आर.अम्बेडकर को सराय से खाली करवाते हैं। क्योंकि अम्बेडकर किसी ब्राह्मणी की कोख से पैदा नहीं हुए थे। वे तो दलित समाज से थे। बड़ौदा महाराज के छात्रवृत्ति द्वारा अम्बेडकर उच्च शिक्षा के लिए 1913 से 1917 तक न्यूयार्क के कोलंबिया यूनिवर्सिटी में पढ़ते हैं। डॉ.अम्बेडकर ने अपने अध्ययन काल में न्यूयॉर्क और इंग्लैण्ड के समाजों को देखा और भारतीय समाज से उसकी तुलना की तो पाया कि भारतीय समाज तो लगातार पतन के दलदल में फसा हुआ है और वह आज भी फसता जा रहा है।

डॉ.अम्बेडकर अपने पिता की चौदहवीं संतान थे। पिता को अपने इस पुत्र में कुछ-कुछ विलक्षण गुण नज़र आने लगे थे। वे इससे पूरी तरह से आश्चर्य थे। रमाबाई बीमार पड़ने और मरणासन्न होने की स्थिति में डॉ.अम्बेडकर उनके पास नहीं पहुँच सके। पत्नी ऐसे समय में अपने पति को अपने सामने महसूस करना चाहती है। मरणासन्न स्थिति में पति उसका सहारा बनता है पत्नी से पहले उनकी कई संतानें भी मरे परन्तु उनके पास जैसे उन पर अश्रु बहाने तक का समय नहीं था। उन्होंने हमेशा दलितोंद्वारा पर ध्यान दिया। करोड़ों दलितों की हालत को सुधारना ही जैसे उनका मुख्य ध्येय था।

डॉ.अम्बेडकर हजारों सालों की जाति की गुलामी से निकलने का आह्वान करते हैं तो गाँधी वर्ण और जाति व्यवस्था को आदर्श मानकर उसे काम के बंटवारे के रूप में देखते हैं। विशेष रूप से पूना पैक्ट गाँधी की कूटनीति का परिणाम था जिसने इस देश के करोड़ों दलितों के प्रतिनिधित्व के मामले को ध्वस्थ किया। उपन्यास में गाँधी को देखने की नई दृष्टि भी मिल रही है। किस तरह गाँधी ने 1917-18 में गुजरात की जनता को अंग्रेजी फौज में भरती होने के लिए उकसाया। वायसरॉय के कहने पर उन्होंने गुजरात के किसानों को फौज में भर्ती होने के लिए उकसाया।

1.2.27 नीला आकाश

‘नीला आकाश’ सुशीला टाकभौरे का उपन्यास है। उपन्यास की पृष्ठभूमि महाराष्ट्र के कन्हान गाँव की है। उपन्यास में भीकूजी अपने कच्चे मकान में, पत्नी चन्दरी और पाँच बच्चों के साथ रहते हैं। महार जाति की बड़ी बस्ती है इस बस्ती को सेवानगर कहा जाता है। सेवानगर में भीकूजी का घेरा बजाने में बड़ा नाम है। भीकूजी को सगाई, शादी, जन्मदिन और त्यौहार पर गाँव के लोग घेरा बजाने के लिए बुलाते हैं। भीकूजी आसपास के गाँवों में भी घेरा बजाने जाते हैं। भीकूजी का सबसे छोटा बेटा रामकिसन जब बांसुरी बजाता है तो, भीकूजी को ध्यान से सुनकर कलाकार का अनुकरण के साथ-साथ अनुभव भी करता है।

भीकूजी और चन्दरी पहले धार्मिक स्वभाव के थे। भीकूजी और चन्दरी हिन्दू पुराण और पौराणिक कथाओं से प्रभावित थे। इसलिए बेटे का नाम राम और कृष्ण का नाम मिलाकर रामकिसन रखा था। बेटियों का नाम सीता और राधा रखे थे। रामकिसन स्कूल बाद माँ के काम में हाथ बटाता था। मैट्रिक के बाद रामकिसन को नौकरी मिल गयी थी।

कन्हान गाँव में दलित भी ग्राम देवता की पूजा करते थे। यह ग्राम देवी दलित, पिछड़े, शोषित और पीड़ित लोगों की देवी थी। खग्रास चन्द्रग्रहण की खबर बहुत पहले चल रही थी। सेवानगर के सभी लोग गाँव में ग्रहण पर दान और पुराने कपड़ों को माँगने की परंपरा का विरोध करते हुए कहते हैं कि “यह ग्रहण का दान हमें नहीं चाहिए। हमें बस अपनी मेहनत की ही रोटी चाहिए।”¹ उपर्युक्त उद्धरण से पता चलता है कि दलित समाज के भीकूजी जैसे परिवार स्वाभिमान के साथ जीना चाहते हैं। दान की परंपरा को भीकूजी के परिवार में सब लोग विरोध करते हैं।

रामकिसन और उर्मिला की एक मात्र बेटी नीलिमा है। रामकिसन और उर्मिला को दूसरी संतान नहीं हुई तो, चन्दरी वंश बढ़ाने के लिए रामकिसन से दूसरी शादी करने के लिए ज़िद की। रामकिसन माँ चन्दरी से कहता है कि “मैंने और उर्मिला ने एकमत होकर, अपनी खुशी से फैमिली प्लानिंग कर ली है। इसलिए न तो दूसरी शादी की जरूरत है और न ही दूसरे बच्चे की।”² उपर्युक्त उद्धरण से पता चलता है कि बड़े परिवार से मतलब नहीं। छोटे परिवार से ही सुख और भलाई है। रामकिसन भीकूजी और चन्दरी को समझाता है एक बच्चे के लिए कितना खर्च होता है आनेवाले दिनों में महंगाई बढ़ती जा रही है। नीलिमा पढ़-लिखकर अपना नाम रोशन करेगी। भीकूजी के परिवार वाले नीलिमा को डॉक्टर या इंजीनियर बनाने का सोचते हैं। लेकिन नीलिमा टीचर बनने का सोचती है, क्योंकि नीलिमा को स्कूल में अच्छूत मानकर पीने का पानी नहीं देते थे। और क्लास में

¹ नीला आकाश, सुशीला टाकभौरे, पृष्ठ सं.-57

² वही, पृष्ठ सं.-61

टीचर पीछे बैठने के लिए कहती थी। हाईस्कूल में नीलिमा अपनी जाती की एक मात्र छात्रा थी। नीलिमा की प्रेरणा से मातंग जाति के लोग अण्णाभाऊ साठे की जयंती पर एक संस्था का गठन करते हैं। जिसका नाम ‘मातंग समाज जागृति मित्र मण्डल’ था। अतः नीलिमा एम.ए, पी.एच.डी करती है।

नन्दलाल और दुलारी का बेटा आकाश। आकाश के जन्म के दो साल बाद छोटे भाई प्रकाश, उसके दो साल बाद विकास भी आ गया। नन्दलाल के परिवार में तीन बेटे हो गये, लेकिन बेटी के बिना परिवार अधूरा लग रहा था और दो साल में सुषमा आ गयी। आकाश की पूरी जिम्मेदारी कालीचरण चौहान और बुधिया लि थी। आकाश पढ़ने-लिखने में बहुत तेज था। आकाश दलित समाज जागृति कार्यों के साथ एम.कॉम. भी कर रहा था। एम.कॉम होने के बाद आकाश ने चार्टर्ड एकाउन्टेण्ट डिग्री के लिए परिश्रमपूर्वक पढ़ाई की और सी.ए की नौकरी मिल गई। आकाश का विवाह बौद्ध धर्म पद्धति से नीलिमा के साथ हुआ था।

1.2.28 सूअरदान

‘सूअरदान’ रूपनारायण सोनकर का महत्वपूर्ण दूसरा उपन्यास है। इस उपन्यास में रामचंद्र त्रिवेदी, सज्जन खटिक, घसीटे चमार और सलवंत यादव मिलकर एक सूअर फार्म खोलते हैं। खास बात यह है कि दलित, ब्राह्मण और पिछड़े जाति के लोग मिलकर सूअर फार्म खोलने का चित्रण किया गया है। ये चारों युवक विदेश इंग्लैण्ड में उच्च शिक्षा प्राप्त कर चुके हैं। रामचंद्र त्रिवेदी ने एम.बी.ए, सज्जन खटिक ने बी.टेक, सलवंत यादव ने वैटरनैरी डॉक्टर और घसीटे चमार ने बार-एट-लॉ की डिग्री ली है। इस उपन्यास में बताया गया है कि धन से चाहे सवर्ण हो, अवर्ण हो सारी परेशानियों से मुक्त हो सकते हैं। उपन्यास में धन की महत्व को बताया गया है। गाँव का प्रधान सत्यनारायण त्रिपाठी सिंहासनखेडा गाँव का अत्याचारी और दबंग है। वह गाँव के लोगों का शोषण करता है। जूनियर हाई

स्कूल के प्रधानाचार्य जितेन्द्र यादव, प्राईमरी हेल्थ सेन्टर के डॉक्टर जोराव सिंह सत्यनारायण त्रिपाठी के साथ होते हैं। ये तीनों मिलकर गाँव के दलित और गरीब लोगों का शोषण करते हैं। सत्यनारायण मानता है कि जो गाँव में ताकतवर होता है वही सभी चीजों को भोगता है। वह एक दलित लड़की सुनयना का शारीरिक शोषण करता है। वह लग-भग पंद्रह वर्षों से अपने गाँव के प्रधान पद पर है। एक दलित युवक संकटा प्रसाद इलाहाबाद विश्वविद्यालय से एम.ए. करके आता है और गाँव के प्रधान चुनाव में जीत कर गाँव में लोकतांत्रिक व्यवस्था स्थापित करता है।

उपन्यास में दलितों के साथ होने वाली समस्याओं को चित्रित किया गया है। जैसे स्कूल में दलित महिला के हाथ का बना खाना गैर-दलित बच्चे नहीं खाते हैं। इस भेद-भाव पर दलित प्रधान संकटा प्रसाद से जूनियर हाई स्कूल के प्रधानाचार्य जितेन्द्र यादव कहता है कि “एक दलित महिला बच्चों का भोजन बनाती है। कुछ सवर्ण लोग एतराज कर रहे हैं। सवर्ण बच्चों के मां-बाप उस दलित महिला को बदलने की बात कर रहे हैं।”¹ उपर्युक्त उद्धरण से मालुम होता है कि सवर्ण समाज दलितों से छुआछूत करते हैं। प्रधानाचार्य से गाँव का प्रधान संकटा प्रसाद चिकवा कहता है जो भी छुआछूत करता है उन पर एस.सी और एस.एटी. उत्पीड़न एक्ट के अन्तर्गत उनके खिलाफ एफ.आई.आर. दर्ज कराया गया। उपन्यास में लेखक संकेत करते हैं कि, एक दलित पढ़ने-लिखने के बाद किस तरह परिवर्तन ला सकता है। रतनलाल पढ़-लिखकर डिप्टी कलेक्टर बन जाता है। डिप्टी कलेक्टर होने के बाद अपने गाँव में रहने वाले माता-पिता सन्तू और मैकी को छोड़ देता है। अपनी पत्नी अनुसूईया और बेटी जानकी को भी खो देता है। आर्थिक परिस्थिति के कारण जानकी कालगर्ल बनती है। अब रतनलाल दूसरी शादी संता सिंह आई.ए.एस. की बेटी रश्मि सिंह से करता है।

¹ सूअरदान, रुपनारायण सोनकर, पृष्ठ सं.-49

उपन्यास में दिखाया गया है कि पिगरी फार्म को नष्ट करने के लिए गाँव में ब्राह्मण सत्यनारायण त्रिपाठी गाय फार्म खोलता है। लेकिन चला नहीं पाता है अन्त में पिगरी फार्म के भागीदार ही त्रिपाठी को मदद करते हैं। गाय फार्म का प्रबंधन का दायित्व अपने ऊपर लेते हैं। पुजारी दया शंकर को एड्स की बीमारी हो जाती है। उनको छूने के लिए भी कोई तैयार नहीं होते। दया शंकर को गाँव से दूर बसाते हैं। पिगरी फार्म के भागीदारी दया शंकर को एड्स के ईलाज के लिए अपने पैसे से विदेश भेजते हैं। दया शंकर ठीक होने पर मंदिर छोड़कर पिगरी फार्म में काम करने लगता है। पुजारी मरते समय गोदान की जगह सूअरदान करता है।

1.2.29 गटर का आदमी

‘गटर का आदमी’ रूपनारायण सोनकर का उपन्यास है। इस उपन्यास में जातिवाद, असमानता, छुआछूत, और सांप्रदायिकता आदि विषयों का चित्रण किया गया है। उपन्यास में दो देश बताये गये हैं। एक गरीबों का देश और दूसरा अमीरों का देश। नायक सौरभ गरीब देश का है। नायिका गरिमा अमीर देश की है।

उपन्यास में कथा की शुरुआत देहरादून के महानगर पालिका में काम करने वाले दलित मजदूर से होती है। दलित मजदूर मेन होल में सफाई का काम करते हैं। अचानक सल्लन के पास काला नाग आ जाता है। सल्लन काला नाग से बच जाता है। इस घटना को लेकर सौरभ के नेतृत्व में धरना करते हैं। धरना स्थल पर नगरपालिका चेयरमैन शमीमुद्दीन अली आ जाता है। अली से सौरभ सवाल करता है कि यह काम मशीनों से करवाना चाहिए। इस सफाई के काम में सवर्णों का भी नियुक्ति की जाये क्योंकि सफाई का काम करने वालों को हेय दृष्टि से देखा जाता है। सवर्ण भी सफाई का काम करेंगे तो हेय भावना मिट जायेगी। सौरभ को दलित मजदूरों के साथ रहते देखकर वहाँ पर गरिमा भी आ

जाती है। सौरभ से सवाल करने लगती है कि इन लोगों के साथ रहना है तो मुझेसे क्यों प्यार किया है? सौरभ कहता है कि मैं अपने समाज को छोड़कर नहीं रह सकता हूँ।

सौरभ आंगनबाड़ी स्कूल में जाता है। वहाँ की हालत देखकर दैनिक समाचार पत्र में एक लेख लिखता है। शासन प्रशासन में हड़कंप मच जाता है। शिक्षा मंत्री से लेकर मुख्यमंत्री तक इस लेख पर विचार करते हैं और सौरभ को मिलने हेतु अपने कार्यालय बुलाते हैं। सौरभ मुख्यमंत्री से कहते हैं कि “सर आठ रुपये में एक बच्चा नाश्ता व खाना नहीं खा सकता है। आप ही बताइये, सर कम से कम 60 रुपये प्रति बच्चा प्रतिदिन निर्धारित कर दें यह धनराशि मेरे विचार से कम ही होगी। मुख्यमंत्री ने सुझाव के अनुसार अपने सचिव और पी.ए. को बुलाकर कैबिनेट की मीटिंग में यह आदेश पारित कर देते हैं।”¹ उपर्युक्त कथन से पता चलता है कि सौरभ के विचारों से मुख्यमंत्री प्रभावित होते हैं। इसलिए सौरभ के विचार को मुख्यमंत्री तुरंत लागू करते हैं।

देहरादून में सौरभ सेंट पीटर कान्वेंट थामस स्कूल पर कूड़े के ढेर से पालीथीन बिन रहे 15 दलित, 9 मुसलमान, 6 पिछड़ी जाति व 3 सवर्ण जाति के बच्चों को ले जाकर प्रिंसिपल वैलिंगटन से मिलकर स्कूल में दाखिला करवाता है। सौरभ स्कूल में पढ़ रहे गरीब बच्चों को छुट्टी वाले दिन देहरादून में स्थित राजा जी पार्क ले जाता है। इस उपन्यास में जंगल में रह रहे वनगुजरो के खान-पान, रहन-सहन, वेश-भूषा और संस्कृति के बारे में चित्रण किया गया है।

गरिमा स्वयं जीप ड्राइव करती हुए नेशनल काबेंट पार्क निकल जाती है। जीप एक नवजात हाथी को टक्कर मार देती है। उस हाथी की माँ गरिमा की जीप को सूंड से पकड़कर एक गहरे गढ़े में धकेल देती है। जीप के साथ गरिमा पेड़ में लटक गयी। सौरभ और सदानंद दोनों मिलकर गरिमा को बचाते हैं।

¹ गटर का आदमी, रुपनारायण सोनकर, पृष्ठ सं.-16

गगन गरीबी के कारण बस स्टैंड और रेलवे स्टेशन के सामने जूता पालिश करता है। गगन पढ़ाई में फर्स्ट क्लास स्टुडेंट है। बी-टेक में दाखिला लेने के लिए पैसे नहीं रहते हैं, इसलिए जूते पालिश का काम करता है। जब गगन सवर्ण इंजीनियर का जूता पालिश करके 10 रुपये मांगता है, तो इंजीनियर 5 रुपये फेंक कर कहता है साले पाँच रुपये पड़ते हैं। गगन इंजीनियर से कहता है कि “मेरे जूता पालिश करो मैं तुम्हें पन्द्रह रुपये दूंगा।”¹ उपर्युक्त कथन से मालूम होता है कि इंजीनियर के मन में जूता पालिश करनेवालों के प्रति हेय भावना रहती है। इसलिए जूता पालिश करनेवाले सब संगठित होकर इंजीनियर से जूता पालिश करवाते हैं।

श्री लोकेशचन्द्र परिजादा एक उच्च कुल में जन्में थे। उनकी 300 एकड़ जमीन है। उस जमीन को बेचकर नोएडा गाजियाबाद में बस जाते हैं। गांव की पुरानी परंपरा उनके दिलों दिमाग में मौजूद है। परिजादा को एक बेटा विशाल और दो बेटियाँ सुगना और संजना हैं। इस परिवार में लड़के और लड़कियों को दो नजरों से देखा जाता है। लड़के को महत्व ज्यादा है। विशाल को हर कार्य करने की छूट है। लड़कियों पर प्रतिबंध है। उनके साथ एक लेडी गार्ड रहती है। दोनों लड़कियां शादी के पहले ब्वाय फ्रेंड रखने का प्रस्ताव रखती हैं। परिजाद कहता है कि “तुम दोनो बहनों की इतनी हिम्मत हो गयी कि इस तरह की बातें मां से कर रही हो। शर्म लिहाज कुछ भी नहीं है। हम लोग शहर में जरूर रहते हैं लेकिन हमारी जड़े भारतीय सभ्यता और संस्कृति पर आधारित हैं। तुम लोगों को ऐसी आजादी नहीं दी जा सकती है।”² उपर्युक्त कथन से बेटे और बेटियों में अन्तर का पता चलता है। यह भावना है कि बेटा वंश चलाता है। बेटियाँ दूसरों के घर जाती हैं। बेटियों के साथ ऑनर किलिंग होता है। अतः इस उपन्यास में फिल्म, नेत्रदान, गरीब, नौकरानी, देवदासी, साहित्यकार और कलाकारों के बारे में चित्रण किया गया है।

¹ गटर का आदमी, रुपनारायण सोनकर, पृष्ठ सं.-40

² वही, पृष्ठ सं.-48

उपरोक्त उपन्यासों का सामान्य परिचय देखने के बाद यह बात स्पष्ट हो जाती है कि इन सभी उपन्यासों में दलित समाज की समस्याओं का विस्तृत रूप से वर्णन हुआ है। इन उपन्यासों में एक खास बात है कि इसमें दलितों की अपनी एक विशेष संस्कृति और परंपरा को दिखाया गया है। इन सभी उपन्यासों में जितने दलित पात्र आये हैं वे सभी एक समतावादी समाज रचना करते हुए दिखते हैं। कुछ उपन्यास जैसे ‘सूअरदान’ को देखकर ऐसा लगता है कि उसमें यथार्थ कम कल्पना ज्यादा है। इसलिए उसको अतिशयोक्तिपूर्ण उपन्यास भी कह सकते हैं। ऐसे उपन्यास को गंभीर रूप में नहीं देखा जा सकता। इस उपन्यास पर यह भी आरोप लगाया जाता है कि यह उपन्यास ‘गोदान’ के प्रति उत्तर में लिखा गया है। शायद यही कारण है कि ‘गोदान’ उपन्यास से बहतर उपन्यास लिखने की अतिउत्साही सोच ने पर इस उपन्यास को मात्र अतिशयोक्ति के रूप में आलोचक देखते हैं।

उपरोक्त सभी उपन्यासों में दलित लेखकों ने दलित समाज का विस्तृत विवरण दिया है। तथाकथित मुख्यधारा की संस्कृति के साथ एक दलित प्रतिरोधी दलित संस्कृति भी चलती है, ऐसा इन उपन्यासों का सामान्य परिचय देते हुए लगता है।

द्वितीय अध्याय

हिन्दी दलित उपन्यासों में चित्रित समाज

2.1. समाज की अवधारणा

2.1.1. भारतीय समाज की संरचना

2.1.2. जाति

2.1.3. छुआछूत

2.1.4. उपेक्षित समाज

2.1.5. अमानवीय व्यवहार

2.1.6. संगठित समाज

2.1.7. चेतना

2.1.8. मुस्लिम समाज

2.1.9. पारिवारिक जिम्मेदारी

2.1.10. जीव हिंसा

2.1.11. दलित-परंपरा

2.1.12. स्वाभिमान

2.1.13. देश भक्ति

2.1.14. स्वास्थ्य-समस्या

2.1.15. जमीन

2.1.16. समाज में मीडिया का योगदान

2.1.17. समाज सुधारक

2.1.18. समाज में परिवर्तन

2.2. समाज में आर्थिक स्थिति

2.2.1. बेरोजगारी

2.2.2. गरीबी

2.2.3. कर्ज

2.3. शिक्षा

2.3.1 शिक्षा का महत्व

2.3.2 उच्च शिक्षा

2.3.3 शिक्षा से वंचित समाज

2.3.4 शिक्षा में भेद-भाव

2.3.5 शिक्षा के प्रति श्रद्धा

2.3.6 शिक्षक का योगदान

2.3.7 गुरु शिष्य के संबंध

2.3.8 शिक्षा से परिवर्तन

2.4. समाज में स्त्री की स्थिति

2.4.1. स्त्री शिक्षा

2.4.2. साहसी-स्त्री

2.4.3. स्त्री का योगदान

2.4.4. स्त्री का शोषण

2.4.5. वेश्याओं की समस्या

2.1 समाज की अवधारण

भारतीय समाज व्यवस्था के बारे में कौसल्या बैसंत्री कहती हैं कि “भारतीय समाज में विषमता के लिए मनुस्मृति जिम्मेदार है। किसी भी समाज में स्त्री और पुरुष दोनों का स्थान महत्वपूर्ण है। परन्तु भारतीय हिन्दू समाज में स्त्री और पुरुष में बहुत विषमता देखी जाती है। इस विषमतावादी सामाजिक व्यवस्था में शूद्र और स्त्रियाँ भयंकर रूप से सदियों से सताये जा रहे हैं, और अभी भी वे इस व्यवस्था से बाहर नहीं निकल पा रहे हैं।”¹ कौसल्या बैसंत्री की चिंता यह है कि आज भी हिंदू सामाजिक व्यवस्था ने स्त्री और दलितों को नरकीय जीवन जीने पर बाध्य किया है। वह आगाह करती हैं कि इससे नहीं उभर पाओगे तो हमेशा के लिए गुलामी की जिंदगी जीना पड़ेगा।

कार्ल मार्क्स के अनुसार- “समाज या सामाजिक जगत की चर्चा ऐतिहासिक भौतिकवाद का अंग है। समाज व्यक्तियों का संग्रह है, जो एक निश्चित स्थान या भू-भाग पर बसा होता है।”² मार्क्स ने समाज को अलौकिकता के दायरे में न रखकर वह भौतिकवाद का अंग बनाये हैं। जो व्यक्तियों के समूह के द्वारा निश्चित किया जाता है।

तेजसिंह के अनुसार “अभी तक भारत की समाज-व्यवस्था की जाति आधारित समाज-संरचना के अध्ययन में दो तरह की ऐतिहासिक भूलें होती रही हैं एक, जाति व्यवस्था को सामाजिक-संरचना मानकर केवल उसकी सामाजिक समस्याओं पर ही ध्यान केंद्रित करना। दूसरे, उसे आर्थिक-संरचना मानकर केवल आर्थिक समस्याओं पर ही ध्यान केंद्रित करना जबकि भारत में जाति व्यवस्था सामाजिक-आर्थिक संरचनाओं के आधार पर अस्तित्व में आई है। यानी भारत की जाति व्यवस्था का मूलस्रोत उसकी सामाजिक-आर्थिक संरचना में मौजूद है। वह केवल सामाजिक संरचना ही नहीं है, आर्थिक संरचना

¹ दलित उत्पीड़न की परम्परा और वर्तमान. सं.मोहनदास नैमिशराय, पृष्ठ सं.-123

² समाजशास्त्रीय विचार, सुजतबा हुसैन, पृष्ठ सं.-65

भी है।”¹ किसी एक समस्या में बाँधकर दलित समाज को नहीं देखा जा सकता है। वह सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक आदि समस्याओं का समाविष्ट समाज है।

डॉ. पुरुषोत्तम सत्यप्रेमी समाज के बारे में परिभाषित करते हुए कहते हैं कि “दलित समाज में भी हीनता-बोध एवं संकीर्ण मनोवृत्ति का बोलबाला हुआ है। इसी समस्या के साथ जुड़ी असमानता, अन्याय, बन्धुता-मजदूरी एवं खेत-मजदूरी के रूप में शोषण की समस्या एवं सार्वजनिक स्थलों से दूर रखने तथा अस्वच्छ-गन्दे पेशे-व्यवसाय करने की बाध्यता की समस्या है।”²

डॉ. बाबासाहेब अम्बेडकर समाज के बारे में कहते हैं कि “व्यक्ति-समूह से समाज बनता है यह एक बहुत ही स्थूल और मामूली वक्तव्य है। समाज कभी भी व्यक्ति से नहीं बनता, वह वर्ग से ही बनता है। प्रत्येक समाज में वर्ग अस्तित्व में होते हैं। वर्ग रचना के मूल में निहित कारण अलग-अलग होते हैं। कभी आर्थिक, कभी बौद्धिक, कभी राजनीतिक कारणों से वर्ग बनते हैं। व्यक्ति किसी-न-किसी वर्ग की इकाई बनकर ही जीना चाहता है। यह वैश्विक सत्य है। हिन्दू समाज भी इसके लिए अपवाद नहीं है।”³ भारतीय समाज ही एक ऐसा समाज है जिसमें चातुर्वर्ण व्यवस्था है। जिसमें धर्म, जाति और कर्म की प्रधान व्यवस्था है। इस समाज में किसी आदमी का जीवन स्तर उसकी जाति पर निर्भर करता है। जैसे किसी की जाति ब्राह्मण हो तो उसका सामाजिक स्तर सबसे ऊँचा माना जाता है। उसका समाज सभी चीजों का हकदार है। उनके पास ज़मीन है। शिक्षा है। व्यापार है। बाकी दो वर्ग जो है, वह क्षत्रिय और वैश्य। वे ब्राह्मणों के करीब ही रहते हैं। उतना दूर नहीं लगता जितना दलितों के साथ दूरी रखते हैं। यहाँ जितने ज़मींदार हैं सब के सब पूरे ऊँची जाति के ही होते हैं। 30 प्रतिशत लोगों के पास 70 प्रतिशत ज़मीन है। इन लोगों ने पूरी ज़मीन को

¹ अम्बेडकरवादी, विचारधारा और समाज, सं. तेजसिंह, पृष्ठ सं.-39

² दलित साहित्य और समाजिक न्याय, डॉ. पुरुषोत्तम सत्यप्रेमी, पृष्ठ सं.-55

³ डॉ. बाबासाहेब अम्बेडकर, सूर्यनारायण रणसुभे, पृष्ठ सं.-66

अपने अधीन कर लिया है। ये तो कभी खेतों में काम ही नहीं करते हैं। इनके खेतों में गरीबों, भूमिहीनों और दलितों से किराये पर काम करवाया जाता है। लेकिन यह होना चाहिए कि जो खेती करेगा, ज़मीन तो उन्हीं की होनी चाहिए। लेकिन ऐसा नहीं हो रहा है। ठीक इसके विपरीत हो रहा है कि जो खेतों में काम नहीं करेगा पूरी ज़मीन उनकी ही होगी। इस ज़मींदारी प्रथा के कारण इस समाज में समानता नहीं आ पा रही है। इस देश में मनुष्यों के बीच समानता लाने के लिए जन तांत्रिक सरकार ने भू-वितरण कार्य क्रम की योजना बनाई है। देश के कई प्रदेशों में यह कार्य सफल हुआ है, लेकिन उतना नहीं हुआ जितना होना चाहिए।

हिन्दी दलित उपन्यासों में चित्रित समाज के बारे में बात करने से पहले दलित साहित्य के बारे में जानना अनिवार्य है। दलित साहित्य अम्बेडकरवादी विचारधारा पर केंद्रित होकर आन्दोलन का एक माध्यम बन रहा है। साहित्य के द्वारा सामाजिक क्रांति लाना कलम को हथियार के रूप में उपयोग करने का संकेत है। दलित साहित्य का महत्व, कर्तव्य और जिम्मेदारी विशिष्ट है। अब यह मुख्य धारा के साहित्य के समकक्ष स्थापित हो रहा है। दलित साहित्यकारों की संख्या तेजी से बढ़ रही है। साहित्य की सभी विधाओं में दलित साहित्य लिखा जा रहा है। भारतीय साहित्य के इतिहास में यह एक युगांतरकारी घटना है। विषमतावादी समाज-व्यवस्था की जिन परिस्थितियों में दलित साहित्य उभरा है, वह परिस्थितियाँ अभी भी समाज में मौजूद हैं। दलित साहित्य समाज में दलित वर्ग की शोषित, पीड़ित स्थितियों को प्रतिबिंबित करते हुए विषमतावादी समाज व्यवस्था को बदलने का उद्देश्य लेकर आगे बढ़ रहा है। यह अम्बेडकर के शिक्षा, संघर्ष और संगठन के सूत्र का परिणाम है। साथ ही संपूर्ण समाज के समक्ष, संपूर्ण विश्व के समक्ष अपने मानवाधिकार की लड़ाई के औचित्य को मनवा रहा है।

दलित साहित्य लेखन में दलित उपन्यासों का अपना महत्व है, जिसमें जीवन का समग्र रूप प्रस्तुत होता है। उपन्यासकार के समक्ष जीवन के सभी पहलुओं पर विचार करने की सुविधा होती है, जिससे दलित वर्ग के सामाजिक, आर्थिक, शैक्षणिक, धार्मिक, नैतिक और राजनीतिक संदर्भों से जुड़े जीवन का चित्रण किया जा सकता है। दलित उपन्यास व्यक्ति विशेष पर केंद्रित न होकर पूरे समाज पर केंद्रित है। देश की और समाज की परिस्थितियों, परंपराओं, नीतियों एवं अन्याय के विरुद्ध एक अलग अवधारणा की स्थापना के उद्देश्य से दलित उपन्यास लिखे जा रहे हैं।

समाज वास्तव में बहुत सारे समूहों, समुदायों, संस्थाओं और संगठनों का मिश्रण है। भारतीय समाज बहुरूपी समाज है, इसमें अनेक धर्म, वर्ण, जाति, आदि सम्मिलित हैं। मनुष्य समुदाय में रहकर ही अपने समाज के लिए अनेक विकासशील कार्य किया है।

आधुनिक युग में वर्ग भेद बढ़ता जा रहा है। अमीर अधिक अमीर होते जा रहे हैं और गरीब और अधिक गरीब। उपन्यासों में रचनाकारों ने समाज में फैले वर्ग-भेद पर प्रकाश डाला है। आज भी हमारे समाज में गरीब और अमीर की खाई बनी हुई है। निम्न वर्गों में मेहनत करने वाले मजदूर हैं, उच्च वर्ग में पूँजीपति लोग आते हैं और मध्य वर्ग में इन दोनों के बीच के लोग आते हैं “यह जंगल दो भागों में बँटा था। एक जनाना जंगल और दूसरा मरदाना जंगल। गाँव की महिलाएँ इसे जंगल ही कहती थीं। जबकि शहर के लोग-लुगाई ‘हगन हट’ नाम से पुकारते थे। वैसे इसका कोई खास इतिहास नहीं था और नहीं राजनीति पर भूगोल तो था ही। वैसे कुछ वर्षों में जमीन की अपनी पहचान अवश्य बन गई थी। कुछ लोग इसे चमारों का जंगल भी कहते थे। वह इसलिए कि यहाँ शौच के लिए आने वालों में अधिकांश दलित समाज के लोग ही थे....जमीन पर बलात कब्जा करने से लेकर उसकी छाती को छीलने तक में उन्हें कोई गुरेज न थी। औरत और जमीन उनके लिए

बराबर थी।”¹ उपर्युक्त उद्धरण से पता चलता है कि समाज में किस तरह भेद-भाव रहता है। समाज में मुख्य धारा का समाज और उपेक्षित समाज जो मुख्य धारा के लोग उपेक्षित समाज के लोगों को किस नजर से देखते हैं उसकी नैमिशराय ने ‘मुक्ति पर्व’ उपन्यास में चित्रित किया है।

प्रियदर्शी के ‘कमलकान्त, आई.ए.एस’ उपन्यास में चिरौंजी प्रमुख पात्र है। चिरौंजी डूंगरपुर गाँव के चमार जाति का है। ठाकुर शमशेर सिंह और केदार सिंह गाँव के दलितों पर शोषण करते हैं। “जमींदारों की बेगारी और शोषण का शिकार यही वर्ग था। इससे नीचे भी कई वर्ग थे, जिनमें कुछ कारीगर तथा मज़दूर थे। कारीगर वर्ग, जिनमें लुहार, धोबी, नाई, बढ़ई, कोरी, ठठेरे, सुनार, चमार, आदि जैसे-तैसे भरण-पोषण कर लेता था। मज़दूर तबके का जीवन पशुओं से भी गया-गुजरा और नरकीय था। उनके पास कुछ भी नहीं होता था। उनका अपना शरीर भी दूसरों के अधीन था, जिसका प्रयोग उनके मालिक मनमाने ढंग से करते थे। पूरे समाज में घृणा, शोषण, अनाचार, का बोल-बाला था।”² इससे यह जान सकते हैं कि डूंगरपुर गाँव किस कदर जातिगत विषमता और शोषणकारी व्यवस्था से भरा पड़ा है।

2.1.1 भारतीय समाज की संरचना

समाज बहुत पुराना और अत्यधिक जटिल है। प्रचलित अनुमान के अनुसार पांच हजार वर्ष पूर्व की पहली ज्ञात सभ्यता के समय से आज तक लगभग पांच हजार वर्षों की अवधि इस समाज में समाहित है। इस लंबी अवधि में अनेक प्रकार से भारतीय समाज का परिवर्तन हुआ। ऋग्वेद के पुरुषसूक्त में एक पौराणिक कहानी के अनुसार भगवान ब्रह्मा के मुख से ब्राह्मण, भुजाओं से क्षत्रिय, जाँघों से वैश्य और पैरों से शूद्र की उत्पत्ति हुई। इस

¹ मुक्ति पर्व - मोहदास नैमिशराय, पृष्ठ सं-14

² कमलकान्त, आई.ए.एस, प्रियदर्शी, पृष्ठ-सं.19

संदर्भ में ‘जस तस भई सबेर’ उपन्यास में सत्यप्रकाश संकेत करते हैं कि “भारतीय सामाजिक व्यवस्था के अध्ययन से स्पष्ट है कि सामाजिक विभाजन के विद्यमान वीभत्स रूप की नींव ऋग्वैदिक काल में पड़ गयी थी। उत्तर वैदिक काल में समाज को चार वर्णों में विभाजन करके असमाजिक कर दिया गया जिसका वर्णन यजुर्वेद में यूँ मिलता है-**ब्राह्मणे ब्राह्मणं क्षत्राय राजन्यम मरुदयो वैश्यं तपते शुद्रं तमसे तस्करं नारकाय।**”¹ इस उद्धरण से पता चलता है कि समाज एक रुपी समाज नहीं अनेक रूप और हिस्से में बंटा हुआ समाज है। डॉ. बाबासाहेब अम्बेडकर समाज व्यवस्था के निर्माण के बारे में कहते हैं कि “मैं मनु के विषय में कठोर लगता हूँ, परंतु यह कि मुझमें इतनी शक्ति नहीं कि मैं उसका भूत उतार सकूँ। वह एक शैतान की तरह जिंदा है, किंतु मैं नहीं समझता कि वह सदा जिंदा रह सकेगा। एक बात मैं आप लोगों को बताना चाहता हूँ कि मनु ने जाति के विधान का निर्माण नहीं किया और न वह ऐसा कर सकता था। जातिप्रथा मनु से पूर्व विद्यमान थी। वह तो उसका पोषक था, इसलिए उसने उसे एक दर्शन का रूप दिया, परंतु निश्चित रूप से हिन्दू समाज का वर्तमान रूप जारी नहीं रह सकता। प्रचलित जातिप्रथा को ही उसने संहिता का रूप दिया और जाति धर्म का प्रचार किया। जातिप्रथा का विस्तार और उसकी दृढ़ता इतनी विराट है कि यह एक व्यक्ति या वर्ग की धूर्तता और बलबूते का काम नहीं हो सकता। तर्क में यह सिद्धांत है कि ब्राह्मणों ने जाति-संरचना की।”² उपर्युक्त उद्धरण से डॉ. बाबासाहेब अम्बेडकर समाज व्यवस्था के निर्माण में किन लोगों का षड़यंत्र था स्पष्ट करते हैं। इस विचार को ही आगे बढ़ाते हैं सत्यप्रकाश अपने उपन्यास ‘जस तस भई सबेर’ में संकेत करते हैं कि “उस व्यवस्था को बनाने वाले कौन थे, उन्होंने ऐसी दोषपूर्ण व्यवस्था क्यों बनायी? कारण स्पष्ट है निजी और वर्गीय स्वार्थों की पूर्ति और उन्हें पुख्ता बनाना। समाज में व्याप्त असमानता और अस्पृश्यता के पीछे मुख्य कारण यही था। एक वर्ग समस्त सुख-

¹ जस तस भई सबेर- सत्यप्रकाश, पृष्ठ सं-100

² बाबासाहेब डॉ. अम्बेडकर सम्पूर्ण वाङ्मय खंड-1, पृष्ठ सं.-29

सुविधा और अधिकारों से लैस है और दूसरा दीन-हीन और वंचित। वंचक और वंचितों के बीच यह अन्तर पहले भी था, आज भी है। हालाँकि आज देश लोकतांत्रिक व्यवस्था के अधीन है। संविधान की दृष्टि में सब समान हैं। वर्ण, जाति या लिंग भेद के आधार पर बड़े-छोटे या स्पृश्य-अस्पृश्य का कोई भेद नहीं है, किन्तु व्यावहारिक रूप में समाज में यह विभेद आज भी है। दलितों को आज भी घृणा और उपेक्षा का शिकार होना पड़ता है। उन्हें आज भी हेयता और हिकारत से देखा जाता है।”¹ सत्यप्रकाश ‘जस तस भई सबेर’ उपन्यास के माध्यम से सवाल करते हैं कि भारतीय समाज व्यवस्था का निर्माण कितना स्वार्थ और षड़यंत्र पूर्ण बनाया गया। इसका मूल कारण यह था कि शूद्रों को हजारों सालों से शिक्षा और ज्ञान से वंचित रखा गया था।

‘जस तस भई सबेर’ उपन्यास में लेखक संकेत करते हैं कि मिथक अपने-अपने स्वार्थ के लिए बनाये हुए मिथक को तोड़ने के लिए संकेत करते हैं। वह लिखते हैं कि “वटवृक्षीय व्यवस्था काली रात्रि के समान है जिसमें सामान्य व्यक्ति अपने-पराये की पहचान खो बैठता है और प्रकाश के अभाव में अपनों पर भी वार कर बैठता है जो अन्ततोगत्वा उन दोनों के लिए और उसके बाद समाज के लिए भी घातक सिद्ध होता है। इसलिए हमें समाज से व्याप्त मिथकों को तोड़ना होगा”।² भारतीय समाज में मिथक को अपने स्वार्थ के लिए बनाया गया है। लेखक मिथक को काली रात्रि से तुलना कर रहे हैं।

डी.पी.वरुण के ‘रक्त का रिश्ता’ उपन्यास में सवर्ण ब्राह्मण गंगा प्रसाद शर्मा का बेटा अमर कॉलेज के वार्षिक कार्यक्रमों के भाषण में कहता है कि “मित्रों! छुआछूत हिन्दू समाज का अभिशाप नहीं है, झूठ ही हिन्दू समाज को बदनाम किया गया है। छुआछूत हिन्दू समाज का अभिशाप नहीं बल्कि इसका प्रमुख अंग है। ईश्वर ने वर्ण बनाए। वर्ण चार

¹ जस तस भई सबेर, सत्यप्रकाश, पृष्ठ सं.-103

² वही, पृष्ठ सं.-128

हैं। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्र। उसी ईश्वर ने जातियाँ बनाई। जो ईश्वरीय निर्माण है उसको अभिशाप कैसे कहा जा सकता है।.....हमारे सारे शास्त्र इस तर्क के साक्षी हैं कि छुआछूत हिन्दू समाज पर अभिशाप नहीं बल्कि यह धर्म का एक अंग है। अगर छुआछूत समाप्त हो गया तो फिर हिन्दू समाज कैसे जीवित बचेगा।”¹ उपर्युक्त कथन से पता चलता है कि हिन्दू समाज वर्ण व्यवस्था के आधार पर उपर्युक्त तीन वर्णों को दास बनाने के लिए एक उनमें से वर्ग को हमेशा के लिए दास बनाये रखने के लिए बना है। अमर के भाषण के बाद अजय, अमर के भाषण का विरोध करते हुए कहता है कि “आज के युग में बिना प्रमाण के किसी बात को नहीं माना जा सकता है। मैं तो कहता हूँ ईश्वर ही नहीं है। जब ईश्वर है ही नहीं तो उसके द्वारा किसी भी वस्तु का या जाति का या वर्ण का श्रृजन करने का प्रश्न ही नहीं उठता है। साथियों, इस पर गम्भीरता से सोचिये हमारे पूर्वजों ने वर्ण बनाए, जातियाँ बनी केवल काम को सुचारु रूप से चलाने के लिए। जब मनुष्य थोड़े थे तो कार्य की दृष्टि से कार्य विभाजन किया गया। कुछ को शिक्षा-दीक्षा का कार्य सौंपा, कुछ को रक्षा का कार्य सौंपा, कुछ को कृषि उत्पादन, सामग्री का रख-रखाव हिसाब-किताब सौंपा और शेष प्राणियों को अन्य विविध कार्य सौंपे जो कृषि कार्य से लेकर सेवा सुश्रूषा तक के थे। इन्हीं कार्यों के आधार पर ब्राह्मण, क्षत्रिय वैश्य तथा शूद्र वर्णों की उत्पत्ति हुई।”² उपर्युक्त उद्धरण से मालूम होता है कि वर्ण व्यवस्था का कृषि आधारित निर्माण हुआ है।

2.1.2 जाति

जाति की समस्या भारत की प्रमुख समस्या है। आज भी भारत में कुछ लोग छुआछूत को मानते हैं। समाज उनके साथ भेदभाव की नीति अपनाता है। सवर्ण उनके साथ दुर्व्यवहार करते हैं। उनपर अत्याचार करते हैं। छुआछूत समाज के नाम पर कलंक है। छुआछूत की समस्या हमारे समाज को दीमक की तरह चाट रही है। लेकिन जाति की

¹ रक्त का रिस्ता, डी.पी.वरुण, पृष्ठ सं.-75

² वही, पृष्ठ सं.-76-77

समस्या सर्वाधिक भयंकर और घातक है। भारतीय समाज संरचना में जाति एक बड़ा सच है। विशेष रूप से हिन्दू समाज ने जाति व्यवस्था को जन्म दिया है। जाति के बिना हिन्दू समाज की कल्पना नहीं की जा सकती। जाति का प्रभाव इतना गहरा और व्यापक है कि समाज में व्यक्ति की पहचान उसके गुण, धर्म, कर्म, योग्यता से न होकर उसकी जाति से होती है। जाति व्यवस्था बंद कोठरियों का एक मकान है। एक व्यक्ति जिस जाति में जन्म लेता है आजीवन उसी जाति का सदस्य रहकर दुःख या संत्रास भोगता है।

जाति पर विचार करते हुए सर.एच.रिजले का कथन है कि “जाति का अर्थ है, परिवारों का या परिवार समूहों का संगठन, जिसका साझा नाम हो, जो किसी खास पेशे से संबद्ध हो, जो एक से पौराणिक पूर्वजों पितरों के वंशज होने का दावा करता हो, एक जैसा व्यवसाय अपनाने पर बल देता हो और सजातीय समुदाय का हामी हो।”¹ उपर्युक्त कथन से जाति का अर्थ और विश्लेषण करते हैं। जातियाँ-उपजातियों में बटी हैं। उपजातियाँ कुल और गोत्र में। इस तरह पूरा समाज खंड-खंड में विभाजित है। यून जाति के आधार पर समाज का विभाजन ही अपने आप में विघटनकारी है तथापि जाति के आधार पर सामाजिक संस्करण यानी छोटा-बड़ा, ऊँच-नीच तथा स्पृश्य-अस्पृश्य के व्यवहार ने समाज में विद्वेष वैमनस्यता को जन्म दिया है।

भारतीय समाज में जाति एक प्रमुख समस्या है। आज भी छोटे-छोटे गाँवों में छुआछूत की भावना मानते हैं। सवर्ण लोग निम्न जाति के लोगों से घृणा की भावना रखते हैं। जाति के नाम पर दलित सर्वाधिक अमानवीय भयंकर और घातक के रूप में शिकार हो रहे हैं। डॉ.अम्बेडकर जाति के बारे में लिखते हैं कि “मैं मनु के विषय में कठोर लगता हूँ, परंतु यह निश्चित है कि मुझमें इतनी शक्ति नहीं कि मैं इसका भूत उतार सकूँ। वह एक

¹ भारत में जाति प्रथा, डॉ.बी.आर.अंबेडकर संपूर्ण वाङ्मय खंड-1 पृष्ठ-19

शैतान की तरह जिंदा है, किंतु मैं नहीं समझता कि वह सदा जिंदा रह सकेगा।”¹ डॉ.अम्बेडकर जाति को एक शैतान से तुलना करते हैं। फ्रेंच विद्वान लुई ड्यूमो के अनुसार “जातिप्रथा द्वारा प्रलक्षित हिन्दू समाज का वैचारिक आधार पवित्रता को माना है।”² इस उद्धरण से स्पष्ट होता है कि हिन्दू समाज व्यवस्था में सवर्ण दलितों को अपवित्र मानते हैं। बुगले के अनुसार “वंशानुगत विशेषीकरण, सोपान और पारस्परिक दूरी के आधार पर जाति प्रथा का एक संरचनात्मक दृष्टिकोण दिखाई देता है।”³ इससे स्पष्ट होता है कि जाति निर्धारण कर्म के आधार पर न होकर जन्म के आधार पर है।

भारत में जाति प्रथा का अर्थ है समाज को कृत्रिम हिस्सों में विभाजित करना। भारतीय समाज में आर्यों, द्रविडों, मंगोलियों और शकों का सम्मिश्रण है। ये जातियाँ बाहरी देशों से हजारों वर्ष पूर्व भारत पहुँची और अपने मूल देश की सांस्कृतिक विरासत के साथ यहाँ बस गई। तब इनकी स्थिति कबिलायी स्थिति थी। ये अपने पूर्व वार्ताओं को धकेल कर इस देश के अंग बन गए। जाति प्रथा मनु से पूर्व विद्यमान थी। वह तो उसका पोषक था। डॉ.बी.आर. अम्बेडकर का जाति प्रथा पर कहना है कि “जब तक भारत में जातिप्रथा विद्यमान है, तब तक हिन्दुओं में अंतर्जातीय विवाह और बाह्य लोगों से शायद ही समागम हो सके, और यदि हिन्दू पृथ्वी के अन्य क्षेत्रों में भी जाते हैं। तो भारतीय जातपात की समस्या विश्व की समस्या हो जाएगी।”⁴ हिन्दू भारत का बहुसंख्य समाज है। बहुसंख्यक समाज सदैव अल्पसंख्यक समाज को प्रभावित करता है। इसलिए भारत के मुसलमान, सिख आदि में भी हिन्दुओं की तरह जाति की बुराई मौजूद है।

हजारी प्रसाद द्विवेदी भारतीय हिन्दू व्यवस्था के बारे में लिखते हैं कि “हिन्दू समाज में नीची से नीची समझी जाने वाली जाति भी अपने से नीची एक और जाति ढूँढ लेती

¹ दलित उत्पीड़न की परम्परा और वर्तमान, सं.मोहनदास नैमिशराय,पृष्ठ सं.-256

² भारतीय सामाजिक संरचना एवं परिवर्तन, के.एल.शर्मा, पृष्ठ सं.-143

³ वही, पृष्ठ सं.-143

⁴ भारत में जाति प्रथा,डॉ.बी.आर.अम्बेडकर संपूर्ण वाङ्मय खंड-1पृष्ठ-18

है।”¹ उपर्युक्त कथन से पता चलता है कि भारतीय समाज में जाति व्यवस्था इतनी गहराईयों तक जा पहुँची है कि वह हर कोई अपने से निम्न जाति की तलाश करता है। डॉ. अम्बेडकर मनु की जाति व्यवस्था के बारे में लिखते हैं कि “किस मूल चार वर्गों को छोड़कर सभी शेष जातियाँ उनसे ही जन्मी हैं। वह कहते हैं कि ये जातियाँ, मूल चार वर्गों के स्त्री-पुरुषों के बीच होने वाले अविवाहित संबंधों तथा व्यभिचार की उपज है। इन चार वर्गों के स्त्री-पुरुषों में अनैतिकता तथा स्वेच्छाचार इतना असीमित हो गया कि उसके कारण इन असंख्य आत्माओं से भी अनगिनत जातियों का उदय हुआ।”² उपर्युक्त उद्धरण से पता चलता है कि वर्ण व्यवस्था मनु से पहले मौजूद थी। लेकिन मनु ने इस वर्ण व्यवस्था को जाति-उपजाति के रूप में पोषण किया है। मोहनदास नैमिशराय अपने ‘मुक्ति पर्व’ उपन्यास में लिखते हैं कि “गाँव में शोषक जातियों का गुलामी के दायरे से वे बाहर आए थे। शहर उनके लिए मुक्ति का प्रतीक बना था। शहर में वैसा अंधेरा न था।”³ उपर्युक्त उद्धरण से पता चलता है कि गाँव में दलितों के बहन-बेटियों पर बलात्कार हुआ था। और दलितों के घर-कोठरे जला दिए थे। ये लोग गुलामी का काम करना नहीं चाहते थे। इसलिए सवर्ण लोगों द्वारा दलितों पर ये सारे अत्याचार किये गये। मोहनदास नैमिशराय अपने ‘मुक्ति पर्व’ उपन्यास में लिखते हैं दलित बस्ती में सभी अनपढ़ थे। उन्हें कभी सवर्ण लोग मनुष्य की तरह देखा ही नहीं जानवर की तरह ठेला जाने वाला रेवड़ बना दिया गया था। पहली बार दलित बस्ती में स्कूल खुलने की सूचना मिलती है। मोहनदास नैमिशराय अपने ‘मुक्ति पर्व’ उपन्यास में शिक्षा की ओर इशारा करते हुए लिखते हैं कि “पढ़ने-लिखने का उन्हें अवसर ही नहीं मिला था। कदम-कदम पर जाति के आधार पर लगाई गई बंदिशें सामने आती थी।”⁴ उपर्युक्त कथन से पता चलता है कि दलितों को शिक्षा से वंचित रखा

¹ हिन्दी साहित्य और संवेदना का विकास, रामस्वरूप चतुर्वेदी, पृष्ठ सं.-16

² बाबासाहेब डॉ.अम्बेडकर सम्पूर्ण वाङ्मय खंड-6. पृष्ठ सं.-57

³ मुक्ति पर्व, मोहनदास नैमिशराय, पृष्ठ सं-8

⁴ वही, पृष्ठ सं-39

गया। भारतीय सामाजिक व्यवस्था में जन्म होने से पहले उनका जाति और कर्म तय होता है। मोहनदास नैमिशराय अपने ‘मुक्ति पर्व’ उपन्यास में लिखते हैं कि “पैदा होने से पहले ही उनके हिस्से में बाप के व्यवसाय का नाम लिख दिया जाता था। जाति का नाम तो माथे पर पहले से ही गोद दिया जाता था।”¹ उपर्युक्त कथन से पता चलता है कि भारतीय समाज व्यवस्था में कर्म के आधार पर पीढ़ी-दर-पीढ़ी जो पिता का काम करता था उसे उनके बेटे को आगे बढ़ाना होता था। मोहनदास नैमिशराय के ‘मुक्ति पर्व’ उपन्यास में सुनीत कहता है कि “अध्यापक जात का कायस्थ था। वे कभी-कभी माथे पर तिलक लगाते थे। पूजा भी करते थे। उसके हाँथ में पुस्तक थी। उसमें दिए गए चित्र को दिखाते हुए-यह चित्र झूठ है क्या उसकी बात सुनकर मास्टर जी सकते में आ गए थे। वह कुछ बोल ही पाते कि सुनीत फिर बोला आप तो रोज हमें पढ़ाते हैं, हम सब एक हैं। हमारे देश में न कोई ऊँचा है और न नीचा। पर हुआ भी कुछ? पूछा मास्टर जी ने। मुझे तथा मेरे पिता को कल प्याऊ वाले ने नलकी से पानी पिलाया।”² उपर्युक्त कथन से पता चलता है कि सवर्णों के मन में अहम की भावना दिखाई देती है। अध्यापक होने के नाते जाति की भावना को मिटाना चाहिए। लेकिन उसके विपरीत जाति के नाम पर अपमान करते हैं।

प्रियदर्शी का ‘कमलकान्त, आई.ए.एस’ उपन्यास में फुलिया डूंगरपुर छोड़कर अपने बेटे चिरौंजी और छोटे बेटे के साथ गाँव से निकलती हैं। रास्ते में भूख लगती हैं तो तब चिरौंजी जाकर केदार सिंह से काम माँगता हैं। तब चिरौंजी कहता है कि “हम एटा के डूंगरपुर के रहने वाले चमार हैं लम्बरदार (केदार सिंह)। हमारे साथ हमारी अम्मा तथा दो छोटे भाई हैं। जो भी मजूरी लम्बरदार देंगे, हम ले लेंगे। जा, जाकर अपनी अम्मा और भाइयों को बुला ला। तेरे अम्मा से बात करते हैं। यह सुनकर चिरौंजी मुड़ा और वापस जाने लगा। जब वह कुछ दूर निकल गया तो केदार सिंह ने हँसते हुए कहा देखते हैं चमाईन में

¹ मुक्ति पर्व, मोहनदास नैमिशराय, पृष्ठ सं-43

² वही, पृष्ठ सं-51-52

कितना नमक है, कुछ चमारिनें तो बहुत सुन्दर होती हैं।”¹ उपर्युक्त कथन से पता चलता है कि केदार सिंह और मोहर सिंह लाचार और गरीब दलितों का शोषण करने और उनकी असहायता का फायदा उठाना चाहते हैं। राजपुर गाँव की दो हजार आबादी है। उस गाँव में ज्यादा आबादी ठाकुर और चमार जाति की थी। ठाकुर गरीब दलितों स्त्रियों पर शारीरिक शोषण करते हैं। “हर ज़मींदार की अपनी-अपनी आसामी थी, जिस पर वह जायज़ और नाजायज़ सभी अधिकार रखता था। सभी आसामी, जो आम तौर पर छोटी जातियों से सम्बन्धित होते थे, इन ज़मींदारों के शोषण के शिकार थे। यह शोषण हर प्रकार का था। आर्थिक, सामाजिक, राजनैतिक शोषण तो था ही, नैतिक और चारित्रिक शोषण भी था, जिसमें इन आसामियों की स्त्रियों से राज़ी या बेराज़ी शारीरिक सम्पर्क बनाकर उनका शोषण किया जाता था।”²

‘आक्रोश’ उपन्यास जाति व्यवस्था का केन्द्र बिंदु है। इस उपन्यास में नायक बालदीन दलित जाति से है। नायिका उमा पण्डित भोलादीन की पुत्री। जाति व्यवस्था गाँव से लेकर दिल्ली जैसे बड़े शहरों तक पीछा नहीं छोड़ती है। रामदीन कहते हैं कि “हमने तो इनका कुछ भी नहीं बिगाड़ा, इतना अवश्य किया है कि भूखे पेट रहकर इनके यहाँ काम किया है। बेटा, जिन्दगी नहीं काटी हमने, वास्तव में हमने नरक भोगा है। हम आदमी नहीं रहे, हमें तो जानवर ही समझा जाता रहा है, मेहनत में हमने कभी कमी नहीं की, जी तोड़ मेहनत की है और यही हमारे जीवन का आधार रहा है। जिसके यहाँ मजदूरी की, पा रहा हूँ तुम अब नई रोशनी में हो, नया युग है, तुम आजाद भारत की सन्तान हो, तुमने आजादी में जन्म लिया है, हम गुलाम रहे और गुलामी की।.....गुलाम था समाज विचारों से व रूढ़ियों से और राजनीतिक रूप से अंग्रेजों के अधिकार में। बेटा इस समाज ने अपने विचार छोड़कर दूसरों की नकल की थी, नई रूढ़ियाँ पैदा हुई थीं भारत में जिनसे नया रूप ही

¹ कमलकान्त, आई.ए.एस, प्रियदर्शी, पृष्ठ-सं.21

² वही, पृष्ठ-सं.36

मुखरित हुआ भारत का।”¹ उपर्युक्त उद्धरण से ज्ञात होता है कि सवर्ण समाज के लोगों ने दलितों के श्रम का शोषण किया है। सवर्णों ने दलितों को एक जानवर से भी नीच दृष्टि से देखा है।

रामदीन बालदीन से कहते हैं कि “पहले हम लोग सत्संग, वैदिक या धार्मिक वाक्य उच्चारण करते थे तो कानों में सीसा तक पिघला दिया जाता था। बोलने पर जीभ तक काट ली जाती थी। अच्छा देखने पर आजीवन अन्धा भी होना पड़ता था। हमारे पूर्वजों को अपना भूखा पेट भरने के लिए न जाने किन-किन चीजों की आहुति नहीं देनी पड़ी।”² उपर्युक्त उद्धरण से पता चलता है कि दलितों पर सवर्ण लोगों ने किस तरह अमानवीय व्यवहार किये थे। सवर्ण लोग शिक्षा का महत्त्व जानते थे। इसलिए दलितों को शिक्षा से वंचित किये थे।

भोयापुर गाँव में उच्चवर्ग और निम्नवर्ग के बीच एक लकीर खींची गयी थी। श्यामू, विरधू और रामू ये तीनों रास्ते में मिले तो, उन लोगों को रामदीन ने सलाम नहीं किया था। इसलिए चौपाल पर पंचायत में दाताराम, रामदीन से कहते हैं कि “रामदीन मालूम पड़ता है तेरी अकल खराब हो गई है किसी को दुआ सलाम भी नहीं करता क्या दिखाई नहीं पड़ता यहां पर कितने आदमी बैठे हैं?”³ उपर्युक्त उद्धरण से मालूम होता है कि सवर्ण लोगों को दलित लोग सलाम करना है। सवर्णों की दलित लोगों के लिए गुलामी इस धारणा को बदलने की आवश्यकता है।

‘अमरकान्त, आई.ए.एस’ उपन्यास में फुलिया कहती है कि “देखो ठाकुर, हम कहीं भागे नहीं जा रहे हैं। अगर तुमने ज़बरदस्ती करने की कोशिश की तो गंगा मैया की कसम, मैं जान दे दूँगी। आपने हम पर बड़ी कृपा की है। हमारे रहने-सहने का कुछ इन्तज़ाम हो

¹ आक्रोश, रघुवीर सिंह, पृष्ठ सं.15

² वही, पृष्ठ सं.16

³ वही, पृष्ठ सं.17

जाये तो मैं तो तुम्हारी ही हो कर रहूँगी। जब तक यह सब व्यवस्था नहीं हो जाती, मैं अपनी उँगली भी नहीं छूने दूँगी।”¹ इससे स्पष्ट होता है कि ठाकुर केदार सिंह फुलिया की आर्थिक मजबूरी का फायदा उठाकर उसका शारीरिक शोषण करना चाहता है।

2.1.3 छुआछूत

‘रक्त का रिश्ता’ उपन्यास में डाक्टर सुषमा, रामा से कहती है कि “कौन नीच समझता है? अरी तू तो बड़ी साफ सुथरी रहती है, अच्छा काम करती है तो तुझको नीच कौन समझेगा? नीच तो वे हैं जो दूसरों का शोषण करते हैं, करों की चोरी करते हैं या डाका डालते हैं या फिर चोर-बाजारी करते हैं। तू तो ऐसा कुछ नहीं करती है? फिर तू नीच कैसे हो गई ? मैं डाक्टर हूँ। डाक्टर की कोई जाति नहीं होती। वह इन्सान होता है। दुःखियों के दुःखों को दूर करना डाक्टर का कर्तव्य है। तू फिकर मत कर। मेरे लिए खाना बना ले आ। बस जल्दी जा और जल्दी आ, पेट में चूहे कूद रहे हैं।”² इस कथन से लेखक का आशय है कि अस्पृश्यता का फैसला जाति से नहीं उसके व्यवहार से किया जाना चाहिए। अजय की बहन अजीता को स्कूल से आते समय रास्ते में बहुत तेज प्यास लगती है। रास्ते में राम प्रसाद ब्राह्मण का कुआँ पड़ता है। कुएं पर रस्सी और बाल्टी रक्खी रहती है। अजीता पानी पीने के लिए बाल्टी लेती है। अजीता के हाथ में बाल्टी देखकर राम प्रसाद कहता है कि “ऐ कुल्टा, दुष्टा तूने मेरा कुआं भ्रष्ट कर दिया”³ अजीता को डण्डे लेकर जड़ दिया। अजीता डण्डों की चोट खाकर कुएं की जगत पर गिर पड़ती और आँसू बहाकर रोने लगती है। सनातनी ब्राह्मणीय व्यवस्था के चलते इन्सानियत को भूलकर वह अमानवीय व्यवहार करते हैं। जिसके कारण दलित समाज को बहुत से अपमान सहना पड़ रहा है।

¹ कमलकान्त, आई.ए.एस, प्रियदर्शी, पृष्ठ-सं.23

² रक्त का रिश्ता, डी.पी.वरुण, पृष्ठ सं.-7

³ वही, पृष्ठ सं.-37

डॉ. रामस्वरूप संखवार द्वारा लिखा हुआ उपन्यास ‘भगोडू पुजारिन’ है। इस उपन्यास में पुजारी मुरलीधर की पाँचवीं पत्नी राधा थी। पहले दो पत्नियों को मार-पीट कर भगा दिया था। एक स्वयं उसे छोड़कर भाग गई थी। चौथी पत्नी की रहस्यमय ढंग से हत्या कर दी गई थी। इस दौर में पुजारी मुरलीधर ने पाँचवीं पत्नी पाने की खुशी में अपने साथियों को भंग की दावत दी थी। इसमें विशेषणयुक्त लोगों को ही आमंत्रित किया गया था। इसमें अड़ियल डोम जाति से एक दोस्त था। अड़ियल डोम को भंग पीने के लिए कुल्हड़ में दिया गया था। चाहे कितना भी अच्छा दोस्त होने पर भी उनके साथ छुआछूत का व्यवहार करने लगते हैं। दावत की पार्टी में अड़ियल डोम पुजारी मुरलीधर से कहते हैं कि “मुझे कुल्हड़ में पिलाते हो और खुद गिलास में पीते हो! नहीं बतायेंगे! क्या कर लेंगे?”¹ उपर्युक्त कथन से पता चलता है कि सवर्ण लोग खाने-पीने के मामले में दलितों से विषमता पूर्वक व्यवहार करते हैं।

2.1.4 उपेक्षित समाज

दलितों का सदियों से शोषण हुआ है। सवर्ण समाज ने ऐसी परंपरा को अपनाया है जिसमें जीवनभर दलित गुलाम ही बने रह गये। दलितों के हिस्से में सिर्फ गालियाँ सुनना, गुलामी का काम करना ही रह गया। “समाज में परंपरा ही कुछ ऐसी थी। दलितों के हक में गालियाँ थीं या फिर हंटर। विकृति संस्कृति हो गई थी उनकी, तभी तो विकृत होकर कमरों को वे मारते-पीटते थे। उनकी संस्कृति में दया नहीं थी, केवल जुल्म था। पीढ़ी-दर-पीढ़ी दलितों ने जुल्म सहा था....समाज में उन कमरों की गिनती ढेढ़ चमारों के रूप में होती थी। अक्षर ज्ञान तक से उन्हें महरूम रखा गया था। पर कुछ ऐसे लोगों ने अक्षर ज्ञान से रिश्ता बना लिया था जिनकी शिक्षा के प्रति ललक बढ़ी थी। उनके पाँव स्कूल की दिशा में दौड़ते

¹ भगोडू पुजारिन-डॉ.रामस्वरूप संखवार, पृष्ठ. सं.-8

थे आँखें किताबों को तलाश करती थीं।”¹ इससे स्पष्ट होता है कि समाज में दलितों को एक इन्सान के रूप में भी नहीं देखा गया। समाज में ऐसी संरचना थी कि जीवनभर गुलामी करते रहे। समाज में अनेक विकृतियाँ बनायी गयीं। दलितों को गाली देना एक समान्य सी बात हो गई थी।

2.1.5 अमानवीय व्यवहार

आज भी दलितों के प्रति अमानवीय व्यवहार किया जाता है। दलित होने के कारण उसे हर प्रकार की त्रासदी से गुजरना पड़ता है। जिसका चित्रण हमें ‘जस जस भई सबेर’ उपन्यास में मिलता है। “अनुमति मिलने पर उसने प्रस्ताव रखा इन दोनों को मादर जात नंगा करके गाँव भर में घुमाओ। इनका मुँह काला करो। जिससे इन्हें सबक मिले और इसके बाद गाँव में कोई ऐसी हरकत करने का सपना भी न देखे। इसके बाद इन्हें पुलिस को सौंप दिया जाये”।² इससे हम जान सकते हैं कि दलित समाज की स्त्री होने के कारण उसे झूठे आरोप में सजा दी जाती है। और उसका सर्वाजनिक शोषण किया जाता है।

समाज के उच्च वर्ग कहे जाने वाले ठाकुर, जमींदार, आदि के दबंग स्वभाव के कारण उनकी हर बात को माना जाता है। उनकी हर सजा को स्वीकार किया जाता उसका कोई विरोध नहीं कर पाता है। क्योंकि वे लोग जाति से दलित और शोषित हैं। जिसका प्रमाण निम्न उदाहरण से स्पष्ट हो जाता है। “पंचायत में दोनों प्रस्ताव स्वीकृत हो गये। कोई विरोध न कर सका। इधर रामरती और सन्नों के परिवार वालों को मुर्गा बनाकर बैत लगाने का कार्य शुरू हुआ और उधर इन दोनों को मुँह काला करके और नंगा करके गाँव में घुमाया जाने लगा। लोगों ने शर्म से अपने घरों के दरवाजे बन्द कर लिये। चौधरी समर्थकों ने आँखें

¹ मुक्ति पर्व, मोहनदास नैमिशराय, पृष्ठ सं-18

² जस तस भई सबेर, सत्यप्रकाश पृष्ठ सं-94

सैंकीं। कुछ ने तो उनके गुप्तांगों की ओर अपने डण्डे भी बढ़ाये। जब इससे शान्ति न हुई, तो हाँथ से छू-छूकर देखा। यह कार्य निर्विघ्न चल रहा था।”¹

प्रियदर्शी के ‘अमरकान्त ,आई.ए.एस’ उपन्यास में दलितों के प्रति होने वाली अमानवीयता पूर्वक व्यवहार को चिरौंजी उनकी माँ से कहता है कि “न अम्मा, डूंगरपुर की याद न दिला। वहाँ के लोग तो कसाई हैं, कसाई। भाग आये तो जान बच गयी, वरना मरे पशुओं का माँस और ज़मींदार की मार खाते-खाते मर जाते।”² यानि जिस गाँव में सदियों से रहते आ रहे थे, आज वही गाँव उन्हें जान से मारने पर उतर आया है। जिसका एक मात्र कारण है दलित होना। जो पशुओं से भी गये-गुजरे नजर आने लगे थे।

2.1.6 संगठित समाज

संगठित होने पर ही दलित समाज इन रुढ़िवादी समाज का सामना कर सकता है। जिसका प्रमाण मोहनदास नैमिशराय के ‘ज़ख्म हमारे’ उपन्यास में मिलता है। राजू परमार और असलम से जब्बर कहता है कि “इन परिस्थितियों में जबकि उग्र हिंदुत्व दलित समाज पर हावी है हमें दलित और मुसलमानों को संगठित करने की जरूरत है।”³ आज कि परिस्थितियों में दलित-मुस्लिम संगठन की आवश्यकता है। बहुजन समाज की एकता से मुक्ति का मार्ग मिलता है।

लेखक ने दलित और मुसलमानों की एकता को अपने शब्दों में बनाते हुए कहते हैं कि “दलित मुस्लिमों की मिली-जुली बस्ती थी यह। बस्ती में मुसलमान अधिक थे जबकि

¹ जस तस भई सबेर, सत्यप्रकाश, पृष्ठ सं-94

² कमलकान्त, आई.ए.एस, प्रियदर्शी, पृष्ठ-सं.27

³ ज़ख्म हमारे, मोहनदास नैमिशराय, पृष्ठ सं-54

दलितों की संख्या कम थी। हालाँकि उनके धर्म अलग-अलग थे, लेकिन उनके बीच सामाजिक सम्बन्ध कहीं गहरे थे। उनके सुख-दुःख एक थे।”¹

‘मिट्टी की सौगंध’ उपन्यास में बहुजन समाज की एकता को दिखाया गया। जब शूद्र, दलित और हाशिए के समाज का शत्रु एक है तो सब को मिलकर उसका सामना करना अनिवार्य है। अपने पात्रों के माध्यम से लेखक कहता है कि “रामनगर पुलिस स्टेशन का दरोगा कह रहा था- हम सभी दलित हैं....लेकिन हमारी ताकत बहुत कम है.....अगर ठाकुर के जुल्मों को खत्म करना है, तो हम सब को एक साथ मिलकर काम करना होगा। हम तैयार हैं – सूरज सीना तानकर बोला- बस ! आप हमारे दल के मुखिया बन जाएं। मैं अपने समाज के खिलाफ जुल्म रोकने के लिए अपनी जान की बाजी तक लगा सकता हूँ।”² वैचारिक स्तर पर और सामाजिक एकता के स्तर पर संगठित होना ही स्वास्थ्य समाज के निर्माण में काम आता है।

2.1.7 चेतना

रघुवीर सिंह के ‘आक्रोश’ उपन्यास में कल्लू जब राम से कहता है कि “भैया अगर मुझे कानून के बारे में ही जानकारी होती तो यह नरक का बोझ क्यों ढोता? पिछले दस सालों से मैं सुबह चार बजे घर से निकलता व रात के ग्यारह बजे घर में घुसा। कुछ भी तो नहीं किया अपने बाल-बच्चों के लिए मैंने। जवानी में तो मेरी अकल पर पत्थर पड़ गये थे। आपने मेरी आँख खोल दी है, अब इन दोनों बच्चों के जून के महीने से ही पढ़ाने के लिए गांव के ही स्कूल में भेजूंगा।”³ रामू और चंदन मिलकर कल्लू को शोषण से मुक्त करते हैं। जिस दिन गुलाम को गुलामी का एहसास करायेंगे तब वह स्वयं अपनी गुलामी के जंजीरों को तोड़कर मुक्ति पायेगा।

¹ ज़ख्म हमारे, मोहनदास नैमिशराय, पृष्ठ सं-170

² मिट्टी की सौगंध, प्रेम कपाड़िया पृष्ठ सं-27

³ आक्रोश, रघुवीर सिंह, पृष्ठ सं.-37

2.1.8 मुस्लिम समाज

‘ज़ख्म हमारे’ उपन्यास में मोहनदास नैमिशराय ने दलितों के साथ-साथ मुस्लिम समाज की वास्तविकता को बारीकी से दिखाने का प्रयास किया है। “सादिया मैं समझता हूँ पर तनाव तो कल सारे देश में ही था और कल ही क्यों जबसे बाबरी मस्जिद का ध्वंस हुआ तभी से न सिर्फ कोई एक शहर, राज्य या देश बल्कि समूचे विश्व में मुस्लिम समाज की भावनाएँ आहत हुई थीं।”¹ इस कथन से स्पष्ट हो जाता है कि भारतीय समाज में मुस्लिम समाज के वास्तविक स्थिति का चित्रण हुआ है।

2.1.9 पारिवारिक जिम्मेदारी

नन्दलाल भारती के ‘अमानत’ उपन्यास में पिता सच्चिदानन्द के बारे में पत्नी धनवन्ती अपनी बेटी महक से कहती है कि “धनवन्ती –बेटी दीया बत्ती तो कर लेना पर अपने पापा के दिल का बोझ हल्का कर लेने दो मन की बातों को कहकर। सचमुच। तेरे पापा ने बहुत कष्ट उठाये हैं। गरीबी के साथ सामाजिक कुरीतियों का जहर पीया है। तब जाकर बड़ी मुश्किल से पढ़ लिख पाये। आज नन्ही सी नौकरी से तुम सब बच्चों को पाल रहे हो। गाँव घर सब देख रहे है। बेटी तुमको मालूम है सुषमा की डोली उठने से तेरे दादी के आत्मा को बहुत ठण्डक मिली होगी। उनके आत्मा का बोझ अब उतर गया होगा। उनकी आत्मा बहुत खुश होगी क्योंकि उन्होंने जो जिम्मेदारी मेरे झोली में डाली थी। वह जिम्मेदारी तेरे पापा ने बखूबी निभायी है। उस अमानत रुपी सुषमा की डोली इस घर से उठी है, जहाँ से उसकी माँ कि उठी थी।”² उपर्युक्त उद्धरण से पता चलता है कि दलितों को सदियों से शिक्षा से वंचित रखा गया। दलित समाज को शिक्षा ग्रहण करने में कितना संघर्ष करना पड़ता है। सच्चिदानन्द ने पढ़ने के लिए संघर्ष भी किया है। क्योंकि परिवार की

¹ ज़ख्म हमारे, मोहनदास नैमिशराय, पृष्ठ सं-118

² अमानत, नन्दलालराम भारती-पृष्ठ सं.-11

पहली पीढ़ी में शिक्षा ग्रहण करने वाला वही था। साथ ही सुषमा की शादी की जिम्मेदारी को निभाता है।

रुपनारायण सोनकर ने ‘गटर का आदमी’ उपन्यास में जातिवाद, असमानता, छुआछूत, अंध-धार्मिकता, कूपमंडूकता और सांप्रदायिकता का कहर भरा हुआ है। उपन्यास में दो देश ही बताये गये हैं। एक गरीबों का देश दूसरा अमीरों का देश। सोनकर, गरीबों के देश को अमीरों का देश बनाने का प्रयास करता है। इसके लिए वह अपार धन दौलत और एक अरबपति बाप की बेटी गरिमा को ठुकरा देता है और गटर के आदमियों का दामन थामता है। ‘गटर का आदमी’ उपन्यास में रिक्शा चालक, रंगमंचीय कलाकर, वनगूजर, सपेरे, गरीब लेखक, ड्राइवर, चपरासी, देवदासी आदि सम्मिलित हैं।

2.1.10 जीव हिंसा

‘गटर का आदमी’ उपन्यास में जीव हिंसा से संबंधित चित्रण मिलता है। शहर कानपुर में रहने वाले दीन मोहम्मद भैंस को गरम पानी में डालकर उसे हिंसा देकर काटता है। क्योंकि इस तरह काटने से मांस स्वादिष्ट बनता है और दाम भी बढ़ता है। सौरभ से दीन मोहम्मद कहता है कि “जानवरों को काटने के बाद उबले हुए पानी से नहलाने पर उनका निकला खून गरम नहीं हो पायेगा जिन्दा जानवर के ऊपर बहुत गरम पानी डालने से खून भी सोंधा हो जाता है।”¹ उपर्युक्त कथन से मालूम होता है कि अपनी जीवनी चलाने और अच्छी कीमत के लिए भैंसों को अमानवीय रूप से काटा जाता है।

2.1.11 दलित परंपरा

भारतीय समाज में मुख्य धारा के समाज से हट कर दलितों की अलग समाज व्यवस्था थी, इस व्यवस्था में चमारों की एक पंचायत होती थी। “चमारों की अपनी एक

¹ गटर का आदमी, रुपनारायण सोनकर, पृष्ठ सं.-13

व्यवस्था थी। इस व्यवस्था में गाँव तथा पास-पड़ोस का इलाका, जहाँ स्थानीय चमार नहीं होते थे, सभी चमारों के घरों में बराबर-बराबर बाँट दिया जाता था। जिस चमार के हिस्से में जो घर आते थे, वही उन घरों के मृत पशुओं को उठाता था तथा खाल आदि बेचकर लाभ कमाता था। इसके साथ ही उन घरों के विवाह, मृत्यु, जन्म या किसी भी उत्सव में कुछ-न-कुछ पाता था तथा दावत खाता था। ब्राह्मणों की भाषा में जो लोग ब्राह्मणों के जजमान कहलाते थे, चमार उन्हें अपना ‘घर’ कहते थे। ये लोग उन्हीं घरों की बेगारी करते थे तथा भूखे रहने पर उन्हीं से माँग कर या उधार ले कर खाते थे। चमारों के जीवन-निर्वाह में घरों की अहम भूमिका रहती थी।”¹ एक जाति के लोग हैं तो सब में बराबरी होनी चाहिए। यहाँ पर सामूहिक जीवन और मिलनसार व्यक्तित्व वाली समाजिक परंपरा दिखाई देती है।

दलितों में ऐसे काम करने के लिए किसी की इच्छा नहीं थी लेकिन मजबूर थे। दलितों से ऐसे काम करने के कारण काम करते-करते वंशानुगत शोषण हो गया था “आम तौर पर कोई भी चमार अपने इस पेशे से खुश नहीं था, पर वंशानुगत यह कार्य उनके घरों में होता चला आ रहा था। खेती हेतु भूमि न होने के कारण तथा उच्च जातियों के दबाव के कारण यह पेशा इनकी मजबूरी बन गया था। इस पेशे से पूरी तरह तो किसी का भी गुज़र नहीं होता था, पर जीवन-यापन का एक सहारा था। जब कुछ भी खाने को न होता ये चोरी-छिपे मरे हुए पशुओं का माँस भी खा लेते थे। पर इसमें वे सावधानी बरतते थे कि ये बातें बिरादरी के बाहर न जायें। बिरादरी के सभी लोग इस तथ्य से परिचित थे।”² ठाकुर और जमींदार लोगों के पास ही जमीन रहती थी। जमीन में काम करने वाले दलित थे लेकिन उस फ़सल का लाभ उठाने वाला ठाकुर और जमींदार थे। दलित श्रम शोषित और गुलामी का काम करते थे।

¹ कमलकान्त, आई.ए.एस, प्रियदर्शी, पृष्ठ-सं.68

² वही, पृष्ठ-सं.90

2.1.12 स्वाभिमान

श्याम सिंह ने दो रोटी निकाल कर खचेरा की तरफ बढ़ाई। श्याम सिंह से खचेरा कहा- “ठाकुर जी खाना आप खाओ।.....ठाकुर साहब अब हमने इस तरह का खाना-पीना सब बन्द कर दिया है। अब जमाना बदल रहा है, भारत आजाद है, पुरानी मान्यताएँ खत्म होती जा रही हैं तो हम भी उन्हें लट्टू जानवर की तरह कब तक ढोते रहें?”¹ इस कथन से लेखक दलितों में चेतना व क्रांति की झलक दिखाना चाहता है।

भोयापुर गाँव में चमार बस्ती के दो निर्णय लेते हैं। बेगार का काम छोड़ना और जूठन का खाना नहीं खाना। लेखक कहते हैं कि “गाँव में यह प्रथा थी की खाना खाते समय मजदूर को दो रोटी, मट्ठा के थोड़ा-सा गुड़ कलेवा के रूप में दिया जाता था। भेंट बेगार से मना करने के साथ-साथ कुछ चमारों ने यह निर्णय लिया था कि वे कुत्ते की तरह किसी से दो रोटी व मट्ठा नहीं लेंगे। यदि कोई सम्मान से उन्हें भर पेट रोटी खिलाता है तो ठीक है, नहीं तो इस तरह से टुकड़े खाना ठीक नहीं है।”² इस कथन से आभास होता है कि दलित अब अपने स्वभिमान को जागए हुए हैं। और अब वह स्वभिमान की जिदंगी जीना चाहते हैं। सदियों की गुलामी से आजादी पाना चाहते हैं।

2.1.13 देश भक्ति

डॉ.विजयी के ‘सैनिक का खून’ उपन्यास में शंकर लाल बीमार होने के बावजूद अपनी बेटी कमला से कहता है कि “मैं तुम्हें छोड़कर जाना नहीं चाहता, लेकिन मेरे चाहने न चाहने से होता भी क्या है? मेरी एक बात है- याद रखना तुम एक सैनिक की लड़की हो जाति, धर्म एवं व्यक्तिगत स्वार्थों को राष्ट्र पर बलि चढ़ा देना। समय का सबसे अच्छा सदुपयोग राष्ट्रहित के लिए करना। जहाँ तक हो सके, कोई भी कार्य ऐसा न करना जिससे

¹ आक्रोश, रघुवीर सिंह, पृष्ठ सं.31

² वही, पृष्ठ सं.-30

देश कमजोर हो तथा मातृभूमि की शान को धब्बा लगे। मानवतावाद की आड़ में राष्ट्रीयता को खतरा पहुंचे तो समय के अनुकूल निर्णय लेना।”¹ लेखक ने शंकर लाल के द्वारा दलितों की देश भक्ति को दिखाने का प्रयास किया है। इस देश में सबसे पहले दलित समाज के व्यक्ति ही देश की आजादी के लिए आगे आये। और अपनी जान तक दे दिये।

1948 में उत्तर प्रदेश के राज्यपाल श्री विश्वनाथ दास ने डॉ.आम्बेडकर के बारे में कहा है कि “डॉ. आम्बेडकर ने कभी अपने देश भारत की निन्दा का एक शब्द भी बर्दाश्त नहीं किया। वे चाहे स्वदेश में हों अथवा विदेश में हों। यदि किसी ने एक भी शब्द भारत के विरोध में कहा तो तुरन्त ही उन्होंने उसका प्रतिकार किया।”² उपर्युक्त कथन से स्पष्ट होता है कि डॉ.बी.आर. अम्बेडकर देश के नागरिक होने के नाते अपने कर्तव्यों का पालन किया है। उन्होंने देश के उज्ज्वल भविष्य के लिए कठिन मेहनत से संविधान का निर्माण किया।

2.1.14 स्वास्थ्य-समस्या

इस समाज में दलित समाज के मनुष्य को मनुष्य के रूप में नहीं देखते और नाही उसके प्राणों को प्राण के रूप में देखते हैं। कमलकांत आई.ए.एस. उपन्यास में प्रियदर्शी ने इसका चित्रण किया है। “गाँव के बड़े-बड़े लोग ही जिनमें मुख्यतः ठाकुर थे, उनकी इलाज की परिधि में आते थे। नीच जाति के अछूत उनके इलाज हेतु अपात्र थे। एक दिन फुलिया भी मलेरिया की चपेट में आ गयी।”³ चिरौंजी ने फुलिया माँ के लिए देशी दवाई बनाकर पिलाया। देशी दवाई पिकर ठीक तो हो सकते थे पर मर भी सकते हैं। दलितों के प्राणों का मूल्य नहीं दिखाई देता है। वह जिस गठरी में जन्म लेता है उसी में मर भी जाता है। यही इस समय की नियती है।

¹ सैनिक का खून, डॉ.विजयी, पृष्ठ सं.-16-17

² महानायक बाबा साहेब डॉ.आम्बेडकर, मोहनदास नैमिशराय .पृष्ठ .सं 23

³ कमलकान्त, आई.ए.एस, प्रियदर्शी, पृष्ठ-सं.67

‘सैनिक का खून’ उपन्यास में कैंसर जैसी बीमारी का मार्मिक चित्रण दिखता है। कवीन्द्र का भाई प्रियपाल चंडीगढ़ स्टेट बैंक में मेनेजर है। प्रियपाल और सुशीला को संतान नहीं होने के कारण दोनों चिंतित रहते हैं। प्रियपाल को अचानक कैंसर की बीमारी हो जाती है। प्रियपाल अपने भाई कवीन्द्र से कहता है कि “तुम्हारे सिवा मेरा इस दुनिया में कोई नहीं है। तुम अपनी भाभी का ख्याल रखना। मैं इसकी बेसहारा जिन्दगी तुम्हारे हवाले करता हूँ। शायद तुम्हारा प्यार ईश्वर ने शाश्वत मानकर खुले आम स्वीकार कर लिया है।”¹ उपर्युक्त उद्धरण से मालूम होता है कि कैंसर जैसी बीमारी से परिवार छिन्न-भिन्न हो जाता है।

2.1.15 ज़मीन

वर्तमान समय में आबादी, बढ़ जाने के कारण महँगाई भी अपने चरम अवस्था में पहुँच चुकी है, लेकिन जमीन तो वही की वही रहेगी। यह कभी बढ़ नहीं सका। जैसा है वैसे ही रहेगी मनुष्य को इस संसार में जीने के लिए अन्न की आवश्यकता है। उसके लिए खेती करना पड़ेगा। खेती नहीं किया तो पेट नहीं भरेगा। इससे यह पता चलता है कि मनुष्य को जीने के लिए अन्न ज़रूरी है, अन्न उगाने के लिए तो ज़मीन की जरूरत है। इसलिए मनुष्य ने ज़मीन को अधिक महत्व दिया है। इससे यह समझ में आता है कि अगर मनुष्य के अस्तित्व के लिए ज़मीन की जरूरत है। यह एक ऐसी चीज़ है जिसके कारण समाज में उसे पाने के लिए कई बार मार-काट और युद्ध भी हुए हैं। आदमी ने अपने धैर्य और भुजबल के द्वारा ज़मीन को अपने वश कर लिया है। जिससे दुर्बल लोग भूमि हीन बन गए। ‘चाँद की हँसुली’ उपन्यास में भीखनाथ ज़मीन के लिए अपने भाई दीननाथ की हत्या कर देता है।

आज के सदर्भ में भूमिहीनों की खोज करें तो वही लोग मिलते हैं, जो समाज से दूर किए गए, दबाए गए, दलित, अछूत, आदिवासी आदि। भूमिहीनों के बारे में एम.एन.श्रीनिवास

¹ सैनिक का खून, डॉ. विजयी, पृष्ठ सं.-44-45

अपने ‘आधुनिक भारत में सामाजिक परिवर्तन’ किताब में लिखते हैं कि “प्रभुता स्थापित होने में भूस्वामित्व बड़ा निर्णायक तत्व है। आम तौर पर, भारत के देहातों में भूमि के स्वामित्व का रूप ऐसा है कि कृषि-योग्य भूमि का अधिकांश भाग अपेक्षा थोड़े-से बड़े-बड़े भूस्वामियों के हाथों में केन्द्रित है, जबकि बहु-संख्य लोगों के पास भूमि या तो बहुत कम है या बिलकुल नहीं।”¹ उपर्युक्त कथन से पता चलता है कि भारत देश में भूमि का मालिक वैसे सत्ता संपन्न व्यक्ति ही भूमि का भूपति बना बैठा है और असहाय, लाचार बहु-संख्यक समाज भूमि हीन, संपति विहीन है।

दलित-आदिवासियों को मुख्यधारा ही नहीं बल्कि समाज की सुविधाओं से वंचित किया गया। यह स्थिति मनुवादियों द्वारा निर्मित हुई जो अब भी दलितों को अपना शिकार बना रहीं है। दलितों के लिए ऐसा कानून बनाया गया है कि ये लोग अपने पास ज़मीन नहीं रख सकते थे। उन्हें कोई अपना कार्य करने का अधिकार नहीं था। इन्हें केवल उच्च-वर्ग या वर्ण के लोगों के सेवा करने का दर्जा दिया गया। इसलिए इन लोगों के पास ज़मीन नहीं है। अगर कहीं कुछ बीघे ज़मीन हो तो भी ठाकुर, ज़मींदार, ठेकेदार और वहाँ के मंत्री उस ज़मीन को हड़पने की कोशिश करते हैं। उस ज़मीन को हड़पते समय दलित परिवार की स्थिति कैसी होगी? भूमिहीन होने पर उस परिवार का छिन्न-भिन्न हो जाना तय है। इन्हीं सारे विषयों को एस.आर. हरनोट के उपन्यास ‘हिडिंब’ में देख सकते हैं। कहने का मतलब यह है कि खासतौर पर ‘हिडिंब’ उपन्यास में लेखक एस.आर.हरनोट ने किसान, दलित और गरीबों के प्रति होनेवाले अत्याचार, भ्रष्टाचार, छुआछूत और समाज में फैला हुआ अंधविश्वास आदि विषयों का वर्णन किया है। भूमिहीन जनता के प्रति होने वाले दबाव, कुण्ठा, निराशा, संत्रास और घुटन आदि विषयों पर बल देते हुए लेखक ने ज़मीन समस्या से संबंधित आंदोलन का यथार्थ चित्रण इस हिडिंब उपन्यास में चित्रण किया है। जैसे-

¹ आधुनिक भारत में सामाजिक परिवर्तन, एम.एन. श्रीनिवास पृष्ठ सं-24

“अब उसी शावणू की ज़मीन ने उसे परेशान कर दिया था। उसकी आँखों में वह नड़ परिवार और उसका घर चुभता चला गया।”¹

‘आक्रोश’ उपन्यास में प्रधान जी से चौधरी हरवीर सिंह कर्ज माँगते समय पूछता है कि “प्रधान जी किस हिसाब से बीस बीघे का इकरारनामा करा रहे हो ? लाला ऐसा मत करो। मेरे इज्जत का सवाल है। अब तो मेरी इज्जत आपके ही हाथ है। ऐसा करो दस बीघे का इकरारनामा करा लो, जब आपको पैसे दे दूँगा जमीन छुड़ा लूँगा।.....प्रधान जी बोले – भाई यह इकरारनामा पुराने कर्ज के एवज में है। अब आगे जब अपनी लड़की की शादी के लिए कर्ज लोगे तो उसका हिसाब अलग रहेगा। उसका इस जमीन से कोई संबंध नहीं होगा।”² आर्थिक विषमता के चलते दलित समाज इन शाहूकार और जमींदारों से कर्ज लेकर समय पर न चुकाने की वजह से अपनी जमीन को ही खो देते हैं।

2.1.16 समाज में मीडिया का योगदान

आधुनिक युग पत्रकारिता के जगत में क्रांति का युग रहा है। पत्रकारिता ने जैसे-जैसे विकास किया, समाज का हर तबका उससे जुड़कर अपनी प्रगति को स्पष्ट करना चाह रहा है। इस प्रक्रिया में दलित भी पीछे नहीं रहे हैं। आधुनिक भारत में दलितों में अभी भी शिक्षा की मात्रा बहुत कम है। शिक्षित दलितों के आँकड़े कुल दलित जनसंख्या का लगभग 6 7 प्रतिशत है। शिक्षित दलित कहीं-कहीं पत्रकारिता से जुड़कर सम्पूर्ण दलित समाज के उत्थान में प्रयासरत हैं। इसलिए आधुनिक युग में दलितों की प्रगति की प्रक्रिया भी धीरे-धीरे शुरू हो रही है। मोहनदास नैमिशराय ‘ज़ख्म हमारे’ उपन्यास में प्रश्न उठाते हैं कि पत्रकारिता की दुनिया में दलित-मुस्लिमों का क्या स्थान है। अजुमान हाल में मुस्लिम महासंघ की बैठक चल रही थी। उस बैठक में राजू कहता है कि “मुझे बताएँ आजादी के

¹ हिडिम्ब, ओस.आर.हरनोट, पृष्ठ सं.-12

² आक्रोश, रघुवीर सिंह, पृष्ठ सं.-51

बाद आधी शताब्दी बीत जाने के बाद भी क्या किसी दैनिक अखबार या टीवी चैनल में कोई दलित मुस्लिम संपादक, संवाददाता या समाचार वाचक है? मुझे बताएँ कि क्या देश में किसी दलित या मुसलमान का कोई दैनिक अखबार है?।”¹ उपर्युक्त उद्धरण से पता चलता है कि दलितों को हर मुख्य क्षेत्र से वंचित किया गया है।

2.1.17 समाज सुधारक

समाज सुधार के नाम पर ढोंग रचने वालों का पर्दाफाश करते हुए लेखक अपने पात्रों के माध्यम से कहता है कि “साला बड़ी बातें करता है समाज सुधारने की। भाई के घर में चोरी करके समाज सुधारने चला है, अरे एक घर तो डायन भी छोड़ देती है।”²

जयप्रकाश कर्दम ने अपने ‘छप्पर’ उपन्यास में भारत की आज़ादी के बाद स्वतंत्रता, समानता एवं बंधुता के संवैधानिक मूल्यों के परिप्रेक्ष में सामाजिक संरचना के सृजनात्मक साहित्य की ज़मीन की तलाश की है। उस ज़मीन की तलाश है जिसमें जागरण, रोमानी क्रांतिकारिता चंद किताबें पढ़कर पैदा हुई संघर्ष-चेतना के बजाय मानवीय भावों और अहसासों का जीवन स्पर्श हो और जिस ज़मीन पर खड़े होकर आत्मीय और भावनात्मक प्रसंगों की पृष्ठभूमि में अपनी समझ के तीखे से तीखे सामाजिक-सांस्कृतिक सवालों के समाधान खोजने का उपक्रम किया जा सके। इधर के लेखन में क्षणिक आवेशजन्य क्रांतिकारिता के आग्रहवश बंधुता भाव एवं प्रेम को तो जैसे वर्जित क्षेत्र मान लिया गया है। परंतु उपन्यासकार जयप्रकाश कर्दम ने इस कथ्य को बहुत ही संयत विवेक के साथ उठाया है।

‘छप्पर’ उपन्यास का संवेदनात्मक उद्देश्य तो उस ब्राह्मणवाद या पुरोहितवाद की बखिया उधेड़ना है जो अभी तक हमारे समाज को खोखला बनाए रखने और अपना

¹ ज़ख्म हमारे, मोहनदास नैमिशराय, पृष्ठ सं-112

² जस तस भई सबेर, सत्यप्रकाश पृष्ठ सं-75

वर्चस्व बनाए रखने के लिए पूरा सक्रिय है। इस उपन्यास के मुख्य पात्र चंदन और उसके पिता सुक्खा ब्राह्मणवाद की साजिशों के शिकार हैं और जीवन भर उसी षडयंत्रकारी चालों को झेलते रहे हैं। परंतु चंदन की अगुवाई में सामाजिक बदलाव के लिए शुरू हुए आंदोलन की व्यापक प्रतिक्रिया समाज पर होती है। इसके परिणाम का लेखा-जोखा प्रस्तुत करते हुए उपन्यासकार कहता है “आज सामाजिक क्रांति का प्रतीक बन गया हैं चंदन। उसकी एक आवाज पर खुशी-खुशी अपना सब कुछ त्यागने को तैयार हैं लोग। समाज से अन्याय और असमानता को मिटाकर सवर्ण-अवर्ण सछूत-अछूत, अमीर-गरीब और मालिक-मजदूर सबको एक समान धरातल पर लाने तथा समाज में खुशहाली और भईचारा बढ़ाने के लिए कार्य कर रहा है चंदन।”¹

जो व्यक्ति शील और सदाचार का पालन करे, जो ईमानदार और सत्यनिष्ठ हो, जिसके मन में छलकपट, धोखा न हो, जो मेहनत से कमाकर खाता हो, वह श्रेष्ठ है जो सुशील और व्यभिचारी हो, जो मिथ्या बोलने वाला हो और बेईमान हो, जिसके मन में छलकपट या धोखा हो, जो शोषणवृत्ति वाला हो, जो दूसरे लोगों को ठगकर, उनको भ्रम और भ्रांति में डालकर या उनको भय अथवा लोभ दिखाकर, उनकी मेहनत की कमाई को लूटकर अपना पेट भरता हो, वह हीन है। इस महास्वप्न के यथार्थ की परिणति का परिणाम उपन्यास में इस प्रकार दर्ज है, इसी भावना के चलते मिथ्या विश्वास और आडंबरों का विरोध शुरू हुआ तथा आस्था और अनुष्ठानों को औचित्य-अनौचित्य की कसौटी पर परखा जाने लगा। मनुष्य जन्म से लेकर मृत्यु तक होने वाले धार्मिक और सामाजिक अनुष्ठानों के सहारे फलने-फूलने वाले पंडे-पुरोहितों के परंपरागत व्यवसाय को भी ज़बरदस्त धक्का लगा। जिन लोगों ने बदलाव की इस हवा को पहचाना, उन्होंने पूजा-पुरोहिताई का धंधा छोड़कर दूसरे धंधों की ओर रुख किया। शायद इसी कारण ब्राह्मणवाद की साजिशों के इतने गहरे जाल के बीच भी चंदन, सुक्खा, परिया आदि पात्रों को कोई

¹ छप्पर, जयप्रकाश कर्दम, पृष्ठ सं.-97

खरोंच तक नहीं आती। वे बिना कुछ का खास प्रयत्न जीवित रहते हैं और सामाजिक बदलाव की महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह करते हुए स्वतंत्रता, समानता एवं बंधुता के आधार पर नए समाज का सृजन करते हैं।

मोहनदास नैमिशराय के 'मुक्ति पर्व' उपन्यास को पढ़कर देश की आज़ादी के सवाल पर एक बार फिर बहस हो सकती है। भारत के कम्युनिस्टों की दृष्टि में यह झूठी आज़ादी थी तो दलितों की दृष्टि में अधूरी। लेकिन आज़ादी जरूर थी। देश अंग्रेजी शासन की अधीनता से मुक्त हुआ, पर आर्थिक शोषण से पूर्णतया मुक्ति नहीं मिली। डॉ. अम्बेडकर चाहते थे कि "राजनीतिक आज़ादी से पहले दलितों को आर्थिक-सामाजिक शोषण से मुक्ति मिलनी चाहिए। उनकी शंका सही थी कि अंग्रेजों के चले जाने के बाद देश पर स्वदेशी शासकों के रूप में हिन्दूओं का राज होगा, उसमें दलितों के हितों की अनदेखी की जाएगी तथा उनका आर्थिक-सामाजिक शोषण बदस्तूर जारी रहेगा।"¹ आज़ादी के पचास साल बाद भी जब दलितों को सामाजिक-आर्थिक शोषण से मुक्ति और न्याय नहीं मिला तो वे सोचने के लिए मजबूर हो गए कि यह आज़ादी आखिर किसके लिए है ? उनका मुक्ति पर्व कब आएगा ? यह ऐसा सवाल है जो आज़ादी से लेकर आज तक दलितों के भीतर उठता रहा है और उनकी भावनाओं को समय-समय पर उद्वेलित भी करता रहा है। मोहनदास नैमिशराय इसी सवाल को देश के प्रत्येक सभ्य नागरिक, राजनीतिज्ञ और समाज सुधारक से पूछते हैं। हम मुक्ति पर्व किसे कहें ? जब देश आज़ाद हुआ उसे या जब किसी जाति या कुछ जातियों को आज़ादी मिली उसे ? मुक्ति से आखिर तात्पर्य क्या है, एक आदमी की मुक्ति या एक विशेष जाति की ?

¹ हिन्दी दलित साहित्य, मोहनदास नैमिशराय, पृष्ठ सं.-163

2.1.18 समाज परिवर्तन

सामाजिक परिवर्तन की धारणा बहुत बृहद है। स्थान, समय और सन्दर्भ के परिप्रेक्ष्य में सामाजिक संरचना के अन्दर होने वाले परिवर्तन की प्रक्रियाओं के पुंज को सामाजिक परिवर्तन कहते हैं। चूँकि यह अवधारणा इतनी बृहत् है। इसलिये कुछ अस्पष्ट, अन्तरिम और मूल्य तटस्थ है। सामाजिक परिवर्तन की अवधारणा के अतिरिक्त इस अध्याय में क्रांति, प्रगति, विकास, सामाजिक आन्दोलन और सामाजिक परिवर्तन संबंधी प्रक्रियाओं की अवधारणाओं की व्याख्या की है। सामाजिक प्रक्रियाओं का विश्लेषण भारतीय समाज में सामाजिक परिवर्तन और गतिशीलता के प्रतिमानों के संदर्भ में किया गया है। मानव समाज में विरोधी वर्ग, संघर्ष एवं सहयोग से परिवर्तन होता है। यह संघर्ष और सहयोग एवं संरचनात्मक अवस्था यानी अर्थव्यवस्था राजनीति की अवस्था में तो होता है, परिवर्तन के लिए एक परिस्थिति भी होती है। मसलन एक समाज में कभी फसल अच्छी हुई, कभी अकाल पड़ गया। संघर्ष और सहयोग से संख्यात्मक परिवर्तन गुणात्मक परिवर्तन में बदलते हैं। सामान्य परिवर्तन गंभीर परिवर्तनों में बदलते हैं। सामाजिक क्रांति एक समाज विशेष में सबसे गंभीर परिवर्तन है। इससे उत्पादन की शैली और आर्थिक प्रणाली बदलती है। शक्ति की संरचना और वितरण बदलता है, प्रभावी विचारधारा बदलती है यानी संपूर्ण व्यवस्था बदल जाती है। परिवर्तन की प्रक्रिया क्रमिक नहीं होती है, यह उछाल वाली होती है, अक्रमिक होती है।

समाजशास्त्री विल्फ्रेडो पैरेटो परिवर्तन को परिभाषित करते हुए कहते हैं कि “समाज परिवर्तन एक स्वाभाविक, प्राकृतिक एवं नियमित प्रक्रिया है।”¹ भारतीय समाज में दलित शिक्षित होने के कारण ब्राह्मणों का वर्चस्व छिन्न-भिन्न हो रहा था। मोहनदास नैमिशराय अपने ‘मुक्ति पर्व’ उपन्यास में समाज के परिवर्तन के बारे में लिखते हैं कि

¹ समाजशास्त्रीय विचार, मुजतबा हुसैन पृष्ठ सं.-205

“पहले पण्डित आया फिर हिजड़े। पंडित का काम था जन्म लेने वाले बच्चे का नामकरण संस्कार कराना और हिजड़ों का काम था उस नाम के बहाने गाना-बजाना। दो अलग-अलग व्यवसाय, पर एक-दूसरे से रिश्ते बनाए हुए। दोनों के पास नैतिकता के अलग-अलग मापदंड थे। उनकी जीवन-शैली अलग-अलग थी। भाषा तथा विचार अलग थे। वह बात अलग थी कि पण्डित समाज का केन्द्रबिंदु बने हुए थे और हिजड़े हाशिये पर थे। उनका जीवन अजीबोगरीब द्वंद्व में था। पर द्वंद्व में आज हिजड़े नहीं थे, पण्डित था। पहली बार वह दलित बस्ती से निराश लौटा था। उनके ज्ञान पर प्रश्नचिह्न लगा था। ऐसा क्यों हुआ? आज तक तो ऐसी स्थिति नहीं आई थी।....साठ बरस से चली आ रही पंडिताई की कीमत आज दो कौड़ी की भी नहीं रही थी। बस्ती पर काबिज रहा। पीढ़ी-दर-पीढ़ी उसका दबदबा टूट गया था। धर्म की बिसात उलट गई थी। इसलिए कि आज एक पण्डित बाजी हार गया था और दलित जीत गया था।”¹ उपर्युक्त कथन से पता चलता है कि बंसी ने ब्राह्मणवाद परंपरा को तोड़ते हुए, बंसी अपने बेटे का नामकरण खुद करता है और वह पण्डित केशव प्रसाद को नामकरण करने से मना करता है। दलित समाज में लोग शिक्षित होकर किस रूप में परिवर्तन ला रहे हैं। यह देखने को मिलता है।

नन्दलाल भारती ने अपने ‘अमानत’ उपन्यास में दलितों में शिक्षा के प्रति जागरूकता को दिखाने का सफल प्रयास किया है। मीठू दादा जमींदार की दिन-रात गुलामगिरी करते थे। इस गुलामगिरी में बेटे को फसाना नहीं चाहते थे। इसलिए बेटे सच्चिदानन्द को पढ़ाया “बेचारे मीठू दादा के सिर पर बालपन में ही मुसीबत का पहाड़ गिर पड़ा था। ना चाहकर भी उन्हें जमींदार की हलवाही करनी पड़ी थी। मीठू दादा अपने बेटे को कभी भी इस नरक में नहीं झोकना चाहते थे, जो उनके साथ हुआ उसे एक सपना मान कर भुला देना चाहते थे। सच्चिदानन्द में ही अपने जीवन की आस को ढूँढ़ रहे थे। मीठू दादा ने जीवन भर तो जहर पीकर ही जीया था ऊपर से शोषण उत्पीड़न का जख्म भी

¹ मुक्ति पर्व, मोहनदास नैमिशराय पृष्ठ सं-30-31

खूब झेला था।”¹ उपर्युक्त उद्धरण से पता चलता है कि मीठू दादा ने अपने बेटे को शिक्षित करवाकर गुलामगिरी से मुक्ति दिलवायी था।

2.2. समाज में आर्थिक स्थिति

भारत की अर्थव्यवस्था का दलित समाज पर किस तरह का प्रभाव पड़ा है और निकट भविष्य में आम आदमी और जन-विरोधी नीतियों के दूरगामी प्रभाव के क्या-क्या परिणाम निकलने वाले हैं। हमारा मुख्य सरोकार इस बात से है कि आजादी के बाद जिस सामाजिक-आर्थिक ढाँचे के तहत दलित समाज ने जो कुछ हासिल किया और सामाजिक-आर्थिक प्रगति की, वह इससे किस तरह प्रभावित हुई है। इसलिए नई आर्थिक नीति के लागू होने से पहले की स्थितियों पर गौर करके ही वर्तमान स्थिति को समझा जा सकता है। कँवल भारती अपनी किताब ‘दलित विमर्श की भूमिका’ में डॉ. अम्बेडकर और मार्क्स की आर्थिक स्थिति को देखने की दृष्टि के विश्लेषण की कोशिश करते हैं। वह लिखते हैं- “खासतौर से मार्क्सवादी विचारक यह मानते हैं कि दलित साहित्य-समस्या आर्थिक समस्या है। वे इस समस्या को श्रम-विभाजन की दृष्टि से देखते हैं। लेकिन जाति व्यवस्था द्वारा जो श्रम विभाजन किया गया है, वह पसंद के आधार पर विभाजन नहीं है। डॉ. अम्बेडकर ने अपनी किताब ‘जाति का उन्मूलन’ में इस विषय पर विस्तार से चर्चा की है। जाति व्यवस्था हिन्दुओं को ऐसा पेशा अपनाने की इजाजत नहीं देती, जो पीढ़ीगत उनका पेशा नहीं है।”² उपर्युक्त कथन से पता चलता है कि मार्क्स और डॉ. अम्बेडकर का भारत को देखने की दृष्टि में अन्तर है क्यों कि भारत एक ऐसा देश है जो जातियों का जन्मस्थल है। रुपनारायण सोनकर के ‘सूअरदान’ उपन्यास में डॉ. अबम्बेडकर के सिद्धांत को अपनाया है। वे लिखते हैं “देश को समृद्धशाली बनाने के लिए रात-दिन मेहनत करते हैं। वे व्यापारी व उद्योगपति देश के लिए वरदान होते हैं। उनसे देश व समाज का गौरव

¹ अमानत-नन्दलाल भारती-पृष्ठ,सं.-51

² दलित विमर्श की भूमिका, कँवल भारती, पृष्ठ सं.-23

बढ़ता है।”¹ उपर्युक्त कथन से पता चलता है कि इस उपन्यास में प्रमुख पात्र रामचंद्र त्रिवेदी, मलवंत यादव, घसीटे चमार और सज्जन खटिक ये चारो मिलकर पिगरी-फर्म खोलते हैं। उस पिगरी-फर्म द्वारा अर्जित लाभ को समाज कल्याण के लिए खर्च करते हैं।

रुपनारायण सोनकर का ‘सूअरदान’ उपन्यास में सन्तू उसकी पत्नी मैकी मजदूरी का काम करके बेटा रतनलाल को पढ़ाते हैं। वह शिक्षित होकर डिप्टी कलक्टर बन जाता है। रतनलाल डिप्टी कलक्टर हो जाने के बाद परिवार को भूल जाता है। “जो लोग खुले आम यह काम करते हैं उन्हें समाज से डर नहीं लगता है बल्कि समाज उनसे डरने लगता है। कुछ लोग इसको व्यभिचार कहते हैं कुछ लोग जीने की नई कला। जो लोग इसको व्यभिचार कहते हैं। जो लुक-छिपकर यह काम करते हैं समाज उनकी असलियत नहीं जान पाता है। ऐसे लोग समाज में ज्यादा सम्मानित होते हैं। ऐसे लोग अपने मूक व ढंके मुखौटे के बल पर अपनी अभिलाषाएं पूरी करते जाते हैं। ऐसे लोग समाज के लिए घातक होते हैं या फलदायी।”² उपर्युक्त कथन से पता चलता है कि रतनलाल दूसरी शादी रश्मि सिंह के साथ कर लेता है और दूसरी शादी करने के बाद अपने माता-पिता पत्नी अनुसूईया, बेटी जानकी और छोटे भाई सतन लाल, सब को भूल जाते हैं। परिस्थितियों के कारण जानकी कालगर्ल बन जाती है।

मोहनदास नैमिशराय के ‘मुक्ति पर्व’ उपन्यास में दलित छात्र सुनीत के माता-पिता अपने बच्चों को अँगूठा छाप नहीं बनाना चाहते थे। अध्यापक पाण्डे सुनीत को पढ़ने नहीं देते थे। फिर भी सुनीत पढ़कर अपने बस्ती में अध्यापिका के रूप में नियुक्त होता है। “बस्ती के बच्चों के अलावा आसपास रहने वाले लोगों के बच्चे भी इस स्कूल में आने लगे थे। पर वे सभी दलित और पिछड़ी जातियों के ही बच्चे थे। अन्य जातियों के बच्चे तो बस्ती में प्रवेश तक नहीं करते थे। इसके कारण यह भी था कि बस्ती के एक तरफ घना जंगल था

¹ सूअरदान, रुपनारायण सोनकर पृष्ठ सं-67

² वही, पृष्ठ सं-104

तो दूसरी ओर श्मशाना....पीढ़ी-दर-पीढ़ी यही रिश्ते हस्तांतरित हुए थे। जिन्हें सवर्ण समाज गुनहगार समझता वे पुलिस से बचते हुए इमानदारी से अपनी रोजी-रोटी कमाना चाहते, जिन्हें दिन में भी देखकर लोग डरते, वे श्मशान में मुर्दा फूँकते। यह उनका व्यवसाय था, उन पर कोई शाप न था.....वे शापित नहीं थे बल्कि समाज के जिंदा रखने वाले सूत्रधार थे। वे मुफ्त का खाने वाले नहीं थे बल्कि मेहनत करने वाले कर्मारे थे। उनके बच्चों को भी यही कार्य करना होता था। जो शिक्षा से वंचित थे। मनुष्य होते हुए भी उन्हें मनुष्य नहीं समझा जाता था। उन्हें तथाकथित सर्वश्रेष्ठ समाज से काटकर फेंक दिया था, फिर भी वे उसी समाज के पूरक थे। यह अजीब विरोधाभास भी है कि उसी की मेहनत पर पलने वाला समाज उसे हीन दृष्टि से देखता था।”¹ उपर्युक्त कथन से पता चलता है कि इस देश में आप किसी भी गाँव में जाकर देखिए, दलितों की बस्ती अलग और गाँव से दूर होती है। मुख्यधारा के लोग अधिकार और आर्थिक रूप से मजबूत थे। मोहनदास नैमिशराय के ‘ज़ख्म हमारे’ उपन्यास में गुजरात राज्य के तानारपुर गाँव में भूकम्प आकर गुलाम की पत्नी और बच्चे की मृत्यु हो गयी थी। इसलिए गुलाम गाँव छोड़कर शहर जाकर कार्पोरेशन में लाशों को उठाने का काम करता है। “मलबे के भीतर से दबे हुए लोगों को निकालना, कार्पोरेशन की गाड़ी में लाशों को ढोना तथा श्मशान में ले जाकर उन्हें जलाना। इन सभी जिम्मेदारियों को अंजाम देने वालों में सभी दलित कर्मचारी थे। सवर्ण समाज का कोई व्यक्ति पास भी नहीं फटकता था। न मालूम मुर्दों से ही छूत लग जाए।”² उपर्युक्त कथन से पता चलता है कि गंदे काम करने के लिए दलितों का ही उपयोग किया जाता है। उन्हें ऐसे काम करने पर मजबूर किया जाता है। जिससे लोग घृणित दृष्टि अपनाते हैं।

¹ मुक्ति पर्व, मोहनदास नैमिशराय पृष्ठ सं-93

² ज़ख्म हमारे, मोहनदास नैमिशराय पृष्ठ सं-39

2.2.1 बेरोजगार

गाँव में बाढ़ आने के बाद परिस्थितियाँ बदल गयी थी। इस समय खेती का कुछ काम नहीं हो रहा था और बेरोजगारी भी बढ़ गया थी। फुलिया से चिरौंजी कहती है- “चमारों को काम कौन देता है ? बेगारी करते-करते बेगारी उनके स्वभाव में आ गयी है। हर काम को बेगार समझ कर करते हैं, इसलिए कोई मजदूर नहीं कराता”¹ इस उद्धरण से पता चलता है कि गाँव में दलितों के प्रति सर्वणों की मानसिकता उदासीन और उपेक्षित ही है। उन्हें मजदूर कम बेगार अधिक मानते हैं।

2.2.2 गरीबी

गरीबी की सबसे बड़ी समस्या उनकी अशिक्षा है। गरीबी का मुख्य कारण सामाजिक असमानता समाज को टुकड़ों में बांटना, चाहे जमीन हो, संपत्ति हो और अधिकार हो। आर्थिक असमानता ही समस्याओं की जड़ है। समाज में जो जाति और छुआछूत का भेद भाव है वही सामाजिक असमानताओं को शक्ति दे रही है।

दलित समाज में गरीबी का भयंकर रूप इन उपन्यासों के माध्यम से लेखक ने बताने की कोशिश किया है। अमानत के उपन्यास में एक उदाहरण मिलता है जब सच्चिदानन्द की बहन विद्यावती की मौत समय पर इलाज न कराने के कारण होता है। इसकी सूचना सच्चिदानन्द को उसके परिवार के सदस्य नहीं देते हैं। क्योंकि वह शहर में काम करने जाता है। उनकी आर्थिक तंगी के कारण उसे नहीं बुला पाते हैं। उसकी माँ सुमरी देवी कहती है कि “बेटा तुम भी तो शहर में परेशान रहते हो ना नौकरी ना धंधा कैसे कैसे ईंट गारा करके सौ दो सौ कमाते हो। उसमें से भी अपने पेट की कटौती करके घर देते हो। तुम्हारी मजबूरी को देखते हुए तेरे बापू ने विद्यावती के मरने की खबर ना दी थी। बेटा तुझे दुख नहीं देना

¹ कमलकान्त, आई.ए.एस., प्रियदर्शी, पृष्ठ सं.-66

चाहते थे हम लोग। चलो बहन का भाग्य था भाई का जूठ उसकी तेरहवी पर गिर ही जायेगा।”¹ उपर्युक्त उद्धरण से पता चलता है कि उनकी घर की आर्थिक स्थिति ठीक न थी। जिसके वजह से बहन की अखिरी बार देखने के लिए भी नहीं आ सकता था।

सुमारी देवी अपने बेटे सच्चिदानन्द से गरीब और समाज के कुरीतियों के बारे में कहती हैं कि “हाँ बेटा क्या करें आपन तो कर्जे में ही पैदा हुए हैं कर्जों में ही दफन हो जायेंगे। भगवान तेरी मदद कर देता तो मेरे जीवन की तपस्या सफल हो जाती। राम जाने उसकी क्या मर्जी है। पिछली पीढ़ी के लोग गरीब बनाकर गये हैं सब जमीन जायदाद छीन लिये आज उनकी औलादे तो ऐश कर रहीं हैं हम गरीब होकर रह गये हैं। सचमुच गरीब कर्म का फल नहीं हैं तो पिछड़ी पीढ़ियों की बेईमानी का नतीजा है कि हम गरीब शोषित पीड़ित होकर रह गये हैं। ना जाने भगवान हम गरीबों की पुकार क्यों नहीं सुनता है। ना जाने कब जीवन की तपस्या पूरी करेगा। काश अपनी भी साध पूरी हो जाती।”² इस कथन से समझ सकते हैं कि समाज के लिए गरीबी एक अभिशाप की तरह सदियों से पीछा कर रहा है।

सच्चिदानन्द अपनी बहन की बेटी का नामकरण के संदर्भ में माँ सुमारी देवी से कहता है कि “माँ अपनी किस्मत अच्छी होती तो इस बूढ़े समाज में पैदा होते। जहाँ आदमी को आदमी से छोटा समझा जाता हैं। इतना ही नहीं जानवरों का जूठन बड़े चाव से लोग खा लेते हैं पर आदमी का छुआ अपवित्र हो जाता है वाह रे समाज”।³ इसमें सामाजिक विषमता और विडंबना को व्याख्यायित किया गया है।

भारतीय समाज में मुख्य धारा का समाज ठाकुर, जमींदार और पण्डितों का है। उनका गाँव के निर्माण में प्रमुख उपस्थित और अधिकार होने के कारण सारी सुख-सुविधा वाले

¹ अमानत, नन्दलाल भारती, पृष्ठ सं.-27-28

² वही, पृष्ठ,सं.-62

³ वही, पृष्ठ सं.-63

घर बनवा लेते हैं। दलितों को गाँव के बाहर घर बनवाने के लिए दिया जाता है। जो जगह रहने लायक न हो। प्रकृति विपत्ति आने पर सिर्फ दलित लोग ही निर्वासित हो जाते हैं। क्योंकि बाढ़ आने पर दलित के सारे घर पानी में डूब जाते हैं। खाने के लिए दलितों के पास एक भी दाना नहीं बचता है। ठाकुर और जमींदार दलितों को धन देते हैं और सूद के साथ वसूल करते हैं। पण्डित कहते हैं “आसामियों को भी खयाल रखना चाहिए कि जिसका खायें, उसका सूद के समेत वापस करें।”¹ ठाकुर, जमींदार और ब्राह्मण अच्छी तरह से जानते हैं कि दलितों को कैसे फसाना, और शोषण करना है।

2.2.3 कर्ज

चौधरी हरबीर सिंह ने लाल गुप्ता से मुकदमें के लिए पैसे उधार लिये थे। फिर बेटी की शादी करना है तो फिर लाला गुप्ता से पैसे माँगता है। तब लाला कहते हैं कि “तो फिर क्यों मेरी इज्जत पर हावी हो रहे हो? आपको यह तो पता ही है कि ब्याज में मेरी बीस बीघा जमीन आपके यहाँ गिरवी रखी हुई है उससे भी तो आप कुछ फायदा उठा ही रहे हो। मूल तो आपका मेरे सिर पर पहाड़ की तरह रखा ही हुआ है। लड़की के हाथ पीले करने के बाद मैं आपके पैसे का भी इन्तजाम करूँगा, कुछ समय तो लगेगा ही। लाला यदि आप मुझे ज्यादा ही मजबूर करोगे तो थोड़े बहुत पैसे की व्यवस्था कर दूँगा पर खेत खलिहान में से आज एक भी अन्न का दाना नहीं उठाने दूँगा।”²

मुकदमे ने चौधरी रहबीर सिंह की हालत पतली कर दी थी उनकी समझ में नहीं आ रहा था कि क्या करें। ग्राम प्रधान गुप्ता जी से उधार लेकर कुछ को मुकदमेबाजी में लगाना पड़ा। घर की स्थिति को देखकर पति चौधरी से चौधराईन कहती है कि- “आग लगे तैरे मुकदमे में, नाश कर दिया घर का। ठेका ले रखा है क्या मुकदमा लड़ने का। बरबाद कर

¹ कमलकान्त, आई.ए.एस, प्रियदर्शी, पृष्ठ-सं.63

² आक्रोश, रघुवीर सिंह, पृष्ठ सं.-105

दिया है मुकदमें में। लड़की अठारह साल की हो गई है इसका भी कोई ख्याल है?।”¹ इससे स्पष्ट होता है कि उधारी और सूदकोरी के चलते गाँव के अधिकतर लोगों की आर्थिक स्थिति बिगड़ती जा रही थी।

‘चाँद की हँसुली’ उपन्यास में सुखिया कहती है कि “भूमिहीन खेतिहर-मजदूर क्या गहना बनवायेगा? दो जून की रोटी की व्यवस्था हो जाये वही बहुत है। क्या किस्मत भगवान ने अपनी बना दिया है! उधर जमींदारों-साहूकारों की किस्मत देखो। जमींदार की बिटिया के ब्याह में उनके समधी हाथी पर चढ़कर रुपया लुटा रहे थे। आधा किलो सोने की हँसुली चढ़ी थी उनकी बिटिया के ब्याह में। काश हम भी अमीर होते तो इस तरह पाव भर हँसुली के कर्जे से ना दबते। हम भी सोने की हँसुली खरीदते बहू को पहनाते। क्या करें, तकदीर अमीरों की चौखट पर गिरवी पड़ी है।”² उपर्युक्त कथन से पता चलता है कि अमीर और गरीब की तुलना करते हुए सुखिया अपने बेटे दीनानाथ से कहती है गरीबी के कारण उदास मत होना।

2.3. शिक्षा

शिक्षा जहाँ एक ओर मनुष्य के व्यक्तित्व को विकसित करती है, वहाँ उसके सामाजिक तौर-तरीके पर गति प्रदान करती है। इस संदर्भ में एमिन दरखायम परिभाषित करते हैं कि “शिक्षा समाज की आवश्यकताओं को पूरा करती है, जिस प्रकार के कर्मियों एवं विशेषज्ञों की जरूरत होती है, शिक्षा उसकी आपूर्ति करती है। समाज जैसा होता है, शिक्षा वैसी ही होती है। शिक्षा से भविष्य के नागरिक तैयार होते हैं।”³ इससे स्पष्ट होता है कि वर्तमान और भविष्य के लिए शिक्षा अनिवार्य है। शिक्षा द्वारा चिंतन शक्ति, अभिरुचि, आवश्यकता, क्षमता आदि के विकास तथा सामाजिक और सांस्कृतिक के निर्माण की

¹ आक्रोश, रघुवीर सिंह, पृष्ठ सं.-50

² चाँद की हँसुली, नन्दलाल भारती, पृष्ठ सं.-36

³ समाजशास्त्रीय विचार, मुजतबा हुसैन, पृष्ठ सं.-444

दृष्टि से है। वास्तव में शिक्षा वह माध्यम है जिसके द्वारा सांस्कृतिक पूँजी उसकी अगली पीढ़ी को सुसंस्कृत ढंग से सौंपी जाती है। शिक्षा से ही मनुष्य अपने सांस्कृतिक धरोहर की पहचान पाता है। शिक्षा व्यक्ति को न केवल उसके समकालीन जीवन-मूल्यों से परिचय कराती है। शिक्षा के प्रचार-प्रसार से यह ज्ञान होता है।

2.3.1 शिक्षा का महत्त्व

नन्दलालराम भारती के ‘अमानत’ उपन्यास में सच्चिदानन्द अपने बच्चों से कहता है कि “तुम लोग शहर के स्कूल में पढ़ रहे हो। हमारे समय में तो हालात बहुत खराब था बड़ी मुश्किल से मैं पढ़ पाया। हाँ मुझे पढ़ाई के सपने भी आते थे। तुम लोगों को नहीं आते ना क्योंकि हम तो गरीबी में जी रहे थे। बड़े लोगों के बच्चों को स्कूल जाते देखता था तो मेरा भी मन करता था। यही लालसा मुझे पढ़ने को मजबूत करती रही। भूखा पेट भी, पर देखो वही पढ़ाई काम आयी। आज भर पेट रोटी का तो इन्तजाम हो जा रहा है। ऊपर से घर परिवार सब को देख रहा हूँ।.....सामाजिक बुराइयाँ भी मुँह बाये खड़ी रहती थीं और उसके पालन करने वाले भी। बापू तो देर रात से जमींदार की कोठी से काम करके आते थे। कभी तो पता भी नहीं चलता था कि बापू कब आये कब चले गये जमींदार की कोठी। बड़ी मुसीबत झेलकर तेरा बाप ग्रेजुएट कर पाया है।”¹ उपर्युक्त कथन से पता चलता है कि दलितों को सामाजिक कुरीतियों के साथ-साथ गरीबी का भी सामना करना पड़ता था। पढ़ने के लिए इच्छा होने के बावजूद उन्हें कोई रास्ता नहीं दिखाई देता था। पता चलता है कि दलितों का जमींदार द्वारा किस तरह शोषण किया जाता है। और आगे सच्चिदानन्द अपने माता-सुमरी देवी और पिता मीठू के श्रम शोषण के बारे में सच्चिदानन्द की बेटी महक पराग और बेटा सुवास को समझाते हुए कहते हैं कि “मां बाप को दिन भर के काम के बदले दो—दो सेर अनाज मिलते थे सोच लो क्या जमाना रहा होगा। उसमें भी

¹ अमानत, नन्दलाल भारती, पृष्ठ सं.-13

जमीनदारन तौलने में मार लेती थी। कभी कभी तो दिन भर की मजदूरी की जगह सेर भर ही मिलती है। जमींदार बोलते सूरज डूबने से पहले ही तो चला गया था अरे रस पीने को दे दिया कम है।”¹ सच्चिदानन्द से इस अमानवीय व्यवहार को सुनकर पराग कहते हैं कि “बापू गरीबों के शोषण करने वाले तो गिद्ध प्रकृति के लोग होते हैं। आदमी होकर आदमी को सताते हैं गरीब आदमी का शोषण करने वाला तो इंसान तो नहीं हैवान ही कहा जा सकता है इसानियत के पटल पर। इंसान के वेष में शैतान ही होंगे जो गरीबों का शोषण करते हैं। आज भी इंसानों को सताने वालों को हैवान ही कहा जाता है।”² उपर्युक्त कथन से पता चलता है कि सच्चिदानन्द की बेटी पराग गरीब लोगों का शोषण करने वालों को हैवान और शैतान से तुलना करती है।

रघुवीर सिंह के आक्रोश उपन्यास में कल्लू अपने पत्नी सुखिया से कहता है “अरे पगली, हम तो आज तक पागल ही रहे अगर पढ़े लिखे होते तो क्यों इतनी मिट्टी काटते और क्यों गधों जैसा बोझ ढोते। पेट तो उल्टे-सीधे तब भी भर जाता जब मैं बच्चों को स्कूल पढ़ाने के लिए भेज देता।”³ उपर्युक्त उद्धरण से पता चलता है कि अनपढ़ होने पर भी शिक्षा का महत्त्व को जानते थे। इसलिए बच्चों को स्कूल भेजते हैं।

पण्डित भोलादीन की पुत्री उमा पढ़ने-लिखने में होशियार है। पण्डिताईन उमा पढ़ने के लिए मना करती हैं। वे कहती हैं कि “बेटी, अब बहुत पढ़ लइयै, घर के काम काज कू तौ इतनी पढ़ाई बहौत है। अब हम नाय जान दे तोय स्कूल, अब तौ हमें तेरे हाथ पीरे करने की फिकिर है।”⁴ उपर्युक्त कथन से पता चलता है कि अशिक्षा और अज्ञानता के कारण लड़कियों को अधिक शिक्षा करने में असमर्थ है जिसका मनुस्मृति द्वारा बनाये गये एक नियम है। उमा अपने माँ को शिक्षा और समाज में स्त्री पात्र के बारे में समझाती है कि “मां

¹ अमानत, नन्दलाल भारती, पृष्ठ, सं.-14

² वही, पृष्ठ, सं. -15

³ आक्रोश, रघुवीर सिंह, पृष्ठ सं.-38

⁴ आक्रोश, रघुवीर सिंह, पृष्ठ सं.-148

क्या मैं गलत चल रही हूँ ? मेरी क्या गलती है जो बीच में ही पढ़ाई से रोकी जा रही हूँ क्या मैं ठीक से घर का काम काज नहीं करती हूँ। मैंने आपकी घर में किस काम में मदद नहीं की ? और यदि मैंने स्त्री शिक्षा के विषय में कुछ निश्चित किया है, तो वह ग्रामीण स्त्री, समाज एवं देश के हित में है। चारदीवारी में पड़े रहने से क्या फायदा। मैं तो आपको भी देखती हूँ व गाँव की अन्य पड़ोसियों को भी देखती रहती हूँ सास-बहू में किस प्रकार जमकर लड़ाई होती है। एक स्त्री ही स्त्री को जिन्दा जला रही है। एक स्त्री ही दूसरी स्त्री को प्रताड़ित कर रही है। विडम्बना तो यह है कि पुरुष तो शुरु से एक कुकृत्य अपने स्वार्थ के कारण करता आया है।”¹ इस कथन से स्त्री का स्वाभिमान और समाज के प्रति चेतना का आभास होता है।

2.3.2 उच्च शिक्षा

डी.पी.वरुण के ‘रक्त का रिश्ता’ उपन्यास में अजय को डॉ. सुषमा प्रोत्साहिक करती है। उच्च शिक्षा से ही समाज सेवा कर सकते हैं। “कुछ भी हो बेटे। तुमको महापुरुषों से ज्ञान प्राप्त कर देश की सेवा करना चाहिए। सबसे बड़ी देश सेवा है मानव सेवा। मानव सेवा का अर्थ है मनुष्यों के प्राकृतिक अथवा कृत्रिम दुःखों को दूर करना एवं स्वस्थ वातावरण स्थापित करना। इन बड़े कार्यों को सफलतापूर्वक करने के लिए उच्च शिक्षा की आवश्यकता है। इसलिए अपना अध्ययन पूरा कर लो और समाज सेवा में जुट जाओ। इसमें घबराने की कोई बात नहीं है।”² उपर्युक्त कथन से पता चलता है कि धामपुर गाँव के रहने वाले गंगू चौधरी के बेटे अजय को सवर्ण जाति के लड़के द्वारा सताया जाता है। इसलिए कॉलेज छोड़कर घर आ जाता है। लेकिन डॉ.सुषमा अजय को समझाकर फिर कॉलेज भेजती है।

¹ आक्रोश, रघुवीर सिंह, पृष्ठ सं.-149

² रक्त का रिश्ता, डी.पी.वरुण, पृष्ठ सं.-34

2.3.3 शिक्षा से वंचित समाज

मोहनदास नैमिशराय के ‘मुक्ति पर्व’ उपन्यास में करतार का परिवार पीढ़ी-दर-पीढ़ी अनपढ़ था। इसलिए करतार की बेटी भूरी को शिक्षा ग्रहण करने के लिए सुनीत प्रभावित करता है। “उनकी पीढ़ी में भूरी पहली लड़की थी, जिसे पढ़ाने का फैसला हो गया था। पीढ़ी-दर-पीढ़ी अँधेरे में भटकता वह समाज। जो सवर्ण समाज से मुक्त होते हुए भी परंपराओं से मुक्त न था। बहिष्कृत अवश्य था। उनके लिए पढ़ना-लिखना केवल सपना था।”¹ उपर्युक्त उद्धरण से पता चलता है कि भंगी जाति में भूरी शिक्षा ग्रहण करने वाली लड़कियों में पहली लड़की थी। सुनीत की पढ़ाई के लिए बंसी कहते हैं कि “हाँ मास्टर साहब, सब कुछ करूँगा इसकी पढ़ाई के लिए। मैं तो चाहता हूँ मेरा सुनीत पढ़—लिख कर कुछ बने। हमारी तो जिंदगी कट गई, पर...। बंसी भावुकता में बोले ही जा रहा था कि उन्होंने बीच में टोका। बस-बस, बंसी महाराज जी। वह बात तो ठीक है, पर इसका खर्चा उठा पाओगे या नहीं, यह देखना तुम्हारा काम है। बाद में हमें दोष मत देना। वे थोड़ा ठहरे फिर बोले-अभी भी समय है। कहीं इसे काम-धंधे पर लगा दो। दो पैसे कमाएगा तो अच्छा रहेगा। नहीं मास्टर साहब, मैं इसे आगे पढ़ाना चाहता हूँ। मेहरबानी करके इसका दाखिला अपने स्कूल में कर लो।”² उपर्युक्त कथन से पता चलता है कि बंसी भले ही अशिक्षित हो लेकिन शिक्षा के बारे में जानता है। इसलिए बंसी अपने बेटे सुनीत को शिक्षित बनाना चाहता है।

समाज के मुख्यधारा के लोगों के मन में दलितों के प्रति हीन भावना है। जब मास्टर सुनीत से कहते हैं कि “लाओ, दिखाओ मार्कशीट। सुनीत ने तत्काल ही उन्हें मार्कशीट दिखा दी। साथ में एक अटेस्टेड प्रति भी दे दी। कुछ समय तक वही सज्जन सुनीत की अंक-तालिका देखते रहे। सुनीत के अपनी कक्षा में सबसे अधिक नम्बर थे। पाँच सौ में

¹ मुक्ति पर्व, मोहनदास नैमिशराय. पृष्ठ सं-103

² वही. पृष्ठ सं-57-58

साढ़े चार सौ नम्बर थे, वैसे भी प्रथम श्रेणी से अधिक नम्बर थे। वे आंखे फाड़-फाड़ कर बार-बार मार्कशीट पर विभिन्न खानों में हाथ से लिखे हुए नम्बर देख रहे थे। जैसे वे सोच रहे थे कि एक ढेढ़े चमार के बच्चे के इतने अधिक नम्बर कैसे आ गए। उनके चेहरों पर आने-जाने वाले भावों से लग रहा था कि उन्हें अंक-तालिका देख सुखद आश्चर्य नहीं दुखद आश्चर्य हुआ था।”¹ उपर्युक्त उद्धरण से पता चलता है कि मुख्यधारा के समाज के लोग दलितों का शिक्षित बनना सह नहीं पाते हैं।

मोहनदास नैमिशराय अपने ‘ज़ख्म हमारे’ उपन्यास में लिखते हैं कि “गाँव में स्कूल नहीं था, दलित समाज के लोग केवल मजदूरी करते अनेक बच्चे बड़े होते होते मजदूर बन जाते थे। वे डिप्टी कलक्टर नहीं बन पाते थे। आजादी के पचास वर्ष बीत जाने के बाद भी उनके व्यवसाय वैसे ही थे। गाँव में सामुदायिक भवन था जहाँ बैठकर सवर्ण दलितों के भाग्य का फैसला करते थे। दलित उनके निर्णय को केवल सुनते थे।”² उपर्युक्त कथन से पता चलता है कि भारत स्वतंत्र होकर पचास वर्ष होने के बाद भी तानारपुर गाँव के दलित शिक्षा से वंचित रह गये हैं। दलित लोग शिक्षा से दूर रहने के लिए आर्थिक स्थिति भी एक कारण है। गाँव में निर्णय लेने का अधिकार सिर्फ मुख्यधारा के लोगों का ही है। दलितों को नहीं हैं।

डॉ. अम्बेडकर पाँचवी कक्षा में पढ़ रहे थे। एक ब्राम्हण अध्यापक दलित बच्चों का पढ़ना सह नहीं पा रहा था। वे डॉ. अम्बेडकर से कक्षा में पूछते हैं कि “अरे भीमराव तू जाति से महार है। तू पढ़-लिखकर क्या करेगा ? उसके प्रश्न का जवाब देते हुए डॉ.अम्बेडकर कहते हैं कि-....गुरुजी, ये शब्द अब आपने दोबारा कहे तो याद रखिए, अच्छा नहीं होगा। मैं पढ़ लिख कर क्या करना चाहता हूँ, यह पूछना आपका काम नहीं है। इसलिए अब इसके आगे आप मुझे गलत शब्द से मत पुकारना, अन्यथा इसके परिणाम

¹ मुक्ति पर्व, मोहनदास नैमिशराय पृष्ठ सं-58

² ज़ख्म हमारे, मोहनदास नैमिशराय पृष्ठ सं-21

ठीक नहीं होगा”।¹ संकुचित मानसिकता के लोगों के लिए डॉ.अम्बेडकर का जवाब आचरणीय है।

अम्बेडकर शिक्षा अर्जित करते समय एक योजना के साथ दलित समाज को सुधारने के लिए अपने आपको तैयार कर रहे थे। जब बड़ौदा महाराज उच्च शिक्षा के लिए अम्बेडकर से पूछते हैं आप किस विषय पर अध्ययन करेंगे तब अम्बेडकर कहते हैं कि “मैं समाजशास्त्र, अर्थशास्त्र और विशेष रूप से पब्लिक फायनान्स की पढ़ाई करना चाहता हूँ। महाराजा का अगला सवाल था। इस विषय की पढ़ाई करके तुम आगे क्या करना चाहते हो ? अम्बेडकर ने उत्तर दिया, इस विषय के अध्ययन से मुझे इस प्रकार के रास्ते दिखाई देंगे, जिससे कि मैं अपने समाज की पतनावस्था को सुधार सकूँ।”² उपर्युक्त उद्धरण से पता चलता है कि अपने समाज के लिए अम्बेडकर कितना प्रतिबद्ध थे। अम्बेडकर जैसे कहते थे वैसे ही जीवनभर समाज सुधार के लिए समर्पित रहे।

मोहनदास नैमिशराय के ‘मुक्ति पर्व’ उपन्यास में दलित के प्रति सवर्ण मानसिकता का परिचय देते हैं। सुनीत प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण हुआ था। इसलिए सुनीत ने अध्यापक पाण्डेय को धन्यवाद दिया था। पाण्डेय सुनीत का शिक्षित होना सह नहीं पाता और सुनीत से कहता है कि “अभी तो शुरुआत है बच्चू, आगे-आगे देखना। सुनीत को महसूस हुआ कि पाण्डेय को उसका प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण होना जैसे अच्छा नहीं लगा था। उनके चेहरे पर खुशी के चिह्न नहीं थे बल्कि ईर्ष्या की लकीरें थीं। और चेहरे पर अजीब-सा खिंचाव। पहले पीरियड में हिन्दी वही पढ़ाते थे। हिन्दी में सुनीत के सबसे कम अंक आए थे। हालाँकि उस विषय में उसने बहुत अधिक मेहनत की थी। अधिक मेहनत करने का एक कारण और भी था। वह यह कि साधारण तरीके से अगर वह पढ़ाई करता तो हो सकता था

¹ महानायक बाबा साहेब डॉ.अम्बेडकर ,मोहनदास नैमिशराय .पृष्ठ .सं.-18

² वही, पृष्ठ .सं.-19

कि पाण्डे उसे हिन्दी में फेल ही कर देता। इसलिए वह सावधान था। हिन्दी में अधिक मेहनत करने की सीख उसे स्वयं उसके पिता ने दी थी।”¹ उपर्युक्त उद्धरण से मालूम होता है कि एक दलित विद्यार्थी अच्छे अंक पाने पर सवर्ण अध्यापक पाण्डेय सह नहीं पाते हैं। वह उसके इस कामयाबी से असंतुष्ट नजर आते हैं।

मोहनदास नैमिशराय के ‘मुक्ति पर्व’ उपन्यास में सुनीत से उनके पिता बंसी कहते हैं कि “बेटे, वह तुम्हारा शिक्षक नहीं दुश्मन है और दुश्मन से हमेशा सावधान रहना चाहिए। दुश्मन चाहे आम आदमी हो या खास आदमी। सवर्ण कभी भी नहीं चाहते कि हमारे बच्चे पढ़े-लिखें। क्योंकि अगर वे पढ़-लिख गए तो उन्हें गुलामों की फौज कहाँ से मिलेगी। उनकी सेवा-टहल फिर कौन करेगा। उनके जानवरों को चारा कौन खिलाएगा, पानी कौन पिलाएगा। उनके बदन की मालिश कौन करेगा। उनकी मक्कारी से हमें बचकर रहना है, पर उनमें से ही कुछ की अच्छी बातों से कुछ सीखना भी है। उनमें सभी बुरे नहीं, अच्छे भी हैं। हमारे हाथ की अंगुलियाँ ही देखो। सभी तो बराबर नहीं। ऐसे ही इंसानों की भी बात है।”² उपर्युक्त कथन से पता चलता है कि सुनीत को उसके पिता अध्यापक पाण्डेय से सतर्क रहने के लिए कहता है। और सवर्ण लोग कभी नहीं चाहते दलित शिक्षित बनें। अगर सवर्ण समाज के दलित लोग शिक्षित होना चाहते हैं तो आज भी समाज से उपेक्षित क्यों हैं? बंसी ने ठीक लिखा है कि दलित लोग शिक्षित हुए तो सवर्ण लोगों का गुलामी का काम कौन करेगा? सदियों से चली आरही शोषणकारी व्यवस्था कैसे समाप्त हो पायेगी।

सुशीला टाकभौरे का ‘नीला आकाश’ उपन्यास में भीकूजी और चन्दरी अशिक्षा के कारण बचपन से ही धर्म और अंधविश्वास पर विश्वास करने लगे। इस धर्मिक विश्वास के फलस्वरूप बेटे का नाम रामकिसन रख दिया। “भीकूजी और चन्दरी अनपढ़ अंगूठा छाप हैं। उनके काम और व्यवसाय भी ऐसे हैं, जिसमें अक्षर ज्ञान की कोई जरूरत नहीं। यदि

¹ मुक्ति पर्व, मोहनदास नैमिशराय, पृष्ठ सं-77

² वही, पृष्ठ सं-77-78

उनके यही व्यवसाय पीढ़ी दर-पीढ़ी चलाये जाए, तो आगे भी कभी शिक्षा की जरूरत न पड़े। शायद इसीलिए हिन्दू धर्मशास्त्रों में ऐसे विधान बनाये गये हैं कि— शुद्र अछूत अपने पैतृक रोजगार ही अपनाना चाहिए और इन शूद्र अछूतों को शिक्षा से दूर रखा जाना चाहिए।”¹ उपर्युक्त कथन से पता चलता है कि दलितों का काम सिर्फ पीढ़ी-दर-पीढ़ी गुलामी करते रहना है। सदियों से चलती आ रही पहले जाति व्यवस्था को मनु ने और अधिक समृद्ध बनाया और शिक्षा से वंचित कर दिया।

सुशीला टाकभौरै ने अपने ‘नीला आकाश’ उपन्यास में दिखाया है कि सवर्ण समाज अपने स्वार्थ मनोरंजन के लिए दलितों को ढोल बाजने का काम निर्धारित करते हैं। आज भी गाँवों में यह परंपरा बरकरार है। भीकूजी और चन्दरी भले ही अनपढ़ हो लेकिन शिक्षा के महत्व को जानते थे। “भीकूजी के खानदान में कई पीढ़ियों से बाजा बजाने का और सूप-डलिया बनाने का काम चल रहा है। शिक्षा न मिलने के कारण, वे अपने यही रोजगार अपनाने के लिए मजबूर हो जाते हैं। भीकूजी के मन में बचपन से ही पढ़ने की बहुत लगन थी, मगर छुआछूत के कारण स्कूल में नहीं पढ़ सके थे। अभी भी, कभी रात में, लालटेन के प्रकाश में भीकूजी प्राइमरी स्कूल की पहली, दूसरी कक्षा की किताब को कभी सीधा और उल्टा पकड़कर चन्दरी वर्णमाला के अक्षर और शब्द पहचानने की कोशिश करते हैं। यह देखकर चन्दरी उन पर हँसती है। कहती है- भीकूजी, अब इस उम्र में पढ़ाई करके, क्या तुम्हें वकील बालस्टर बनना है ? बेचारे लोग, नहीं जानते, पढ़ाई क्या होती, कैसी होती है?”² उपर्युक्त उद्धरण से पता चलता है कि भीकूजी अनपढ़ अंगूठा छाप है। लेकिन घेरा बजाने में बहुत प्रसिद्ध थे। भीकूजी आसपास के छोटे-छोटे गाँवों में घेरा बजाने जाते थे।

¹ नीला आकाश, सुशीला टाकभौरै पृष्ठ सं-21

² वही, पृष्ठ सं-21

2.3.4 शिक्षा में भेद-भाव

मोहनदास नैमिशराय के 'मुक्ति पर्व' उपन्यास के माध्यम से यह बताते हैं कि भारतीय समाज व्यवस्था में जाति-व्यवस्था एक कड़वा सच है। इस जाति व्यवस्था से दलितों को शिक्षा ग्रहण करने के लिए कितना संघर्ष करना पड़ता है। “दलित विद्यार्थी उन स्कूलों में पढ़ सकते थे। बीच में एक रेखा थी। उस रेखा के आरपार जातियों की घनी बसापट थी। जहाँ लोग रहते थे, लेकिन अपनी-अपनी जातियों को सीने से चिपकाए। उनके अपने-अपने द्वंद्व थे जिनसे वे जूझते होते”।¹ उपर्युक्त कथन से पता चलता है कि स्कूल में छात्र-छात्राओं को जाति के नाम से अनेक हिस्सों में बांटा हुआ है। बांटना सिर्फ स्कूल में ही नहीं बल्कि भारतीय गाँव में भी मिलता है। सामाजिक संरचना को देखने पर अवगत होता है कि आज भी गाँव के बाहर उनके घर रहते हैं। यानी सवर्ण समाज से दलितों के घर दूर रहते हैं। जिन्हें बस्ती या वेलिवाड़ा के नाम से भी जाना जाता है।

मोहनदास नैमिशराय के 'मुक्ति पर्व' उपन्यास में कहते हैं कि “समाज में उन कमरों की गिनती ढेढ़ चमारों के रूप में होती थी। अक्षर ज्ञान तक से उन्हें महारूप रखा गया था। पर कुछ ऐसे लोगों ने अक्षर ज्ञान से रिश्ता बना लिया था जिनकी शिक्षा के प्रति ललक बढ़ी थी। उनके पाँव स्कूल की दिशा में दौड़ते थे और आँखें किताबों की तलाश करती थीं।”² ‘मुक्ति पर्व’ उपन्यास में बंसी बेटे का नाम किसी पण्डित के द्वारा नहीं रखवाते हैं। खुद ही बेटे का सुनीत नामकरण कर देता है। इस संदर्भ में सुनीत की दादी कहती हैं कि “चल बेटे, तेरे पिता ने इतना अच्छा नाम रख दिया, अब तू भी पढ़-लिख कर अच्छा बनना”। उपर्युक्त उद्धरण से पता चलता है कि बंसी ने ब्राह्मणवादी परंपरा को नकारते हुए एक नयी दलित संस्कृति को जन्म दिया था। ‘मुक्ति पर्व’ उपन्यास में बंसी अपने बेटे सुनीत की पढ़ाई के बारे में खुश था। इसलिए कि दलित बस्ती में पढ़ाने के लिए सवर्ण अध्यापक कोई तैयार

¹ मुक्ति पर्व, मोहनदास नैमिशराय, पृष्ठ सं-8

² वही, पृष्ठ सं-18

नहीं थे। सुनीत पढ़ाने के लिए तैयार हो जाता है। “छुट्टियों में सुनीत ने अपने जिम्मे एक काम ले लिया था। वह था बच्चों को पढ़ाने का। बस्ती के ऐसे बच्चे जो किसी मजबूरी से स्कूल नहीं जा पाते थे, उन्हें वह पढ़ाने लगा था। बच्चे भी खुश और उनके माँ-बाप भी खुश। चार-पाँच घंटे उन्हें पढ़ाने में लग जाते। दो-तीन घंटे वह स्वयं भी पढ़ता। बंसी अपने बेटे के इस कार्य से बहुत खुश था। उसने कहा भी था- बेटा विद्या तो ज्योत समान है। एक ज्योत से हजारों ज्योत जल सकती हैं।”¹ शिक्षा कोई नीजी संपत्ति नहीं जिसे अपने तक सीमित कर सुरक्षित कर लिया जाय। वह सार्वजनिक है जिसकी व्यापकता है उससे सारे समाज प्रकाशमय हो जाते हैं।

2.3.5 शिक्षा के प्रति श्रद्धा

मोहनदास नैमिशराय ने ‘मुक्ति पर्व’ उपन्यास में लिखा है कि “इस पंचायत में दो मुख्य फैसले हुए। पहला तो यह कि बाबा साहेब डॉ. अम्बेडकर के नाम पर बस्ती में पुस्तकालय शुरू किया जाए। दूसरा यह है कि कलालखाने से जुड़ी जगह को कब्जे में लिया जाए।”² उपर्युक्त उद्धरण से पता चलता है कि सुनीत बस्ती में रहने वालों को साक्षर बनाना चाहती है। उस प्रेरणा से बस्ती के रहने वाले सभी लोग चाहते हैं कि बस्ती में पुस्तकालय हो। दूसरी बात स्कूल की ज़मीन हो।

रायबहादुर लाला जयनारायण द्वारा नागपुर में बाबा साहेब डॉ. आम्बेडकर को सम्मान स्वागत समारोह की पार्टी आयोजित की गई। उसी में जाने के लिए बाबा साहेब कुछ कार्यकर्ताओं के साथ मांऊट होटल से निकलते समय वहाँ पर बाबा साहेब से मिलने के लिए चार-पाँच गरीब महिलाएँ प्रतीक्षा में खड़ी थीं। उन महिलाओं से मिलने के बाद बाबा साहेब कहते हैं कि “माताओं, मैं छोटा था तभी मेरी माँ की मृत्यु हो गई थी। वह कैसी थी

¹ मुक्ति पर्व, मोहनदास नैमिशराय, पृष्ठ सं-56

² वही, पृष्ठ सं-76

यह भी मुझे याद नहीं है। लेकिन आपकी तरफ देखकर मुझे लगता है कि मेरी माँ आपकी जैसी ही दयालु, ममतामयी, स्नेहमूर्ति होगी। मैं आपको आश्वासन देता हूँ कि जैसा मैं पढ़-लिखकर बड़ा हुआ हूँ, वैसे ही मैं आपके बच्चों को पढ़ाने की सलाह दूँगा, मैं उनके उत्थान तथा प्रगति के लिए भरसक प्रयास करूँगा तथा आपको सुख एवं सम्मानपूर्वक जीने का अधिकार दिलाऊँगा। अगर मैं ऐसा नहीं कर सका, तो मैं स्वयं अपने आपको बन्दूक की गोली से खत्म कर लूँगा।”¹ उपर्युक्त कथन से पता चलता है कि बाबा साहेब डॉ. अम्बेडकर माँ और शिक्षा के प्रति कितने प्रतिबद्ध थे।

सच्चिदानन्द शिक्षित था। वह शहर जाकर कमाने की बात करने पर, उनकी माँ सुमारी देवी भविष्य के बारे कहती हैं कि “बेटा तू तो पढ़ा लिखा ही है तेरे बाल-बच्चे भी अच्छी पढ़ाई करने लगे। डॉक्टर, इन्जीनियर बनकर अपने परिवार कुटुम्ब का नाम रोशन करोगे। मेरी भी ख्वाहिश है बेटा कि मेरे पोती पोता शहर जाकर अच्छी पढ़ाई लिखाई करें। परिवार गाँव देश का नाम रोशन करें।”² उपर्युक्त उद्धरण से पता चलता है कि अशिक्षित होने पर भी शिक्षा का महत्व जानकर आने वाली पीढ़ी के लिए भविष्य की आशा करते हैं कि वे पढ़-लिखकर अपने जीवन के अंधकार को दूर कर सकें।

देश आजाद होने के बाद जनमानस को बदलने का सबसे बड़ा औजार शिक्षा हो सकती थी, उसी को सत्ताधारियों ने नजरअंदाज कर दिया। हमारे संविधान में समानता भाईचारे के अनुरूप किए गए प्रावधान भी सत्ताधारियों की इच्छा शक्ति की कमी के कारण लागू नहीं हो पाए। इसलिए राजनैतिक परिवर्तन में सफल होने के बावजूद भी सामाजिक परिवर्तन की दिशा में हमलोग न सिर्फ असफल हुए बल्कि और अधिक कट्टर, कठमुल्ला और संकीर्ण हो गए। इसका फल हुआ पंजाब का आतंकवाद, बाबरी मस्जिद प्रकरण, बंबई में डॉ. अम्बेडकर की मूर्ति का अपमान और दलितों की हत्या एवं जगह-जगह बढ़

¹ महानायक बाबा साहेब डॉ. अम्बेडकर, मोहनदास नैमिशराय, पृष्ठ.स.208

² अमानत-नन्दलालराम भारती-पृष्ठ,सं.-64

रहे जाति आधारित नरसंहार और अब दलितों की अस्मिता की माँग पर जहानाबाद जैसा नरमेधा।

2.3.6 शिक्षक का योगदान

बाबासाहेब अम्बेडकर जी को स्कूल में पढ़ते समय कृष्णा जी केशव अम्बेडकर का महत्वपूर्ण योगदान रहा। अम्बेडकर शिक्षक के बारे में कहते हैं कि “वे हर दिन छुट्टी में मुझे कभी न भूलते हुए बुलाते थे और भोजन में से रोटी-सब्जी खाने के लिए देते थे। लेकिन मेरा शरीर उनसे स्पर्श न हो जाए इस बात का ध्यान वे भी रखते थे। वे अपनी रोटी थोड़ा ऊपर से मेरे हाथों पर डालते थे। मुझे यह कहने में बड़ा गर्व होता है कि प्रेम से दी हुई उस रोटी-सब्जी की मधुरता कुछ और ही थी। जब मुझे इस बात की याद आती है तो मेरी आँखों से आँसू आ जाते हैं। सचमुच अम्बेडकर मास्टर का मुझपर बड़ा प्रेम था। एक दिन उन्होंने ही मुझे कहा था कि तेरा यह अम्बावडेकर सरनेम बेढंगा सा लगता है। उससे तो मेरा यह अम्बेडकर सरनेम अच्छा है, आगे इसी नाम को लगा और उन्होंने कैटलॉग में उसी प्रकार का नाम लिख भी डाला..।”¹ सवर्ण अध्यापक होने पर भी अम्बेडकर के प्रति मन में मानवीय और प्रेम की भावना है लेकिन समाज में बनी हुई छुआछूत की मानसिक भावना किसी-न-किसी रूप में दिखाई देती है।

2.3.7 गुरु शिष्य का संबंध

मोहनदास नैमिशराय के ‘मुक्ति पर्व’ उपन्यास के द्वारा रुढ़िवादी ब्राह्मणीय मानसिकता वाला अध्यापकों का चित्रण किया है जब सवर्ण अध्यापक पाण्डे द्वारा सुनीत को दलित जाति से होने के कारण कम अंक दिये जाते हैं। लेकिन स्कूल में सारे अध्यापक पाण्डेय जैसे व्यवहार नहीं करते थे। “नए स्कूल में सुनीत ने पूरा एक वर्ष गुजारा था। उस

39 महानायक बाबा साहेब डॉ. अम्बेडकर, मोहनदास नैमिशराय पृष्ठ. सं-14

वर्ष का एक-एक दिन उसे अभी भी याद है। पाण्डे की तयौरी तो उसे देखते ही चढ़ जाती थी। जैसे वह उसका दुश्मन हो। सुनीत जितना अच्छा शिष्य बनने की कोशिश करता पाण्डे उतना ही खराब गुरु बनने की सोच में प्रदत्त रहता। सुनीत उसे फूटी आँख भी न सुहाता था। फिर भी सुनीत अपने कक्षा-अध्यापक की इज्जत करता था। वह नहीं चाहता था कि उससे कोई गलती हो और वह अपनी ही नजरों से गिर जाए। पाण्डे जी जैसे भी थे, उसके गुरु थे।¹ ‘मुक्ति पर्व’ उपन्यास में पाण्डेय जैसे शिक्षको में भी परिवर्तन आना खुशी की बात थी। बच्चों के साथ हेडमास्टर का व्यवहार स्नेह पूर्वक था। हेडमास्टर बच्चों को पढ़ाने के लिए प्रोत्साहित करते थे। “पहले दिन हेड मास्टर ने छठी कक्षा में जिनकी प्रथम श्रेणी आई थी, उन्हें अपने कमरे में चाय पर बुलाया था। केवल चार विद्यार्थी आ पाए थे, जिनमें सुमित्रा भी थी। पाण्डे भी साथ में थे। हेडमास्टर और कक्षा अध्यापक के साथ चाय पीने में हर विद्यार्थी को गर्व होता। उसे भी आज के दिन फक्र था। पाण्डे का व्यवहार आज अन्य दिनों की अपेक्षा अच्छा था।”² बंसी ने अपने बेटे सुनीत को एकलव्य की कहानी की छोटी पुस्तक दी थी ताकि उसे पढ़कर अपने इतिहास को जान सके। द्रोणाचार्य ने एकलव्य से अँगूठा क्या इसलिए माँगा कि धनुषविद्या में वह और भी प्रवीण न हो जाए। बंसी ने अध्यापक पाण्डेय को द्रोणाचार्य से तुलना करके सुनीत को सक्रिय रहने के लिए कहते हैं। बंसी सुनीत से कहता है कि “शिक्षा का खाली अर्थ किताबी ज्ञान तो नहीं। अपने इतिहास के बारे में जानना-समझना भी शिक्षा का उद्देश्य होना चाहिए।”³ यानी दलित समाज के लोग अपने इतिहास को जानकर इन द्रोणाचार्यों से सतर्क रहना चाहिए।

‘मुक्ति पर्व’ उपन्यास में सुनीत अध्यापक का प्रशिक्षण होने के बाद दलित बस्ती में पढ़ाना शुरू किया तो दलित बस्ती के अलावाँ दूसरी बस्ती के बच्चे भी स्कूल आने लगे

¹ मुक्ति पर्व, मोहनदास नैमिशराय, पृष्ठ सं-82

² वही, पृष्ठ सं-82

³ मुक्ति पर्व, मोहनदास नैमिशराय, पृष्ठ सं-85

थे। उस बस्ती में पहली पीढ़ी शिक्षित होने लगे थे। “बस्ती के स्कूल में अब बच्चों की संख्या बढ़ने लगी थी। उनके भीतर अब तक शिक्षा न पाने की वेदना तो थी साथ ही आगे पढ़ने की लालसा भी थी। माँ बाप अपने-अपने बच्चों को अँगूठा छाप नहीं बनाना चाहते थे। उनकी तो अपनी ही उम्र अँगूठा लगाते-लगाते बीती थी। अँगूठा छाप होने की त्रासदी को वे भली-भाँति जानते-पहचानते थे। उन्होंने उस त्रासदी को भोगा भी था। बंधक जैसा जीवन जीने को मजबूर हुए थे वे। नई पीढ़ी को वे गुलाम के रूप में नहीं देखना चाहते थे। शिक्षा के प्रति मोह जागा था उनके भीतर।”¹ दलित बस्ती में हर घर में, हर एक माता-पिता सुनीत की पढ़ाई को ही आदर्श के रूप में नाम लेते हैं। “देखो सुनीत भी तो है। शुरु से फस्ट डिवीजन ला रहा है। वज़ीफा भी मिलने लगा है उसे। माँ-बाप पर बोझ भी नहीं है और पढ़ भी रहा है।”² शिक्षा किसी की बपौती नहीं है इसका अच्छा उदाहरण उपर्युक्त उदाहरण से स्पष्ट हो जाता है। ‘मुक्ति पर्व’ उपन्यास में नगरपालिका में कार्यालय अधीक्षक का बेटा अजय शर्मा जाति से ब्राह्मण था। वे अपने दोस्तों के साथ व्यंग्य रूप में कहता है कि “अरे भईया, अब तो तेली-तमोली और ढेढ़े-चमार के बच्चे भी पढ़ने लगे हैं। सुनकर उसके आसपास खड़े लड़के ठट्ठा मारकर हँस पड़े थे। उनमें से एक बोला भी था- आगे-आगे देखना क्या होगा। अभी तो शुरुआत ही है।”³ जब-जब दलित समाज ने पढ़ने का अवसर पाया तब-तब ब्राह्मणवादी मानसिकता ने उन्हें रोकने का प्रयास किया।

2.3.8 शिक्षा से परिवर्तन

मोहनदास नैमिशराय के ‘मुक्ति पर्व’ उपन्यास में लिखा है कि ब्राह्मण, दलितों को सदियों से शिक्षा से दूर किये थे। आज युवक सुनीत पढ़ाने के योग्य बन गया था। “आज का दिन सचमुच उनके लिए महत्वपूर्ण था। विशेष रूप में सुनीत के लिए। आज के दिन

¹ मुक्ति पर्व, मोहनदास नैमिशराय, पृष्ठ सं-92

² वही, पृष्ठ सं-92

³ वही, पृष्ठ सं-95

सुनीत को शिक्षक बनने का प्रमाण-पत्र मिला था। कॉलेज के प्रांगण में अच्छी खासी भीड़ थी। आजादी के बाद की नई पीढ़ी को शिक्षक बनाने का यह ऐतिहासिक दिन था। सुनीत और सुमित्रा समय पर कॉलेज गए थे। वे दिन बीत गए जब पढ़ना-पढ़ाना ब्राह्मणों का काम था। अब तुम भी पढ़ा सकते हो सुनीता।”¹ उपर्युक्त कथन से पता चलता है कि समाज में धीरे-धीरे परिवर्तन हो रहा है। आज पढ़ना-पढ़ाना किसी विशेष वर्ग के लिए नहीं रह गया। वह कोई भी योग्य व्यक्ति शिक्षक बन सकता है।

रूपनारायण सोनकर के ‘सूअरदान’ उपन्यास में सन्तू और मैकी सिंहासनखेड़ा गाँव के रहने वाले हैं। सन्तू कृषि फार्म में मजदूर का काम करता है। सन्तू का बेटा रतनलाल डिप्टी कलक्टर बन जाता है। रतनलाल डिप्टी कलक्टर बनने के बाद पत्नी अनुसूईया और बेटी जानकी को छोड़कर दूसरी शादी संता सिंह आई.ए.एस की बेटी रश्मि सिंह से कर लेता है। रतनलाल की पहली पत्नी रहने पर भी दूसरी शादी किया था इस वजह से रतनलाल को 5 साल की सजा और डिप्टी कलेक्टर पद से निकाल दिया जाता है। रतनलाल जेल से घर आने के बाद दूसरी पत्नी रश्मि सिंह के साथ मिलकर कोचिंग इन्स्टीट्यूट के माध्यम से समाज सेवा करने लगते हैं। “समाज में शिक्षा व नौकरियों का फैलाव इसी तरह होता है। कोई न कोई शिक्षाविद, प्रशासनिक अधिकारी, समाज सुधारक उसका सूत्रधार होता है। शिक्षा एक ऐसी चीज होती है जो मनुष्य के अन्दर पनप रही सामाजिक बुराइयों को एक डॉक्टर की तरह नेस्तनाबूद कर देती है। रतनलाल एक शिक्षाविद बनकर उभरा। उसने सिंहासनखेड़ा गाँव का शिक्षा के क्षेत्र में नक्शा ही बदल दिया।”² शिक्षा के माध्यम से मनुष्य को सक्रिय बनाने के साथ-साथ उसे गौरवपूर्ण स्थान दिलाता है समाज में।

¹ मुक्ति पर्व, मोहनदास नैमिशराय, पृष्ठ सं-134

² सूअरदान, रूपनारायण सोनकर, पृष्ठ सं-128

‘मुक्ति पर्व’ उपन्यास में सुनीत भूरी के पिता करतारा को शिक्षा का महत्व समझाने से भूरी को स्कूल भेजना शुरू किये थे। भूरी स्कूल जाना शुरू की तब से काफी बदलाव आ गया था। “शिक्षा ने भूरी के भीतर प्रवेश किया तो न केवल उसके भीतर ही परिवर्तन हुए बल्कि घर में भी बदलाव आ गए”।¹ उपर्युक्त उद्धरण से मालूम होता है कि शिक्षा से सिर्फ भूरी ही नहीं बदलती उनके साथ परिवार में भी बदलाव आ जाता है।

2.4. समाज में स्त्री की स्थिति

प्रत्येक समाज में नारी के प्रति अपनाये जाने वाले सामाजिक दृष्टिकोण का समाज की ही स्वयं की दृष्टि से बड़ा महत्व होता है। यह बात हमसे छिपी हुई नहीं है कि उसके प्रति हर समाज में एक अलग ही दृष्टिकोण पाया जाता है और दुनिया के अन्य समाजों की ही भाँति हिन्दू समाज में भी नारी के प्रति एक विशेष ही प्रकार का दृष्टिकोण पाया जाता है। प्राचीन समय में नारी जाति के प्रति हिन्दू समाज में कैसे दृष्टिकोण को अपनाया जाता रहा है, क्योंकि उसको समझ लेने पर ही हमारे लिए यह सम्भव हो सकेगा कि हम हिन्दू समाज में नारी की स्थिति का एक पूरा और सही दृष्टिकोण देख सकें। सुशीला टाकभौर ने अपने ‘नीला आकाश’ उपन्यास में नीलिमा के मार्गदर्शन में चन्दरी और बुधिया ने अलग महिला मण्डल संस्था बना ली है। इस संस्था से सभी महिलाओं को जागृत करके एक बड़े संगठन के रूप में समाज आन्दोलन से उन्हें जोड़ रही हैं। जब महिलाओं को समझाने के लिए चन्दरी और बुधिया को लगातार बोलना पड़ता है। वे कहती हैं कि “चन्दरी कहती- अरी बहन, बेटियों, अपने घर से निकालो, समाज से जुड़ो और समाज को जोड़ो। बुधिया कहती- सिंगार-पटार में बहुत समय गंवा दिया तुमने, अपने मर्दों की लाड़-प्यार की बातें भी खूब सुन ली, बाल बच्चों को भी पाल पोस के बड़ा कर दिया। अब आईना देखने के बदले समाज के काम से निकलो। खुद को आईने में देखने के बदले अपने आप को

¹ मुक्ति पर्व, मोहनदास नैमिशराय, पृष्ठ सं-113

बदलो।”¹ उपर्युक्त उद्धरण से पता चलता है कि समाज में आज महिलाओं की सोच बदल रही है। उनमें भी दलित महिलाएँ अपने आपको सिर्फ घर-परिवार तक ही सीमित न करके समाज से जुड़ना चाहती हैं। सामाजिक बदलाव में वह भी भागीदार बनना चाहती हैं।

सुशीला टाकभौरे के ‘नीला आकाश’ उपन्यास में समाज जागृति कार्यक्रम में बुधिया कहती है कि “परिवार नियोजन की जिम्मेदारी भी महिलाओं ने उठा रखी है। एक या दो बच्चों के बाद नसबन्दी कराना ही है। “छोटा परिवार सुखी परिवार” – प्रत्येक घर की दीवार पर यह छपा हुआ है। फेमिली प्लानिंग के लिए बुधिया समझाती है- शेरनी को एक औलाद होती है, जो पूरे जंगल पर राज करती है। सुअरी को छह बच्चे हों, या बीस-वे क्या करते हैं ? अरी बहन, बेटियों, शेरनी बनों।”² उपर्युक्त उद्धरण से पता चलता है कि चन्दरी और बुधिया समाज में महिलाओं को जागरूक करती हैं। बड़े परिवार से मतलब नहीं छोटे परिवार से ही खुशी मिलती है। इसलिए सुअरी और शेरनी की तुलना करके समझाती है। इस उपन्यास की बुधिया कहती है कि “दारुबन्दी और नशाबन्दी का मोर्चा भी महिलाओं ने सम्भाला। मजाल है, कोई पुरुष शराब पी सके या घर में धूम कर सके। वे तुरन्त उसे पुलिस थाने में गिरफ्तार करवाने की धमकी देतीं। कोई पति यदि अपनी पत्नी को मारने के लिए हाथ उठाये, तो सबल निडर पत्नी कड़ककर कहती- खबरदार, जो मेरे ऊपर हाथ उठाया। अब मैं ऐसी कमजोर नहीं, जो तुम्हारी मार खाकर चुप रह जाऊँ। तुम एक मारोगे, तो मैं दो लगाऊँगी।”³ उपर्युक्त उद्धरण से पता चलता है कि बुधिया पुरुष गुलामी से महिलाओं को मुक्ति दिलाना चाहती है। अपने समाज के ऐसे पुरुषों को मुहतोड़ जवाब देने के लिए महिलाओं को तैयार करती नजर आती है।

¹ नीला आकाश, सुशीला टाकभौरे, पृष्ठ सं-98

² वही, पृष्ठ सं-98

³ नीला आकाश, सुशीला टाकभौरे, पृष्ठ सं-98

प्रियदर्शी के ‘कमलकान्त, आई.ए.एस’ उपन्यास में फुलिया का बड़ा बेटा चिरौंजी और छोटा बेटा सथरा में रहते हैं। राजपुर बड़ा गाँव था। उस गाँव में बाजार बहुत प्रसिद्ध था। केदार सिंह बाजार में तरबूज बेचने के लिए आता है। उस समय फुलिया से मिलने के लिए कहता है। केदार सिंह कहता है कि “फुलिया को देखते ही वह प्रसन्न हो गया। उसे उम्मीद न थी कि फुलिया सचमुच आयेगी। चमार औरतों का क्या भरोसा, कोई और मर्द मिल गया तो उसी की हो गयीं।”¹ उपर्युक्त उद्धरण से हम समझ सकते हैं कि दलित स्त्री के प्रति सवर्ण केदार सिंह की मानसिकता कैसी है। ऐसी मानसिकता के लोग जाति के आधार पर स्त्री के चरित्र को आँकने का काम करते हैं।

ठाकुर जगत सिंह के घर में मुतिया हर दिन काम करने जाती है। मुतिया का स्वास्थ्य ठीक नहीं है तो अपनी बेटी को ठाकुर जगत सिंह के घर में काम करने भेजती है तो, ठाकुर उस दस वर्ष की सुंदरी के साथ दुरव्यवहार करता है। जब मुतिया को पता चलता है तो वह ठाकुर के घर जाकर कहती है कि “निकल घर से बाहर। हरामी का.....आज तेरे मुंह में जूती नहीं घुसेड़ दी तो मैं मुतिया नहीं”।² उपर्युक्त कथन से पता चलता है कि दलित स्त्रियाँ अपने ऊपर होने वाले अत्याचारों का विरोध करती हैं। और वह उन अत्याचारी ठाकुर को सबक सिखाने का जिम्मा उठाते हैं।

लेखक इन अमानवीय एवं असामाजिक व्यवहारों का प्रतिरोध करने का कर्तव्य स्वयं दलित स्त्री के ऊपर रखता है। वह उन्हें इन सड़ी-गली रुढ़ियों से मुक्त होकर इन जंजीरों को तोड़ने के लिए प्रेरित करता है। वह कहता है कि “हजारों वर्षों से सामाजिक बंधनों से छटपटाती संपूर्ण औरत जाति की नियती ही ऐसी है। पुरुष समाज द्वारा थोपी मानसिकता की है। सदियों से एक जैसी नियति को भोग रही महिला समाज के भीतर यह सवाल उठाना जरूरी भी है। पुरुष क्यूँ चाहेगा कि कल गुलाम औरत आज आजाद बन कर

¹ कमलकान्त, आई.ए.एस, प्रियदर्शी, पृष्ठ-सं.29

² भगोड़ पुजारिन-डॉ.रामस्वरूप संखवार, पृष्ठ. सं.-46

जिए? पर नारी समाज को ही इन सबमें परिवर्तन लाना होगा। पुरुष की बनाई सड़ी-गली मान्यताओं को बदलना होगा।”¹

2.4.1 स्त्री शिक्षा

मोहनदास नैमिशराय के ‘मुक्ति पर्व’ उपन्यास में सुनीत से करतारा पूछता है कि “इसै पढ़ू बनाकर क्या करेंगे बेटा ? सुनकर जवाब में कहा सुनीत ने – चाचा जी, लड़की हो या लड़की आजकल तो दोनों बराबर होते हैं”² करतारा की बेटी भूरी को लड़की होने के नाते स्कूल जाने को मना करता है। सुनीत ने करतारा को लड़का-लड़की भेद-भाव नहीं करना समझाकर भूरी को स्कूल भेजने के लिए कहता है। “भूरी को सामने देख सुनीत ने उससे सवाल किया- अच्छा भूरी, एक बात बतला। हूँ सुनकर इतना ही होंठों से निकला उसके। तू पढ़ना चाहती है? पढ़ने की बात सुनकर खुशी से बोली थी वह- हाँ उसकी हाँ के बाद सुनीत ने जैसे अपना निर्णय सुनाया था- अब भूरी कल से पढ़ने जाएगी।”³ उपर्युक्त कथन से मालूम होता है कि सुनीत भूरी के पिता करतार को शिक्षा के बारे में समझाकर भूरी को स्कूल भेजने के लिए कहता है। शिक्षा ग्रहण करने के लिए लिंग आधारित भेद-भाव नहीं किया जा सकता है। शिक्षित होना सबका अधिकार है।

2.4.2 सहासी स्त्री

मोहनदास नैमिशराय ने ‘वीरांगना झलकारी बाई’ उपन्यास में झलकारी बाई को बचपन से ही वीर और साहसी स्वभाव वाली चरित्र के रूप में दिखाते हैं। “दलित समाज के लोग साहसी थे और बहादुर भी, लेकिन उनकी अपनी पहचान बने, ऐसा सवर्ण समाज नहीं चाहता था। उत्तरी भारत में उनके लिए पग-पग पर अड़चनें थीं। वर्ण-व्यवस्था की

¹ क्या मुझे खरीदोगे, मोहनदास नैमिशराय पृष्ठ सं-24

² मुक्ति पर्व, मोहनदास नैमिशराय, पृष्ठ सं-101

³ वही, पृष्ठ सं-102

दस्तक थी। जिसने भारतीय समाज को अनेक धाराओं में बाँट रखा था। रुचि, विचार तथा परम्पराओं के साथ रुढ़ियों की दलदल में वही विराट संस्कृति वाला समाज धँसा था। वे परम्पराएँ एक जाति को ऊर्जा देती थीं तो दूसरी की अस्मिता पर वार करती थीं। कैसी थी धर्म की मीमांसा और कैसे थे धर्म की मीमांसा करने वाले लोग”¹ उपर्युक्त उद्धरण से मालूम होता है कि दलितों में सहासी-स्त्री का नाम सुनते ही हमें तुरंत याद आती है वीरांगना झलकारी बाई। वह उनकी वीरता की बहुत सी कहानियाँ हैं, जैसे एक बार वह अकेली जंगल में चली जाती है और वह उसके सामने बाघ आ जाने पर बिना डरे उस बाघ को मार गिराती है। एक दिन जंगल में लकड़ी के लिए जाती है। वहाँ पर अचानक बाघ आता है उसको कुल्हाड़ी से मार डालती है। एक बार डकैतों से सेठ को बचाती है।

2.4.3 स्त्री का योगदान

भारतीय समाज में स्त्री के स्थान को लेकर ‘मुक्ति पर्व’ उपन्यास में लेखक द्वारा विशेष रूप से चित्रण मिलता है। सुंदरी से चकरभिन्नि सलवर कहती है कि “यही समाज पहले लड़की को औरत बनाता है और फिर औरत बनाकर उसे सिखाता है। औरत भी पहले स्वयं सीखती है फिर दूसरों को सिखाती है। समाज में सीखने और सिखाने की प्रक्रिया से रही है। उसी प्रक्रिया से समाज आगे बढ़ता है। उसकी संरचना में एक-एक प्राणी की भूमिका होती है।”² भारतीय समाज में स्त्री का बहुत बड़ा योगदान है। वह अधिक महत्वपूर्ण भी है, लेकिन भारतीय समाज ने उसे उपेक्षित और शोषित बना के रखा है।

2.4.4 स्त्री का शोषण

‘कमलकान्त आई.ए.एस’ उपन्यास में केदार सिंह अपनी काम वासना पूरा करने के लिए होरी की पत्नी को भोगने के लिए षड़यंत्र रचता है। होरी को घर से गौशाला भेजता है।

¹ वीरांगना झलकारी बाई, मोहनदास नैमिशराय पृष्ठ सं-65

² मुक्ति पर्व, मोहनदास नैमिशराय, पृष्ठ सं-16

होरी से केदार सिंह कहता है कि “पीछे गौशाला में जाकर चारा आदि देख लो। जानवरों को ठीक से चारा खिला दो। आज लाखन और मुरली दोनों नहीं हैं। चरवाहा अकेला है। चारा ठीक से खिलाने के बाद ही घर आना। मैं तुम्हारे घर चल रहा हूँ, वहीं कुछ बातें करूँगा।”¹ केदार सिंह ने चम्पा को शारीरिक रूप से भोगने के लिए होरी को जबरन काम पर लगा देता है। और वह अपने इस काम के लिए खुश हो जाता है।

फुलिया और जमुना ठाकुर के खेत में काम करती हैं। ठाकुर दो दिन से बाहर रहने के कारण फुलिया किसी काम से झोंपड़ी में चली जाती है। इस बीच में ठाकुर वह आ जाता है। देखा कमरे में जमुना अकेली थी। ठाकुर ने जमुना का बलात्कार किया। “वह टोकरी का गेहूँ कुठिया में डाल ही पायी थी कि पीछे से ठाकुर ने बहुपाश में भर लिया और इससे पहले कि वह कुछ समझ पाती, उसकी किंकर्तव्यविमूढ़ता की स्थिति का फ़ायदा उठाते हुए, उसे चारपाई पर गिरा कर उसकी इज्जत लूट ली। जमुना की जीभ तालू से चिपक गयी थी। उसके मुँह से शब्द ही न निकल रहे थे। यह सब इतने अप्रत्याशित ढंग से हुआ था कि जमुना सक्ते की हालत में थी। घर में किसी को भी इस घटना की ज़रा भी खबर न हुई। ठाकुर ने जब जमुना को मुक्त किया तो उसकी हथेली पर एक रुपया रख कर उसकी मुट्ठी बन्द कर दी और कमरे से बाहर निकल आया।”² ठाकुर बलात्कार करने के बाद जमुना की मुट्ठी में एक रुपया रखता है।

जमुना के जीवन में ऐसी घटना हुई कि समाज में किसी व्यक्ति से बता नहीं सकती है। कोई कैसे कह सकता है कि मेरा बलात्कार हुआ है। इसलिए फुलिया ने जमुना से कहा कि इस घटना के बारे में किसी को मत बताना “यहाँ अकेली लेटेगी तो तुम्हारे बापू शंका

¹ कमलकान्त, आई.ए.एस, प्रियदर्शी, पृष्ठ-सं.55

² कमलकान्त, आई.ए.एस, प्रियदर्शी, पृष्ठ-सं.76

करेंगे। उठो और हमारे साथ हमारे घर चलो और आँसू पोछकर मुँह धो डालो और सामान्य रहने की कोशिश करो।”¹ ऐसी घटना होने पर सामान्य रूप से रहने के लिए कैसे होता है।

2.4.5 वेश्याओं की समस्या

उपन्यासों में चित्रित वेश्यावृत्ति के बारे में बात करने से पहले वेश्यावृत्ति क्या है? समझना समुचित होगा। हमारे समाज में वेश्याओं की बड़ी विषम समस्या है। इस संबंध में संसार के कई समाजशास्त्रियों ने अपने विचार प्रकट किये हैं, कई सामाजिक सुधार होने के आश्वासन भी दिये गये, किंतु यह समस्या ज्यों की त्यों जटिल बनी हुई है। प्राचीन समाज में ऐसी धारणा थी कि यौन एवं संपत्ति के विनिमय तथा एक ही व्यक्ति की बहुत से लोगों के साथ काम लिस या अनेक लोगों की यौन संबंधी उदासीनता से ही वेश्यावृत्ति का उदय हुआ। यदि इस बात को स्वीकार किया जाय, तो कोई भी पत्नी या महिला किसी होटल में काम करने वाली महिला को वेश्या के नाम से पुकारी जा सकती है। वेश्यावृत्ति के लिए यह आवश्यक है कि वे जवान, सुन्दर और चालाक हो, जिससे कि वे अधिक से अधिक आकर्षक हो सके। देखा गया है कि गाँवों अथवा छोटे कस्बों से आई हुई युवतियाँ ही वेश्यावृत्ति को अधिक अपनाती हैं। वेश्यावृत्ति को अपनाने के कारणों में गरीबी, परंपरा, निवास स्थान की कमी, वातावरण आदि होते हैं। समाज में वेश्याओं की बड़ी विषम समस्या है। इस संबंध में संसार के कई समाज-शास्त्रियों ने अपने विचार प्रकट किये हैं, किंतु यह नारी का दूसरा अभिशप्त रूप है वेश्या का। प्राचीन काल से नारी का यह रूप हमारे समाज में अलग-अलग प्रकार से उपस्थित था। परंतु इसके मूल में हमेशा नारी की आर्थिक पराधीनता ही रही है। परिवार वालों से उपेक्षित नारी विवशता से जब वेश्या बन जाती है तो यह स्वाभाविक कुछ भी नहीं है।

¹ कमलकान्त, आई.ए.एस., प्रियदर्शी, पृष्ठ-सं.77

‘आज बाज़ार बन्द है’ उपन्यास में जब पत्रकार रश्मि और विवेक वेश्यागृह में वेश्याओं से साक्षात्कार लेने चलते हैं। वहाँ पर वेश्यागृह को चलाने वाली शबनम बाई पार्वती को दिखाते हुए कहती है कि “बिना शिव की पार्वती, शिव ने पहले इसे मन्दिर में बैठा कर देवदासी बनाया। फिर मन्दिर से चकले में भेज दिया। पहले मन्दिर के पुजारी ने इसके शरीर को भोगा। फिर गाँव के पटेल ने बाजी मारी। दोनों का मन भर गया तो गाँव के सामंत साहूकार की बारी आई यानी हमारे समाज में जिसका जितना मान-सम्मान, उतना ही देवदासी को भोगने के लिए उनके अधिकार सुरक्षित होते हैं। अब रात में काले चोर के रूप में देवता आते हैं और इस देवी को भोगते हैं।”¹ उपर्युक्त कथन से पता चलता है कि जो बड़े-बड़े लोग हैं वह अपने अधिकारों का फायदा उठाते हुए समाज में स्त्री का शोषण करते हैं। स्त्री उन लोगों के लिए भोगने की वस्तु है। ऐसे ही कुछ पात्र हैं इस उपन्यास में मुमताज अपने बेटे को पढ़ाने के लिए इस धंधे में आयी थी और हसीना अनाथ थी। अनाथालय में भी वही धंधा चल रहा था। वहाँ से भागकर आयी थी हसीना। शबनम बाई पत्रकार से कहती है कि “जितनी यहाँ औरतें हैं उतनी ही उनकी कथाएँ भी हैं। वे सुनकर दंग रह गये थे। उनकी व्यथाएँ उन्हें मथने लगी थी। समाज में औरतों को इतने भयानक सच से जूझना पड़ सकता है।”² उपर्युक्त उद्धरण से मालूम होता है कि कोई स्त्री वेश्यावृत्ति में आना नहीं चाहती है। परिस्थितियों के कारण वेश्या बन जाती है। उपन्यास के माध्यम से लेखक कहता है कि वेश्याएँ इस समाज की गंदगी को साफ करने वाले सच्चे सुधारक हैं। जब पार्वती के पास ग्राहक शराबी ने शराब पीकर बिस्तर पर उल्टी कर देता है। तब वह कोठरी दुर्गंध से भर जाती है। शबनम बाई, पार्वती, हसीना और मुमताज गंदगी को साफ करते हैं। यह उनकी नियति कहता है लेखक। “समाज की गंदगी साफ करना ही उनकी नियति थी। वेश्याएँ हैं ही इस काबिल। समाज को उनसे यही उम्मीद थी। युग बदले, पर उनके धंधे का

¹ आज बाजार बन्द है, मोहनदास नैमिशराय, पृष्ठ सं-33

² वही, पृष्ठ सं-35

स्वभाव न बदला। रामराज्य से कलयुग तक आ गया। वे वैसी की वैसी ही रहीं।”¹ उपर्युक्त उद्धरण से पता चलता है कि समाज में सुधार लाने के लिए बड़ी-बड़ी बातें की जाती हैं, लेकिन आज भी उनकी स्थिति में कोई बदलाव नहीं आया है।

पार्वती को गाँव में देवदासी नहीं भोगदासी बना दिया गया था। पार्वती को भोगने वाले अधिकतर सामंत और पटेल रहते थे। पार्वती सुमित से कहती है कि “गले में जनेऊ, माथे पर बड़ा टीका, सिर पर बीचों-बीच गांठ देकर खड़ी की गयी चुटिया। इन तीनों को रखने का अधिकार दलित समाज को नहीं था। केवल ब्राह्मण को था। और ब्राह्मण गांव बस्ती की सभी औरतों के संभोग करने का प्रथम अधिकारी था। देवदासी को कोई भी रखे, देवता कुपित नहीं होते थे। पर दलित समाज की कोई लड़की देवदासी न बने तब वे नाराज हो जाते थे। देवदासी को विवाह करने की मनाही थी, पर देवदासी के साथ दस-दस लोग संभोग करें, न पत्थर के देवताओं को एतराज था और न शंकराचार्यों को।”² उपर्युक्त कथन से पता चलता है कि स्त्रियों के साथ कितना अत्याचार किया गया है। पुजारी प्रसाद गाँव का भविष्य बताने वाला दलित देवदासी के भविष्य को खराब करता है। देवी-देवता, रुढ़िवादिता के चलते आज भी कई लड़कियाँ गाँवों में देवदासी बनायी जा रही हैं। परंपरा के नाम पर एक भयंकर षड़यंत्र रचा गया है।

¹ आज बाजार बन्द है, मोहनदास नैमिशराय, पृष्ठ सं-52

² वही, पृष्ठ सं- 90-91

तृतीय अध्याय

3. हिन्दी दलित उपन्यासों में चित्रित संस्कृति

3.1 संस्कृति

3.2 संस्कृति का उद्देश्य

3.3 ब्राह्मणों की संस्कृति

3.4 संस्कार

3.5 धर्म

3.5.1 धर्म के नाम पर दंगे

3.5.2 धर्म के नाम पर भयभीत करना

3.5.3 धर्म परिवर्तन

3.5.4 धर्म से मुक्ति

3.5.5 कर्नाटक में मठों का प्रभाव

3.6 राष्ट्रीय संस्कृति

3.7 दलितों की संस्कृति

3.8. विवाह

3.8.1 अन्तर्जातीय विवाह

3.8.2 दहेज प्रथा

3.8.3 लोक गीत

3.9 मुस्लिम संस्कृति

3.10 विश्वास

3.10.1 समाज में अंधविश्वास

3.10.2 शुभ-अशुभ

3.10.3 भूत चढ़ना

3.11 परंपरा

3.11.1 परंपरा के विरुद्ध स्वाभिमान

3.11.2 परंपरा का बंधन

3.12 गुलामी

3.13 परिवर्तन

3.14 आंदोलन से समाज परिवर्तन

3.15 व्यवसाय

3.16 षडयंत्र

3.17 प्रेम

3.17.1 भाई का प्रेम

3.18 ज्योतिष

3.19 वेशभूषा

3.1 संस्कृति

संस्कृति का ज्ञान किसी व्यक्ति की नागरिकता की गुणवत्ता को पहचान देता है। अपनी संस्कृति का ज्ञान हमें विरासत की संवृद्धि के प्रति तथा भारतीय होने के प्रति गौरवान्वित करता है। संस्कृति शब्द का अर्थ व्याकरण की दृष्टि से शिवदान ज्ञानी इस प्रकार बताते हैं कि “‘संस्कृति’ शब्द संस्कृत भाषा की ‘संस्कृ’ धातु में प्रत्यय लगाने से बनता है। इसका शाब्दिक अर्थ ‘अच्छी स्थिति’, ‘सुधरी हुई’ स्थिति आदि का बोधक है।”¹ ‘संस्कृति’ शब्द का भावार्थ ‘अधिक विस्तृत’ है। संस्कृति से मानव-समाज की उस स्थिति का बोध होता है, जिससे उसे ‘सुधरा हुआ’, ‘ऊँचा’, ‘सभ्य’ आदि विशेषणों से आभूषित किया जा सकता है। प्रत्येक देश के आचार-विचार भिन्न होने के कारण सुधार-सम्बन्धी भावना भी भिन्न रहती है। इसलिए अलग-अलग देशों की संस्कृति में भिन्नता पाई जाती है। संस्कृति को एडवर्ड टेलर परिभाषित करते हैं कि “समाज के एक सदस्य के रूप में मनुष्य द्वारा अर्जित ज्ञान, विश्वास, कला, कानून, नीति और रीति के समष्टिगत रूप को संस्कृति कहते हैं।”² लिंटन के अनुसार- “संस्कृति सीखे हुए व्यवहारों तथा व्यवहारों के परिणामों का वह समग्र रूप है, जिसके निर्माणकारी तत्व किसी विशिष्ट समाज के सदस्यों द्वारा प्रयुक्त और संचरित होते हैं।”³

ई.बी. टाइलर ने संस्कृति को परिभाषित करते हुए लिखा है कि संस्कृति वह जटिल समग्रता है जिसमें ज्ञान विश्वास, कलाएँ, नैतिकताएँ, विधि प्रश्न तथा अन्य और क्षमताएँ और आदतें हैं जिन्हें मनुष्य ने समाज के सदस्य के रूप में अर्जित किया है। इससे स्पष्ट होता है कि संस्कृति मात्र धार्मिकता नहीं है वह अपने जटिल स्वरूप में मनुष्य के संपूर्ण जीवन को समाहित करती है।

बेनेडिक्ट रथ के अनुसार- “संस्कृति का अर्थ विचारों और कार्यों द्वारा निर्मित जीवन-पद्धति है। प्रत्येक समाज की संस्कृति में कुछ ऐसी विशेषताएँ होती हैं जो सामान्यतः दूसरे प्रकार के समाज में नहीं पाई जाती। समाज के व्यक्ति वहाँ की संस्कृति को स्वीकार

¹ भारतीय संस्कृति, शिवदान ज्ञानी, पृष्ठ सं-16

² भारतीय संस्कृति, पुष्पा बिष्ट सिन्हा, पृष्ठ सं.-1

³ भाषा साहित्य और संस्कृति, सं.विमलेश कान्ति वर्मा, मालती, पृष्ठ सं.- 407

करके क्रमशः अपने अनुभव को अधिकाधिक समृद्ध करते हैं और इस प्रकार वे पहले की अपेक्षा समाज विशेष के व्यवहार को विकसित करते हैं।”¹ उपर्युक्त परिभाषा से स्पष्ट हो जाता है कि संस्कृति मात्र धार्मिकता नहीं है वह अपने जटिल स्वरूप में मनुष्य के संपूर्ण जीवन को समाहित किए हुए है।

3.2 संस्कृति का उद्देश्य

निसर्ग संस्कृति के बारे में कहते हैं कि “मनुष्य में बीज-रूप से तीन प्रकार की शक्तियाँ भर दी हैं, जिनका सम्बन्ध शरीर, मन व आत्मा से है। शारीरिक, मानसिक व आत्मिक शक्तियों का विकास ही संस्कृति का मुख्य उद्देश्य है। जिस संस्कृति में इस विकास का जितना अधिक है, वह उतनी ही ऊँची मानी जाएगी।”²

3.3 ब्राह्मणों की संस्कृति

भारत में शासक वर्ग प्राचीन से लेकर वर्तमान तक निम्न वर्गों का शोषण करते हैं। फ्रांसीसी बर्नियर सन् 1665 ई. में भारत आए थे। शाहजहां और औरंगजेब भारत में यात्रा कर रहे थे। उन्होंने लगभग बारह सालों तक इस देश में घूम-घूम कर केवल आर्थिक और राजनैतिक अवस्था का ही नहीं, अपितु सांस्कृतिक जलवायु का भी रस भोगा। बर्नियर लिखते हैं –“मुगल बादशाह मुसलमान होने पर भी हिन्दुओं की इन पुरानी बातों में हाथ नहीं डालता या हाथ डालना ही नहीं चाहता या साहस नहीं होता। सूर्यग्रहण के अवसर पर ब्राह्मण एक लाख रुपये बादशाह को नजर करते हैं। बादशाह की ओर से उन्हें थोड़े से वस्त्र और एक बूढ़ा हाथी मिलता है।”³ इन ब्राह्मणों ने आस्था-विश्वास का कैसा उन्माद पैदा कर रखा है।

‘गटर का आदमी’ उपन्यास में सवर्ण श्री लोकेशचन्द्र परिजादा की दो बेटियाँ हैं सुगुना और संजना। लोकेशचन्द्र परिजादा अपनी बेटियों से कहता है कि “तुम दोनों बहिनों की इतनी हिम्मत हो गयी कि इस तरह की बातें मां से कर रही हो। शर्म लिहाज कुछ भी

¹ भाषा साहित्य और संस्कृति, सं. विमलेश कान्ति वर्मा, मालती, पृष्ठ सं.- 407

² भारतीय संस्कृति, शिवदान ज्ञानी, पृष्ठ सं.-16

³ दलित चेतनःसोच, सं. रमणिका गुप्ता, पृष्ठ सं.-12

नहीं है। हम लोग शहर में जरूर रहते हैं लेकिन हमारी जड़ें भारतीय सभ्यता और संस्कृति पर आधारित हैं। तुम लोगों को ऐसी आजादी नहीं दी जा सकती हैं।”¹ उपर्युक्त उद्धरण से मालूम होता है कि लोकेशचन्द्र अपने बेटे को ज्यादा आजादी देता है। बेटियों को उतना महत्व और स्वतंत्रता नहीं देता है। भारतीय संस्कृति में लड़के को श्रेष्ठ और लड़की को महत्वहीन माना जाता है। ‘आक्रोश’ उपन्यास में रामसिंह के भाई का देहांत होने के बाद तेरह दिन के संस्कार के लिए उनका बेटा रघुवर से गाँव के बुजुर्ग कहते हैं कि “भाई रघुवीर तेरहवीं का क्या प्रोग्राम है। उसमें गाँव के सभी सातों जाति के लोग होंगे या अपनी ही भाई बिरादरी के लोगों को खिलाओ पिलाओगे।”² मृत्यु पर्यंत होने वाले अनुष्ठानों में वहाँ के पंडितों को भोग चढ़ाने की प्रथा अभी भी कायम है। जिसका रूप इससे हमें पता चलता है। बालदीन को देखकर विरधु यादव रामू पण्डित से कहता है कि “देखा पण्डित जी जमाने का बुरा हाल, कितना बुरा जमाना आ गया है, न कोई राम-राम न कोई श्याम-श्याम। भाई बोल मत अब तो चमरा, कटरा व मटरा के दिन बढ़ रहे हैं, इन्हीं की कीमत है। नाश जाए इस सरकार का जो पैर की जूती सिर पर रख रही है, चमार, चूहड़ों को ऊपर चढ़ाकर। देखा साला बलुआ (बालदीन) बगुला बन रहा है सफेद कपड़े पहन कर। गाँव आने की कोई तमीज भी नहीं सीखी न राम-राम न श्याम-श्याम।”³ पुरानी परंपराएँ, मान्यताएँ एवं रूढ़ियों का आज के आधुनिक युग में पतन होता देखा जा सकता है। जिसके कारण उन्हें पोषित करने वालों को ऐसे परिवर्तन से बिल्कुल खुशी नहीं होती है।

3.4 संस्कार

डॉ.विजय अपने ‘सैनिक का खून’ उपन्यास में संस्कृति के बारे में महर्षि दयानंद कहता है कि “मृत्यु का समय होता है कि उस समय मनुष्य जो कुछ जीवन में अपने संस्कारों को दृढ़ करता है। वे सब संस्कार एकत्रित होकर भावी जन्म की ओर ले जाते हैं। परन्तु मुक्त पुरुष उन सब संस्कारों को मुक्त सा कर देता है, अतएव अलग जन्म नहीं लेते।”⁴

¹ गटर का आदमी, रुपनारायण सोनकर, पृष्ठ सं.-48

² आक्रोश, रघुवीर सिंह, पृष्ठ सं.-131

³ वही, पृष्ठ सं.-209

⁴ सैनिक का खून, डॉ.विजयी, पृष्ठ सं.-15

उपर्युक्त कथन से पता चलता है जन्म और संस्कारों की तुलना करते हैं महर्षि दयानंद। रुपनारायण सोनकर अपने 'सूअरदान' उपन्यास में संकेत करते हैं कि संस्कार से ही देश को खतरा है चोरों, डकैतों, और आतंकवादियों से भी बढ़कर ज्यादा खतरा हिन्दू धर्म संस्कारों से हैं। “जबसे पढ़े-लिखे सवर्णों, दलितों और पिछड़ों ने सदियों पुरानी आतताई, अवैज्ञानिक, पुराने हिन्दू संस्कारों को त्यागा है, वे सभी उन्नति के पथ पर आगे बढ़ गए हैं। इन कुकर्म पुजारियों ने ईश्वर का भय दिखा कर लोगों को प्राचीन व सड़ी-गली मान्यताओं पर सवर्णों, पिछड़ों और दलितों को चलने पर मजबूर किया।”¹ उपर्युक्त कथन से मालूम होता है कि धर्म और संस्कारों से देश को ज्यादा खतरा है। वह विकास की धुरी न होकर अवरोध मात्र है।

3.5 धर्म

भारत एक धर्म निरपेक्ष देश है। फिर भी धर्म भारतीय समाज का मूल आधार है। धर्म का संबंध मानवता से है। धर्म मनुष्य-मनुष्य में प्रेम उत्पन्न करता है। सामाजिक और धार्मिक क्रिया कलापों का मूलाधार धर्म ही है। प्रत्येक मनुष्य न चाहते हुए भी एक धर्म में पैदा होता है और न चाहते हुए भी किसी-न-किसी धर्म में अवश्य मरता है। जीवन से मरण तक प्रत्येक मनुष्य को धर्म की जरूरत अवश्य रहती है। धर्म से अलग होने का मामला व्यक्तिगत हो सकता है परंतु सामूहिक रूप में यह संभव नहीं हो पाता। सामाजिक मनुष्य नास्तिक हो सकता है परंतु धर्म-हीन नहीं। आज धर्म का रूप बदल गया है। कुछ लोगों ने अपने स्वार्थ के लिए धर्म को संप्रदाय का रूप दिया है धर्म आज अनेक कर्मकाण्डों और कुरीतियों से युक्त हो गया है। धार्मिकता भारत देश का प्राण तत्व मानी जाती रही है। धर्म व्यक्ति के चहुँमुखी विकास में सहायक होता हुआ उसे मर्यादित करता हुआ, जीवन जीने की कला सिखाता है। यह व्यक्ति में दया, करुणा, प्रेम, सहनशीलता, धैर्य और नैतिकता आदि गुण भर देता है जिससे वह व्यक्ति सही अर्थ में मानव बनने में सक्षम होता है। धर्म व्यक्ति की आंतरिक शक्ति को जागृत करता है, उसकी सामाजिक प्रगति में योगदान देता है।

¹ सूअरदान, रुपनारायण सोनकर, पृष्ठ सं-96

डॉ. अम्बेडकर के धर्म और संस्कृति के विचार को सूर्यनारायण रणसुभे इस तरह रखते हैं- “दलित अगर सिख धर्म में गये तो हिन्दू संस्कृति में ही रहेंगे। हिन्दू धर्म और हिन्दू संस्कृति में वे अन्तर करते थे। हिन्दू संस्कृति से उनका तात्पर्य भारतीय संस्कृति से था। वे इस बात को जानते थे कि धर्म-परिवर्तन सहज सम्भव है, परन्तु संस्कृति-परिवर्तन एक असम्भव-सी प्रक्रिया है। भारतीय संस्कृति से दलितों को काट देना उन्हें मान्य नहीं था और व्यवहारतः यह सम्भव भी नहीं है।”¹ हिन्दू संस्कृति में मंदिर और पुजारी को विशेष सम्मान प्राप्त रहा है और यह मंदिर किसी न किसी रूप में सत्ता के केन्द्र भी रहे हैं। इसी संस्कृति द्वारा करोड़ों लोगों को अपवित्र मानकर उनके मंदिर प्रवेश को प्रतिबंधित कर दिया गया था। इसी अपवित्रता के फार्मूले के खिलाफ तथा इंसानी बराबरी के लिए कई महापुरुषों ने लंबा संघर्ष किया जो आज भी किसी न किसी रूप में जारी है। भारतीय समाज द्वारा पोषित जाति श्रेष्ठता की मानसिकता ने व्यक्ति-व्यक्ति को बांटा है।

प्रो. क्राउले धर्म के बारे में कहते हैं कि “मनुष्य का धर्म, उसके सामाजिक अथवा व्यावसायिक कार्य में, उसके वैज्ञानिक अथवा कलात्मक जीवन में बाधक नहीं होता। वास्तव में उसके धर्म की आवश्यकताएं उस एक विशेष दिन पूरी की जाती हैं, जब वह सामान्य रूप से सभी भौतिक संबंधों से मुक्त होता है। वास्तव में उसका जीवन दो हिस्सों में बंटा हुआ है, परंतु उसका जो आधा हिस्सा धर्म के साथ जुड़ा है, वह प्राथमिक है। उसका सैबथ का दिन (चर्च में विश्राम-दिवस) जीवन और मृत्यु जैसे गंभीर प्रश्न पर विचार करने में बीतता है। साथ ही प्रार्थना करने की आदत, भोजन करते समय ईश्वर को धन्यवाद देना, और मृत्यु, जीवन और विवाह आदि सर्वथा धर्मानुष्ठान की क्रियाएं हैं, यह सब-कुछ अभिन्न रूप से उसके साथ जुड़ा हुआ है। संभवतः व्यवसाय अथवा विषयसुखों को अत्सर्गित किया जाना चाहिए, परंतु उसमें भी परिवर्तित धार्मिक भावना का आदेश होता है।”² उपर्युक्त कथन से यह जान सकते हैं कि धार्मिक आचरण जीवन के हर पहलू से जुड़ा हुआ प्रतीत होता है। जो मृत्यु तक चलती है।

¹ डॉ. बाबासाहेब अम्बेडकर, डॉ. सूर्यनारायण रणसुभे, पृष्ठ, -सं-82-83

² बाबासाहेब डॉ. अम्बेडकर सम्पूर्ण वाङ्मय, खंड-6, पृष्ठ सं.-25

धर्मवीर के ‘पहला खत’ उपन्यास में भारतीय कला-संस्कृति को ही ब्राह्मणवाद से नहीं जोड़ा है अपितु यहाँ संपूर्ण ज्ञान विज्ञान में ब्राह्मणवाद की साजिश माना है- “मैंने हिन्दूस्तान में ज्ञान के हर क्षेत्र को दो फाड़ देखा है। इस देश में दो भाषाएँ, दो काव्य, दो दर्शन, दो समाज, दो धर्म और दो योग रहे हैं। भाषाओं में संस्कृत और गैर संस्कृत भाषाएँ रही हैं, काव्य में वर्णिक और मात्रिक छंदों का अंतर रहा है, दर्शन में सगुण और निर्गुण ईश्वर का भेद बना है, समाज में द्विज और गैर द्विज रहे हैं, धर्म में शास्त्रीय धर्म में और लोक धर्म रहे हैं। योग में अष्टांग और श्रमिक योग रहे हैं।”¹ उपर्युक्त कथन से स्पष्ट होता है कि भारतीय समाज में एक समाज नहीं है। यह अनेक हिस्सों में बँटा हुआ है। ब्राह्मणवाद की दोहरी मानसिकता ने आज तक समाज को एक होने नहीं दिया। उनके स्वार्थ के चलते सामाजिक ढाँचे को पूरी तरह बदल के रखा है।

‘नीला आकाश’ उपन्यास में चन्दरी ने भीकूजी को समझाते हुए कहा कि- “भला कोई अपने शरीर सहित देवधाम या स्वर्ग कैसे पहुंचते होंगे? हाड़ मांस का शरीर तो मिट्टी बनकर यहीं रह जाता है। मुझे तो ये सब बातें झूठी लगती हैं। और स्वर्ग भी कहाँ है ? ये सब मनगढ़न्त बातें हैं.....चन्दरी अपनी बात के साथ, अपना तर्क जोड़ती रही। वह मौका मिलते ही, झूठे धर्म की झूठी बातों का भंडा फोड़ती रहती है।”² उपर्युक्त उद्धरण से मालूम होता है कि चन्दरी धर्म और कर्म पर भी बात करती है। चन्दरी समझदार थी वह अंधविश्वास को दूर करने की कोशिश करती है। स्वर्ग पर बात करते हुए वैज्ञानिक तर्क देती है। ये भी कहती है कि स्वर्ग और धर्म ये सब झूठ है। स्वार्थ के लिए बनाया हुआ षड़यंत्र है। चन्दरी भीकूजी को शम्बूक के बारे में भी समझा देती है।

डॉ.बी.आर. अम्बेडकर ने दीक्षा भूमि, नागपुर, में ऐतिहासिक बौद्ध धर्म में परिवर्तन के अवसर पर, 15 अक्टूबर 1956 को अपने अनुयायियों के लिए 22 प्रतिज्ञाएँ निर्धारित की 800000 लोगों का बौद्ध धर्म में रूपांतरण होना ऐतिहासिक था क्योंकि यह विश्व का सबसे बड़ा धार्मिक रूपांतरण था। उन्होंने इन शपथों को निर्धारित किया ताकि हिंदू धर्म के बंधनों को पूरी तरह पृथक् किया जा सके। ये 22 प्रतिज्ञाएँ हिंदू मान्यताओं और पद्धतियों

¹ अपेक्षा, संपा.तेजसिंह, अंक-30-31, जनवरी-जून 2010

² नीला आकाश, सुशीला टाकभौरे पृष्ठ सं-44

की जड़ों पर गहरा आघात करती हैं। ये एक सेतु के रूप में बौद्ध धर्म की हिन्दू धर्म में व्याप्त भ्रम और विरोधाभासों से रक्षा करने में सहायक हो सकती हैं। इन प्रतिज्ञाओं से हिन्दू धर्म, जिसमें केवल हिंदुओं की ऊंची जातियों के संवर्धन के लिए मार्ग प्रशस्त किया गया, में व्याप्त अंधविश्वासों, व्यर्थ और अर्थहीन रस्मों, से धर्मान्तरित होते समय स्वतंत्र रहा जा सकता है। डॉ.बी.आर.अम्बेडकर से प्रभावित होकर सुशीला टाकभौरे अपने ‘नीला आकाश’ उपन्यास में भीकूजी के माध्यम से धर्म परिवर्तन की ओर संकेत करती हैं। “भीकूजी भीमनगर के प्रबुद्ध लोगों से तथागत गौतम बुद्ध और डॉ.भीमराव अम्बेडकर की चर्चा सुनते रहते हैं। बुद्ध धर्म के सिद्धान्त और गौतम बुद्ध के अहिंसा का संदेश, भीकूजी ने समझा है। वे जीव हत्या का विरोध करने लगे हैं। डॉ. अम्बेडकर ने अपने लोगों को बौद्ध धर्म को अपनाकर, अपनी जाति को समता और सम्मान की राह दिखाई है, यह भी वे जाने गये हैं।”¹ उपर्युक्त उद्धरण से स्पष्ट होता है कि दलितों का धर्म परिवर्तन होना जरूरी है।

‘ज़ख्म हमारे’ उपन्यास में धर्म के विषय में सुरजा, परमार एवं गुलाम पात्रों के माध्यम से इस प्रकार वर्णन किया है कि गुलाम को दो साल पहले अपने भतीजे राजू परमार की बात याद आयी तो सुरजा से गुलाम सवाल करता है जैसे- “डॉक्टर अम्बेडकर ने हिन्दू धर्म छोड़कर बौद्ध धर्म अपनाया था। हमें भी अब बौद्ध बन जाना चाहिए।....पर क्या धर्म बदला जा सकता है? सुरजा ने जवाब में कहा था, क्यों नहीं बदला जा सकता। नाम भी बदला जा सकता है और धर्म भी।”² उपर्युक्त उद्धरण से मालूम होता है कि डॉ.बी.आर.अम्बेडकर की विचार धारा से ही राजू परमार और गुलाम धर्म परिवर्तन की कोशिश करते हैं। दलित समाज अपने इस गुलामी और सामाजिक असमानताओं से मुक्ति पाने के लिए धर्म परिवर्तन ही एक मात्र उपाय मान रहे हैं।

‘सूअरदान’ उपन्यास में पुजारी दयाशंकर को एड्स की बीमारी होती है। पुजारी को छूने के लिए भी लोग तैयार नहीं रहते। दूसरे लोग जहां इनको छूने से भी डरते हैं। छूना भी नहीं चाहते। गाँव से दूर बसाते हैं। उनकी तकलीफ से मुंह मोड़ लेते हैं। पिगरी फार्म ही उसकी बीमारी का ईलाज अपने रुपये खर्च करके कराते हैं। पुजारी का हृदय परिवर्तन होता

¹ नीला आकाश, सुशीला टाकभौरे पृष्ठ सं-50

² ज़ख्म हमारे, मोहनदास नैमिशराय, पृष्ठ सं-43

है। “पुजारी दयाशंकर को एक भयंकर एड्स की बीमारी थी जिसमें उनका बचना मुश्किल था, लेकिन उनको मारकण्डेय अग्निहोत्री ने ऐसे पाखण्डी धर्म के जाल में फसाया कि पुजारी फंसता चला गया। तुम कृष्ण भक्त हो। उन पांचों की जरा-सी हमदर्दी पाकर तुम अपना धर्म मत भूलो। फिर कृष्ण कन्हैया में ऐसी ताकत है कि वह तुम्हारी इस भयंकर बीमारी को दूर कर देंगे। इस गांव में पांचों द्वारा जो कुकर्म किया जा रहा है। पिगरी-फार्म मन्दिर के पास खोलने की बजह से तुम्हें यह बीमारी लगी है।”¹ उपर्युक्त उद्धरण से मालूम होता है कि मारकण्डेय अग्निहोत्री पुजारी को उकसाता है। लेकिन सफल नहीं हो पाता है। मारकण्डेय अग्निहोत्री, कामता प्रसाद बिष्ट और सीताराम भट्ट जैसे लोग ही धार्मिक मामलों को लेकर सूअरदान को बन्द करवाना चाहते हैं। जो मानव विरोधी है। धर्म और धार्मिक संस्कारों के नाम से लोगों को अंधश्रद्ध के जाल में फंसाकर उन्हें पूरी तरह से अपाहिज बनाने का षड़यंत्र नज़र आता है।

‘सूअरदान’ उपन्यास में लेखक संकेत करते हैं कि गाँव में पिगरी-फार्म के कारण ब्राह्मण पुजारी दया शंकर के अलावा सब लोग आर्थिक रूप से संपन्न थे। समय के साथ गरीब ब्राह्मणों को पुरानी परम्परा वेद-पुराणों का त्याग करना चाहिए। वेद और पुराणों से बाहर आना चाहिए। वह कहता है कि “दलितों और पिछड़ों ने ऐसे अधर्मी, प्रचारकों के खिलाफ जब से आवाज उठायी है अपनी उन्नति के द्वार खोल लिए हैं। जिस समाज ने उन पाखण्डियों का साथ दिया है, अपनी उन्नति के द्वार बन्द कर लिए हैं। देहातों में वेदों एवं पुराणों से बंधे होने के कारण एवं उक्त पाखण्डी व अमानवीय धर्म की वजह से ब्राह्मण गरीब होते जा रहे हैं। उनकी दशा दयनीय होती जा रही है। अंग्रेजों के शासनकाल में भारत में जो दशा दलितों, पिछड़ों की थी वही दशा अब कुछ ब्राह्मणों की है। रोटी-रोटी के लिए मोहताज हैं। यह युग प्लेन युग है। बैलगाड़ी युग समाप्ति पर है। दकियानूसी लोग इस बैलगाड़ी में पोथी-पत्रा अमानवीय संस्कार और अवैज्ञानिक धर्मग्रन्थों को लाद कर ढो रहे हैं। जर्जर गाड़ी चरमरा रही है। बैल भार खींचते हाफ रहे हैं। बैल गिरकर मर रहे हैं और जर्जर गाड़ी टूट गई है।”² उपर्युक्त उद्धरण से मालूम होता है कि समय के साथ विचारधारा में

¹ सूअरदान, रुपनारायण सोनकर, पृष्ठ सं-73

² वही, पृष्ठ सं-96

भी परिवर्तन होना चाहिए। आधुनिक समय के साथ वैज्ञानिक जीवन शैली भी होनी चाहिए। अवैज्ञानिक जीवन शैली नहीं चाहिए। जो लोग वेद-पुराणों का पालन कर रहे हैं वे लोग और गरीब होते जा रहे हैं। इसलिए वेद-पुराणों को त्यागना चाहिए।

गाँव में लोग मंदिर जाना छोड़ के पिगरी-फार्म को जाने लगे थे। मंदिर में श्रद्धालु के बिना मुनाफा कैसे मिलेगा। इसलिए पुजारी दया शंकर भी मंदिर जाना छोड़ देता है। “पुजारी दयाशंकर ने मन्दिर जाना बन्द कर दिया था। चारों चालबाज ब्राह्मण अब बारी-बारी से पूजा पाठ सम्पादित कराया करते थे लेकिन अब मन्दिर जाने वाले श्रद्धालुओं की संख्या दिन ब दिन घटती जा रही थी। दूसरी ओर पिगरी-फार्म में जाने वालों की संख्या बढ़ती जा रही थी। एक तरफ सख्त पत्थर थे दूसरी तरफ जीवन था। एक तरफ मन्दिर में जेब कटती थी दूसरी तरफ जेब भरती थी। एक तरफ अकर्मण्यता थी दूसरी तरफ कर्म था। एक तरफ हम लाचार होकर वहां मन्नत मांगते थे, दूसरी तरफ हम वहां मन की मुरादें पूरी होते पाते थे।”¹ उपर्युक्त कथन से मालूम होता है कि सामाजिक धारणाओं एवं विचारों में परिवर्तन हो रहा है। जिसके चलते समाज विज्ञान और यथार्थ से जुड़ रहे हैं। जो उनकी सामाजिक और आर्थिक स्थिति में सुधार लाया जा सकता था।

‘सूअरदान’ उपन्यास में सत्यनारायण त्रिपाठी, मारकण्डेय अग्निहोत्री, कामता प्रसाद बिष्ट और सीताराम भट्ट पिगरी फार्म के अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति को देखकर सह नहीं पाते। हिन्दू धर्म को आधार बनाकर पिगरी फार्म को बन्द करवाना चाहते हैं। मारकण्डेय अग्निहोत्री जब त्रिपाठी से कहता है कि “त्रिपाठी जी वास्तव में आपका दिमाग बहुत तेज है। आपका यह विचार पिगरी फार्म को डावां-डोल कर देगा। धर्म बहुत बड़ी चीज होती है। गाय हिन्दू धर्म में पूजी जाती है।”² उपर्युक्त उद्धरण से मालूम होता है कि त्रिपाठी, अग्निहोत्री, बिष्ट और भट्ट ने पिगरी फार्म को बन्द करवाकर गो-शाला फार्म बनाने का षडयंत्र चलाते हैं। जब-जब धार्मिक पाखंडियों का वर्चस्व कम होता दिखाई देता था तब-तब धार्मिक विश्वासों के सहारे से अपने वर्चस्व को स्थापित करने की कोशिश करते रहे।

¹ सूअरदान, रुपनारायण सोनकर, पृष्ठ सं-100

² वही, पृष्ठ सं-131

3.5.1 धर्म के नाम पर दंगे

भारतीय समाज में धार्मिक पाखण्डता के घर कर बैठ जाने के कारण हिन्दू-मुस्लिम के बीच सांप्रदायिक दंगे बने रहे हैं। जिसकी झलक 'ज़ख्म हमारे' उपन्यास में मिलती है। जब गुलाम शहर से गाँव लौटता है। सांप्रदायिक दंगे चरम पर थे। “कुछ बरस पहले अयोध्या में बाबरी मस्जिद के ध्वंस के बाद जब वह शहर से अपने गाँव लौट रहा था दो युवकों ने उसका रास्ता रोक कर सीधे-सीधे पूछा था, क्या वह हिन्दू है?.....हमें यह बतला कि तेरा धर्म क्या है? तू हिन्दू है या मुसलमान। मैं हिन्दू हूँ। इस बार पहले साथी ने कहा था, पूरा नाम बतला। गुलाम ने पूरा नाम बतलाया था, गुलाम अहमद। स्साले मुसलमान होकर अपने-आप को हिन्दू कहता है। कहते हुए एक ने लम्बे फलक वाला रामपुरी चाकू निकाल लिया था और दूसरे ने रिवाल्वर। अंततः पटेल ने पहेली सुलझाते हुए कहा था, यह मुसलमान नहीं, हरिजन है।”¹ उपर्युक्त कथन से मालूम होता है कि धर्म को लेकर हिन्दू और मुस्लिम में बाबरी मस्जिद को लेकर हिंसा भड़क उठी थी। नाम के आधार पर धर्म निर्धारित कर उन्हें मारने का सिलसिला चल रही थी।

3.5.2 धर्म के नाम पर भयभीत करना

‘सुअरदान’ उपन्यास में लेखक ने यह दिखाने की कोशिश की है कि समय के साथ किसी भी वस्तु के महत्व में बदलाव आ जाता है। प्रेमचंद के समय और वर्तमान समय में बहुत सारे परिवर्तन हो चुके हैं। जैसे कि प्रेमचंद के समय में भारत कृषि प्रधान देश था इसलिए गाय को महत्व दिया जाता था। अब वर्तमान में प्रौद्योगिक उद्योग के कारण, सारी चीजों में बदलाव आ चुका है। धर्म को लेकर सत्यनारायण त्रिपाठी मारकण्डेय अग्निहोत्री से कहता है “कुछ दूसरे धर्मों के लोग अपने मरने के पहले अपनी-अपनी कब्र खोद लेते हैं। उसी तरह लोगों में प्रचार करो कि आप लोग एक-एक गाय दान कर दो। ताकि इस संसार को सुकून से पार कर सको। इस गौशाला-फार्म में धार्मिक भावना जोड़ना जरूरी है। लोगों की धार्मिक भावना को उकसाकर बड़े-बड़े कठिन काम किए जा सकते हैं। यह दुनिया अंध-धार्मिकों की दुनियाँ है। आप लोग सभी गांववालों के मध्य प्रचार करो कि अर्ध-रात्रि

¹ ज़ख्म हमारे, मोहनदास नैमिशराय पृष्ठ सं-13-14

के समय कृष्ण-कन्हैया साक्षात् प्रकट हो जाते हैं। बांसुरी बजाकर गायों के आस-आप घूमते हैं। इस झूठ को एक-एक आदमी के सामने सौ-सौ बार बोलो। यह झूठ सच लगने लगेगा। फिर देखो अपनी गौशाला-फार्म दिन दुगनी रात्रि चौगुनी उन्नती कर जाएगा। यह पिगरी-फार्म, गौशाला-फार्म के सामने विलुप्त हो जाएगा।”¹ उपर्युक्त उद्धरण से मालूम होता है कि सवर्ण धर्म को बचाकर रखने के लिए क्या-क्या षडयंत्र रचते हैं। लोगों को यह स्वीकार कर लेना चाहिए कि कृषि प्रधान संस्कृति में गाय का जो मूल्य था, उसे बनाये रखने के लिए धर्म के महाप्रभुओं ने उसके महिमामंडित किया था। लेकिन अब संस्कृति, कृषि का अवलंबन तजकर प्रौद्योगिकी के युग में प्रवेश कर चुकी है। इसलिए गाय का महत्व वैसा नहीं रह सकता है जो पहले हुआ करता था। गाय यहाँ पशु का प्रतीक मात्र नहीं है बल्कि उस पुरानी सोच, वैचारिक प्रक्रिया की संकेतक है जो जिन्दगी गुजारने को ही अपने धर्म और संस्कृति का पालन करने के लिए जरूरी मानती है।

‘ज़ख्म हमारे’ उपन्यास में सैयद साहब के पड़ोसी सुरुचि उनका छोटा भाई वैभव रहते हैं। सादिया से वैभव पूछता है क्या आप की माँ कहीं गयी है? सादिया वैभव को समझाती है की मेरी माँ को दंगाई लोगों ने मार दिया। वैभव फिर पूछता है दंगाई क्या होता है। सादिया वैभव से कहती है कि “दंगाई वे होते हैं जो धर्म और जाति के बहाने लोगों को मारते हैं, उनके घरों को जलाते हैं”² उपर्युक्त कथन से मालूम होता है कि धर्म के नाम पर दंगा, मारपीट तथा हत्याएँ हो रही है। किसी का घर उझाड़ देते हैं। किसी को बेसहारा छोड़ देते है।

‘ज़ख्म हमारे’ उपन्यास में देखा जा सकता है कि धार्मिक भावना के चलते एक दूसरे को कैसे मार गिराते हैं। कश्मीर में एक परिवार के बारह हिन्दुओं को आतंकवादियों ने जान से मार दिया था। इस वर्ष की सबसे बड़ी घटना थी। घटना को लेकर देश भर में प्रतिक्रिया शुरू हुई थी। जुलूस ने मुस्लिम दुकान को जला दिये थे। असलम से दुकानदार कहता है कि “हिन्दूओं की दुकानें तो पहले से ही खुली थीं। उन्हें देख मैंने भी अपनी दुकान खोल ली।.....वे हिन्दू हैं चाहे जो करें। पर तुम्हें तो मौके की नजाकत समझनी चाहिए

¹ सूअरदान, रुपनारायण सोनकर पृष्ठ सं-133

² ज़ख्म हमारे, मोहनदास नैमिशराय, पृष्ठ सं-83

थी”¹ उपर्युक्त उद्धरण से मालूम होता है कि सभी आंदोलनकारी हिन्दू थे। उनके हाथों में विश्व हिन्दू परिषद, बजरंग दल, हिन्दू ब्रिगेड, शिवसेना आदि बैनर थे।

जब राजू परमार असलम के घर गया था। वहाँ पर खाना खाने में उसे देर हो गयी थी। राजू परमार को रैदास हॉस्टल के लिए उसे भीम कालोनी से ही गुजरना होता था। भीम कालोनी में अंधेरे में दो हिन्दू गुंडे सादिया के साथ बलात्कार करने की कोशिश करते हैं। राजू परमार उन गुंडों से सादिया को बचाता है। जब वह घर लौटती है और अपने पिता से इस बारे में बताती है तब सैयद साहब बेटी सादिया से कहता है कि “पर आखिर कौन थे जालिम ?....हिन्दू होंगे। जगह-जगह मुसलमानों पर हमले हो रहें....मैंने कितनी बार कहा है रात में कहीं मत जाया कर, यह भेड़ियों का राज्य बन गया है। हिन्दुओं के इस राज्य में मुसलमान बहन-बेटियों की इज्जत महफूज नहीं हैं”² उपर्युक्त उद्धरण से पता चलता है कि स्वतंत्र भारत में धर्म के नाम पर हत्या और बलात्कार किया जाता है। जो इस अमानवीयता का व्यवहार हमें उपन्यासों के माध्यम से साक्ष्य रूप से हमारे समक्ष उपन्यासकार प्रस्तुत करते हैं।

3.5.3 धर्म परिवर्तन

‘ज़ख्म हमारे’ उपन्यास में धर्म परिवर्तन संबंधी दृष्य दिखाई देती हैं। राजू परमार की क्लासमेट सोफिया राजू परमार से कहती है कि “मेरे फादर ने अपने टेस्टामेंट में लिखा था कि जब मैं पैदा हुई थी उसके एक वर्ष पहले उन्होंने धर्म परिवर्तन किया था”³....सोफिया की बात सुनकर राजू परमार कहता है कि “जीवन में रोटी से ज्यादा सम्मान की जरूरत है। हाँ, तुम्हारे फादर ने ठीक किया। राजू ने पल भर ठहरने के बाद फिर से कहा था, मेरे पिता वह नहीं कर सके। जीवन भर वे गुलाम बने रहे।.....वैसे मैं बौद्धधर्म के नज़दीक हूँ। अपने आपको बुद्धिस्ट कहता भी हूँ। लेकिन विधिवत रूप से बौद्ध दीक्षा नहीं ली है।”⁴ उपर्युक्त उद्धरण से मालूम होता है कि दलितों को गुलामी से मुक्त होने के लिए धर्म परिवर्तन करना

¹ ज़ख्म हमारे, मोहनदास नैमिशराय, पृष्ठ सं-84

² वही, पृष्ठ सं-91

³ वही, पृष्ठ सं-105

⁴ वही, पृष्ठ सं-105-106

जरूरी है। वह भी अम्बेडकर द्वारा सुझाया गये बौद्ध धर्म को अपनाना ही सामाजिक उन्नति का मार्ग है। इस उपन्यास में लेखक ने दिखाया है कि धर्मांधता के कारण लोग अपने आप पर काबू नहीं कर पाते हैं।

अयोध्या और फैजाबाद में राम मंदिर निर्माण का अवसर हिन्दुओं के लिए उत्सव और मुसलमानों के लिए चेतावनी थी। “शहर के बाजारों, चौराहों तथा मंदिरों के प्रांगणों में त्रिशूल लिये हुए धर्मांधों के नृत्य देख साधुओं, संतों के चेहरे खिले हुए थे। वे खुश थे। उनके भीतर देश भर में हजारों मंदिर बनाने की धर्मांधता के बीज उग रहे थे”।¹ उपर्युक्त उद्धरण से मालूम होता है कि मंदिर निर्माण का अवसर साधुओं और संतों के लिए उत्साह भरा उत्सव था। धर्म की रक्षा के नाम पर आतंक फैलाने का काम इन्होंने किया है।

इतिहास के पन्नों में 6 दिसम्बर का महत्वपूर्ण स्थान है। ऐतिहासिक दिन बाबरी मस्जिद गिराई गयी थी और उसी दिन डॉ.बी.आर. अम्बेडकर का परिनिर्वाण हुआ था। इस घटना का जिक्र लेखक ने अपने उपन्यास में करते हैं। बाबरी मस्जिद गिराने के कारण मुस्लिम मदरसे में एक बैठक होती है। उस बैठक में आ कर इंस्पेक्टर कहता है कि असामाजिक लोग आये हुए हैं। राजू परमार इंस्पेक्टर से कहता है कि “इंस्पेक्टर साहब यहाँ जितने भी लोग आये हैं, वे सब पढ़े लिखे हैं और लोकतांत्रिक तरीके से अपनी बात कहने में विश्वास रखते हैं”।² राजू परमार की बात सुनकर इंस्पेक्टर सवाल करता है क्या तुम मुसलमान हो? राजू ने उत्तर दिया था न मैं हिन्दू हूँ और न मुसलमान। मैं दलित हूँ। इंस्पेक्टर बोलता है जनगणना के अनुसार आप हिन्दू हैं। राजू कहता है यह सब हिन्दू व्यवस्था का षड़यंत्र है। इंस्पेक्टर कहता है कि “देखो राजू परमार, तुम राजू हो रहीम नहीं। और यह भी समझ लो कि दलित हिन्दू धर्म और व्यवस्था का ही एक भाग है। मुसलमान से ज्यादा मिक्स अप करने की कोशिश न करना”।³ राजू परमार को मुस्लिम बैठक में शामिल होने के कारण इंस्पेक्टर ने धमकी दी थी। हिन्दू धर्म ने जनगणना और परंपरा के आधार पर दलितों

¹ ज़ख्म हमारे, मोहनदास नैमिशराय, पृष्ठ सं-114

² वही, पृष्ठ सं-115

³ वही, पृष्ठ सं-117

को हिन्दू धर्म में शामिल किया गया है, लेकिन उनके साथ जाति आधारित विषमता को बनाये रखते हैं।

3.5.4 धर्म से मुक्ति

धार्मिक कट्टरता और विषमता ने दलित एवं हाशिए के समाज को पूरी तरह से दबाके रखा है। इस धार्मिक वर्चस्व और विषमता का सदियों से विरोध हो रहा है। अब दलित समाज डॉ.अम्बेडकर के विचारों के चलते ही धर्म से मुक्ति चाह रहे हैं। धार्मिक मुक्ति की बात दलित उपन्यासों में देख सकते हैं। ‘जख्म हमारे’ उपन्यास में दलित युवक राजू परमार एक आंदोलनकारी और बुद्धिजीवी है। राजू परमार को बुखार होने के कारण सादिया अस्पताल ले जाती है। डॉ.एन पारिख सादिया से कहता है कि “एक हिन्दू लड़का और उसे भर्ती कराने वाली मुसलमान लड़की।....राज्य में हालात ठीक नहीं है। हम कितना भी निष्पक्ष होकर अपनी ड्यूटी निभाएं। कहीं न कहीं हमारी जाति और धर्म के सवाल हमारे सामने आकर खड़े हो जाते हैं....क्या कोई मुसलमान डॉक्टर नहीं है?..... अधिकांश लोगों में ऐसे समय पर अपने धर्म और जाति का जज्बा होता है। लोग उससे मुक्त नहीं हो पाते.....।”¹ उपरोक्त उद्धरण से मालूम होता है कि डॉ.एन.पारिख राजू परमार का इलाज करने से मना करता है। इसलिए कि वह धार्मिक भावना से मुक्त होकर नहीं सोच पाता है। जबकि एक डॉक्टर होने के नाते उसे निष्पक्ष होकर काम करना चाहिए लेकिन शिक्षित व्यक्तियों में भी यह धार्मिक कट्टरता की भावना है। जो समतामूलक समाज की कल्पना के विरुद्ध है।

दलित समाज के लोगों द्वारा हिन्दू धर्म छोड़कर बौद्ध धर्म स्वीकार करने के बाद अनेक परिवर्तन हुए थे। “दलित समाज बौद्ध हुआ उनमें सामाजिक चेतना आयी है। उनके रहन-सहन में, शिक्षा में और संस्कारों में परिवर्तन हुआ। नागपुर में बौद्ध धर्म में दीक्षा लेने के बाद अपने-अपने गाँव आए नवदीक्षितों ने मरे हुए जानवर फेंकना, उनका मांस खाना-कमाना बन्द कर दिया गया।”² धर्म के नाम पर हिन्दुओं ने दलितों का अनेक प्रकार से

¹ जख्म हमारे, मोहनदास नैमिशराय पृष्ठ सं-128

² महानायक बाबा साहेब डॉ.आम्बेडकर, मोहनदास नैमिशराय, पृष्ठ. सं.291

शोषण किया है। उन लोगों ने बौद्ध धर्म को स्वीकार करने के बाद हिन्दू धर्म की मूर्तियाँ और पोथियाँ को घर से बाहर फेंक दिया और सवर्ण हिन्दुओं की गुलामी जैसे मौत की खबर पहुँचाना, लकड़ी फाड़ना और शादी-ब्याह में केवल भोजन के लिए काम करना छोड़ दिया। हिन्दुओं के अमानवीय प्रथा से दलित समाज मुक्ति के राह पर चलने लगा है।

मोहनदास नैमिशराय के 'मुक्ति पर्व' उपन्यास में सत्ता के केंद्र में धर्म है "शहर में मंदिरों की भीड़ थी। गिनने लगे तो गिनती करना मुश्किल हो जाए। मस्जिदें भी कम नहीं थी। एक पर पंडे और पुजारियों का कब्जा था, दूसरी पर मुल्ला और मौलवियों का। दोनों में प्रतिस्पर्धा होती थी। मस्जिद में एक ईंट भी लग जाती तो सभी मंदिरों के परिवेश में वह खबर गूँज उठती। यह देश हिंदुओं का है फिर मस्जिदें क्यों रही है ? हिंदुओं के बीच तिलकधारियों से लेकर जनेऊधारियों तक में इस विषय पर बहस होती। उनमें से कोई नेहरू को कोसते तो कोई जिन्ना को"।¹ उपरोक्त उद्धरण से पता चलता है कि धर्म के प्रति लोगों में विश्वास और अंधविश्वास कितना फैल चुका है। दूसरी ओर राजनेता सत्ता के लिए धर्म का उपयोग करते हैं। जिससे उनकी ताकत में कोई कमी न आ सके।

3.5.5 कर्नाटक में मठों का प्रभाव

1920, अक्टूबर 24 को कर्नाटक में ब्रह्म समाज ने एक भोज का प्रबन्ध किया था। सहभोज में भाग लेने वाले 150 व्यक्तियों में मुसलमान, ईसाई और पेरिया जाति के लोग भी शामिल थे। "गौड, सारस्वत ब्राह्मणों ने सहभोज में सवर्ण हिन्दुओं द्वारा अछूतों के साथ भोजन करने के विरुद्ध मंगलौर (कर्नाटक) के मन्दिर वैकटरमण के धर्माचार्य के पास उस महापाप की शिकायत की, धर्माचार्य ने आदेश जारी कर दिया कि आईदा ऊँची जाति का कोई हिन्दू छोटी जाति के साथ खाना नहीं खाएगा। जिन हिन्दुओं ने अछूतों के साथ खाना खाया था उनसे प्रायश्चित्त करवाया गया। जब धर्माचार्य के आदेश को अदालत में चुनौती दी गई तो जस्टिस रामेसम ने हिन्दू मठाधीश के हुक्म को उचित ठहराया था।"² उपर्युक्त कथन से पता चलता है कि मनुष्य के जीवन में खाना, पानी, घर और कपड़ा आदि

¹ मुक्ति पर्व, मोहनदास नैमिशराय पृष्ठ सं-7

² महानायक बाबा साहेब डॉ. आम्बेडकर, मोहनदास नैमिशराय, पृष्ठ सं 55

बुनियादि चीज है। ऐसी चीजों से ब्राह्मण ने दलितों को दूर कर दिया है। आज भी भारतीय समाज में गाँव या शहर कहीं पर भी जाकर देखिए होटल के सामने बोर्ड दिखता है जैसे- कर्नाटक में वीराशैव खानावली, आंध्रप्रदेश और तेलंगाना में देखा जाए तो ब्राह्मण भोजनालय और पुल्ला रेड्डी मिठाई भण्डार ऐसे आदि नामों से मिलता है। कहीं पर भी चमारों का भोजनालय और महारों की मिठाई ऐसा देखने को नहीं मिलता है।

3.6 राष्ट्रीय संस्कृति

यह बात भारत के स्वतंत्रता पूर्व 1940 की है। भारत के मुसलमान एक अलग राष्ट्र और अपनी संस्कृति चाहते थे। क्योंकि हिन्दुओं में मुसलमानों के बारे में यह मानसिकता बन चुकी थी कि ये विदेशी लोग हैं। “भारत के मुसलमानों में एक राष्ट्र के रूप में रहने की इच्छा विकसित हो गई है, उन्हें एक ऐसा क्षेत्र मिलना चाहिए जहाँ वे रह सकें और अपना एक राज्य स्थापित कर सकें, अर्थात् राष्ट्र को सांस्कृतिक घर बना सकें।”¹ उपरोक्त उद्धरण से समझ सकते हैं कि धर्म ने राष्ट्र का नक्शा बदल दिया है। लोग धर्म के नाम पर अलग-अलग खेमे में बँटने लगे थे।

3.7 दलितों की संस्कृति

भारत देश संस्कृति और धर्म का जन्म स्थान है। इस देश में ईसाई, बौद्ध, इस्लाम और हिन्दू धर्म देखने को मिलते हैं। हिन्दू संस्कृति सवर्णों की संस्कृति है। हिन्दू संस्कृति में दलितों के लिए कोई स्थान नहीं है। सवर्णों की संस्कृति पेट भरी हुई संस्कृति है। दलितों की संस्कृति भुखमरी की है। दलित अशिक्षित होने के कारण सवर्ण पीढ़ी-दर-पीढ़ी उनका शोषित होते रहे। सवर्णों को धन और शिक्षा पर कब्जा था। दलित लोग अज्ञान और असंघठित थे।

दलित संस्कृति श्रमप्रधान संस्कृति है। जो श्रम को मुख्य मानते हैं। जबकि ब्राह्मणवादी संस्कृति परजीवी संस्कृति है। जिसका उद्देश्य दूसरे के श्रम पर अपना अधिकार जमाना है। इनकी रचना के पात्र संस्कृति के इस अंतर को स्पष्ट करते नजर आते हैं। वहीं

¹ महानायक बाबा साहेब डॉ.आम्बेडकर, मोहनदास नैमिशराय, पृष्ठ.स.201

दलित अपने श्रम की बड़ी पूँजी इन कर्मकांडों के मंदिरों में नष्ट कर देते हैं। निःसंकोच कहा जा सकता है कि मंदिरों में आए दान स्वरूप धन का बड़ा हिस्सा दलित समाज के श्रम का होता है। मोहनदास नैमिशराय के ‘वीरांगना झलकारी बाई’ उपन्यास में दलित जाति के लोगों को सुधार ने के लिए पादरी और बौद्ध भिक्षू हर साल गाँव में आते थे। क्योंकि हिन्दू व्यवस्था ने दलित लोगों को धर्म और संस्कृति के नाम पर शोषण कर रखा था। “भारत में दलितों की स्थिति को बहुत नजदीक से देखा था उन्होंने। वे उन्हीं परिस्थितियों में सुधार चाहते थे। महिलाओं की स्थिति तो और भी खराब थी। वे अपने ही घर में दूसरे दर्जे की नागरिक थीं। घर-घर में अनगिनत देवता थे। जिनके भोग की साधन थी वे विराट संस्कृति में सबसे नीचे के पायदान पर थी औरतें।”¹ उपर्युक्त कथन से पता चलता है कि हिन्दू धर्म ने संस्कृति के नाम पर दलितों का तथा दलित स्त्रियों का शोषण किया है।

सुशीला टाकभौरे ने अपने ‘नीला आकाश’ उपन्यास में दलितों की सामाजिक स्थिति और हिन्दू धर्म का प्रभाव, छुआछूत, जातिगत विषमता को कन्हान गाँव के माध्यम से दिखाने की कोशिश की है। “कन्हान महाराष्ट्र का एक गाँव है। कन्हान गाँव सेवानगर में मांग और वाल्मीकि दोनों जाति के लोग पूजा करते थे। उस गाँव की सीमा पर पीपल का बड़ा पेड़ था। जिसके नीचे पत्थर की अनगढ़ मूर्ति को लाल वस्त्र बांधा था। इस देवी को खेड़ापति माता का मंदिर कहा जाता था। गाँव के हिन्दू महाजन यहाँ पूजा करने नहीं आते थे। गाँव के दलित और पिछड़े वर्ग के लोग ही यहाँ पूजा करते थे। दलित पिछड़े वर्ग के लोग स्वयं को यहाँ के मूलनिवासी कहते थे। ग्रामदेवी को स्त्री शक्ति के रूप में पूजते थे। वे शादी शुरू होने से पहले या किसी मंगलकार्य शुरू करने से पहले देवी पूजा जरूर करते थे। देवी को बलि देने की प्रथा जारी थी- “बकरे की करुण पुकार सुनकर, भीकूजी का मन द्रवित हो रहा है। पूजा में बलि देना उन्हें अन्यायपूर्ण लग रहा है। निरीह जानवरों को भी जीने का हक है। उन्होंने निश्चय किया- अब हम इस तरह बलि देने की पूजा नहीं करेंगे, दूसरे लोगों को भी यह बात समझाएंगे। अंधविश्वास से पूर्ण पूजा अनुष्ठानों का हम विरोध करेंगे। वे सोच रहे हैं- आज की इस पूजा में बकरे की बलि को कैसे रोका जाए ?”² उपर्युक्त

¹ वीरांगना झलकारी बाई, मोहनदास नैमिशराय, पृष्ठ सं-26-27

² नीला आकाश, सुशीला टाकभौरे, पृष्ठ सं-50

कथन से पता चलता है कि सेवानगर के लोग अपनी अज्ञानता के कारण अनजान थे। शिक्षा के आभाव ने ही उन्हें अंधेरे में रखा था। जिसके कारण वे धार्मिक अंधश्रद्धा में फंसकर बलि के नाम पर जीव हत्या कर रहे हैं।

‘हिडिम्ब’ उपन्यास में हिडिम्बा देवी का मेला होता है। उस मेला में हिडिम्बा देवी वाक गुर कहता है कि “पंचो ! सुणों ! सर्वनाश होगा.....कुछ नहीं रहेगा....। मेरे देवता नाराज हैं.....दुःखी हैं....मैं कहां जाऊ.....क्या करू.....कहां है मेरी जगह.....मेरी जमीन....मेरे चरांद....मैं कहां अपनी गऊओं को चराऊ....कहां भेड़-बकरियों को ले जाऊ.... वे भूखी मर रही हैं...प्यारी मर रही हैं..... चिड़िया को बैठने तक के लिए पेड़ नहीं रखे.....सुणों पंचो...सुणों....मैं बड़ी दुखियारी हूँ.... मेरा दम घुटता है....तुम मेरे को बेचने पर तुले हो चारों तरफ बेईमानी है.... मैं अपनी जगह लूंगी...चरांद लूंगी।”¹ उपर्युक्त उद्धरण से अवगत होता है कि भारतीय समाज व्यवस्था में धर्म के नाम पर लोगों को धोखा दिया जाता है। जिसके जाल में फंसकर दलित समाज पूरी तरह आर्थिक रूप से भी चूर-चूर हो रहा है। हिडिम्बा देवी के मेले में भगवान रघुनाथ का रथ खींचने की परंपरा है। “हिडिम्बा मान जाएगी तो वहां का राजा रघुनाथ की मूर्ति मंदिर से पालकी में लेकर आएगा और इसके भीतर स्थापित कर देगा। मन्त्रों के साथ पूजा होगी। कई देवता आकर जातर करेंगे। लम्बा रस्सा बांधा जाएगा और हजारों लोग उसे खींचेंगे। जो कोई रस्से में हाथ लगाएगा उसके पाप नष्ट हो जाएंगे। उसे बड़ा पुण्य मिलेगा।”² उपर्युक्त कथन से पता चलता है कि भगवान रघुनाथ रथ खींचने की प्रथा को बनाये रखने के लिए पाप-पुण्य का सहारा लिया गया है। जिसके एवज में लोग अधिक श्रद्धालू बनते जाते हैं। शावणू का परिवार भी तैयार हो जाता है।

‘हिडिम्ब’ उपन्यास में दिखाया गया है कि भारतीय समाज व्यवस्था में बिल्ली रास्ता काटने से अशुभ माना जाता है। शावणू का बेटा कांसी स्कूल से घर नहीं आया था। इसलिए शावणू और सूमा दोनों कांसी को खोजने घर से निकलते हैं। हिडिम्ब उपन्यास में इस तरह वर्णित है- “घर से नीचे उतरते ही बिल्ली ने रास्ता काटा। वह ठिठक गया। सूमा ने

¹ हिडिम्ब, एस.आर. हरनोट, पृष्ठ सं-91

² वही, पृष्ठ सं-93

मुट्टी भर कंकर आगे फेंके और चल दिए थे।”¹ उपर्युक्त कथन से मालूम होता है कि भारतीय समाज में अंधविश्वासों को मानने वालों की कमी नहीं है।

मोहनदास नैमिशराय के ‘जख्म हमारे’ उपन्यास में जाति आधारित श्मशान का मुद्दा उठाया गया है। तानारपुर गाँव में दलितों का श्मशान और सवर्णों का श्मशान अलग-अलग रहता है। “दलितों की शवयात्रा में सवर्णों के शरीक होने का रिवाज न था। गाँव में पहले से ही दो श्मशानों का चलन था। आदमी मर जाता था, लेकिन उसकी जाति नहीं।”² उपर्युक्त उद्धरण से मालूम होता है कि सवर्णों का रिति-रिवाज अगल है। दलितों के रिति-रिवाज अलग है। उसके साथ-साथ श्मशान भी अलग है। जाति का अस्तित्व जन्म से लेकर मृत्यु तक बना रहता है।

मोहनदास नैमिशराय ‘मुक्ति पर्व’ उपन्यास में लिखते हैं कि दलित और सवर्णों की बस्तियों की भी पहचान थी। उनकी बस्तियों के भीतर-बाहर वैसी छाप थी। दोनों की अपनी-अपनी संस्कृति और सभ्यता के गीत होते थे। “समाज में परंपरा ही कुछ ऐसी थी दलितों के हक में गालियाँ थी या फिर हंटर। विकृत संस्कृति हो गई थी उनकी, तभी तो विकृत होकर कमरों को वे मारते-पीटते थे। उनकी संस्कृति में दया नहीं थी, केवल जुल्म था। पीढ़ी-दर-पीढ़ी दलितों ने जुल्म सहा था।”³ उपर्युक्त उद्धरण से मालूम होता है कि दलितों को दस-दस, बारह-बारह घंटे कमरतोड़ मेहनत करनी पड़ती थी। तब जाकर उनके परिवार को रोटी नसीब होती थी। वे गुलाम न थे, पर गुलामों की तरह उन्हें रखा जाता था। दलितों के सुख-दुख से मालिकों का कोई रिश्ता न था। उनका काम था केवल मालिकों का हुक्म बजाना। “बस्ती के लोगों ने जिसे जिताकर नगरपालिका में भेजा था। उसका कहना ही कुछ और था। जिस पर बस्ती के अधिकांश लोगों ने विश्वास कर लिया था, बात ही कुछ ऐसी थी। जाति के सवाल कीड़ों की तरह पूरे शहर में रेंगते थे। वे सवाल एक-एक के भीतर घर कर गए थे। जैसे-जैसे लोगों को इन सवालों का सामना करना पड़ता था, वैसे-वैसे ही कीड़ें कुलबुलाते थे। तब लोगों को अपनी-अपनी जाति, कुल, मर्यादा याद आ

¹ हिडिम्ब, एस.आर. हरनोट, पृष्ठ सं-120

² जख्म हमारे, मोहनदास नैमिशराय, पृष्ठ सं-23

³ मुक्ति पर्व, मोहनदास नैमिशराय पृष्ठ सं-18

जाती थी। फिर वे अपनी महान संस्कृति और वर्ण-व्यवस्था के सामने नतमस्तक हो जाते थे।”¹ सत्ता हासिल करने के बाद दलित पिछड़ों के तरफ कोई देखना भी नहीं चाहता है। वे तो सिर्फ वोट के लिए पहचाने जाते हैं। दलित बस्ती में चौबे मास्टर पढ़ाते हैं। उस बस्ती में स्कूल जानेवालों की संख्या 8 थी, लेकिन रजिस्टर में 25 बच्चों का नाम था। स्कूल में बच्चों की संख्या कम है तो मास्टर की नौकरी खतरे में पड़ गयी। मास्टरनी दमयंती मास्टर को सूचना देती है कि तुम जाकर नेता रामलाल से मिलो। मास्टर से रामलाल कहता है कि “देखिए मास्टर जी, जो लोग समय को नहीं पहचानते वे खत्म हो जाते हैं। वे ही नहीं उनके मूल्य, उनकी परंपराएं और उनकी संस्कृति भी...वे रुक-रुक कर बोल रहे थे। नियम-कायदे सभी कुछ ध्वस्त हो जाते हैं।”² उपर्युक्त उद्धरण से मालूम होता है कि दलितों के मूल्य, परंपरा और संस्कृति सवर्णों से अलग हैं। मोहनदास नैमिशराय के ‘मुक्ति पर्व’ उपन्यास में भारतीय समाज की कुरूपता को दिखाने का प्रयास किया गया है। हर गाँव में दलितों का घर श्मशान और हगना हट जगह पर ही रहता है। गाँव में रहने के लिए गंदी जगह पर दलितों को घर बनाने के लिए ज़मीन दी जाती है। “हर रोज यहाँ कोई न कोई मुर्दा फूँकता। जब कभी पुरवा हवा बहती तो मुर्दा जलने की चिड़ई हगन हट के परिवेश को छूती हुई डोमों के दो-चार घरों तक चली जाती। जैसे इस तरह की बदबू रोकने के लिए डोम परिवार के चार-छह घर कारगार सिद्ध होते थे। उसके बाद शहर शुरू होता था। चमार और डोम शहर की सीमा के इस तरफ रहते थे। उस तरफ सवर्ण रहते थे तो इस तरफ दलित। दोनों की दुनिया अलग थी। उधर बाग-बगीचे थे तो इधर जंगल। उधर बाजार थे, पनघट थे, मंदिर थे, इधर श्मशान, कूड़ाघर, कलालों की दुकानें। दोनों तरफ के अपने-अपने संस्कार थे, और अपनी-अपनी संस्कृति। जब वे एक दूसरे से टकराते तो मारकाट होती। सवर्ण लाठियाँ बल्लम चलाते हुए गालियाँ देते, थूकते, खुले आम पेशाब करते और अपनी उद्‌ण्ड संस्कृति का परिचय देते। फिर भी वे शहर भर में सभ्य कहलाते।”³ उपर्युक्त उद्धरण से स्पष्ट होता है कि दलितों के प्रति सवर्ण कितना अमानवीय व्यवहार करते हैं। सभ्य संस्कृति कहे जाने वाले पशू से भी गए गुजरे व्यवहार का परिचय देते हैं। सदियों से शोषित होना ही

¹ मुक्ति पर्व, मोहनदास नैमिशराय, पृष्ठ सं-39

² वही, पृष्ठ सं-48

³ वही, पृष्ठ सं-65

दलितों की नियति बन गयी है। दलितों की संस्कृति सवर्णों को मनोरंजन करने मात्र रह गयी है।

मोहनदास नैमिशराय 'मुक्ति पर्व' उपन्यास में सुनीत के बारे में बताते हैं कि वह किस तरह जाति व्यवस्था का शिकार बना। सुनीत को गंगाराम हाई स्कूल में एडमीशन मिला था। सुनीत की पढ़ाई के साथ-साथ चिंतन की धारा भी शुरू हुई थी। सुनीत के अध्यापक शिवानंद शर्मा थे। इन्होंने स्कूल में शिव मंदिर बना लिया था। मंदिर से दान-दक्षिणा और ट्यूशन पढ़ाना दो सुविधाएं थी। "पर कुछ ही दिनों में इस स्कूल में छुपी वर्ण-व्यवस्था की भी परत-दर-परत उखड़ने लगी थी। हालाँकि इन परतों को किसी ने खुरचा नहीं था। परत व्यक्ति की हो या समाज की। उनकी सतह जब गर्माने लगती है तो पुरानी परतें अपने-आप उखड़ने लगती हैं। पर यह परत न व्यक्ति की थी और न समाज की। यह परत कुछ विशेष समुदाय की संस्कृति की थी। जो विषमता के आधार पर समूचे समाज पर काबिज थी। पूरे समाज की समता तथा स्वतंत्रता को जिसने लील लिया था।"¹ उपर्युक्त उद्धरण से स्पष्ट होता है कि वर्ण व्यवस्था ने समाज के हर क्षेत्र और हर कोने में देखने को मिलती है।

सुशीला टाकभौरे के 'नीला आकाश' उपन्यास में दलित समाज में दहेज प्रथा न होने की बात है। महाराष्ट्र के कन्हान गाँव में राधा की शादी सिल्लेवाड़ी की कोलमाईन्स के मजदूर नारायण से तय हो गई। राधा की शादी में दहेज की बात नहीं है तो राधा की माँ चन्दरी खुश होती है। बस हल्दी का टीका लगाकर कन्या को विदा कर देना है। चंदरी कहती है कि "दलित जातियों में 'दहेज पद्धति' नहीं है। यहाँ बेटी परिवार के लिए बोझ नहीं होती। मगर कुछ दलित लोग सवर्णों की नकल करते हुए, अपनी झूठी शान दिखाने के लिए, कर्ज लेकर, अपनी बेटी को दहेज के साथ ससुराल भेजते हैं। यह देखकर दूसरे लालची लोग- 'दहेज नहीं दुल्हन चाहिए' की बात छोड़कर 'पहले दहेज, बाद में दुल्हन' का व्यवहार करने लगते हैं। ऐसे लोग मूलनिवासी संस्कृति को भूलकर, स्त्री शक्ति का अपमान करते हैं। ऐसे लोगों पर भीकूजी, चन्दरी और रामकिसन को बहुत गुस्सा आता है-

¹ मुक्ति पर्व, मोहनदास नैमिशराय, पृष्ठ सं-108

स्त्रियां ही समाज और संस्कृति का आधार होती हैं। प्यार स्नेह और सम्मान के साथ, बचपन से उन्हें सबल बनाकर, अपने समाज और संस्कृति को सबल बनाना चाहिए। भीकूजी और चन्दरी लोगों को यह बात समझाते हैं।”¹ उपर्युक्त उद्धरण से मालूम होता है कि एक आदर्श के रूप में यह शादी होती है। भीकूजी की पाँच बेटियाँ थीं। वह दहेज देने की स्थिति में नहीं था। ‘नीला आकाश’ उपन्यास मिथक, परंपरा और रूढ़ीवाद को नकारता है। यह उपन्यास नई दिशा की ओर ले जाता है। चंदरी कहती है कि “चन्दरी कभी हास्य व्यंग्य के साथ यह भी सोचती- मैंने तो सीता की शादी लक्ष्मण से कर दी। अब चाहे दुनिया कुछ भी कहे। राधा की शादी मोहन से तो कभी हुई ही नहीं थी। वे तो बस ऐसे ही प्रेमलीला करते हुए, रास रचाते थे। शिव पार्वती की तो कथा ही न्यारी है। एक पुत्र पाने के लिए पार्वती को बरसों तपस्या करनी पड़ी थी। यह भी कोई जीवन है? अरे, पति पत्नी तो वे होते हैं, जो हमेशा हँसी-खुशी साथ-साथ रहते हैं। लक्ष्मी जी भी बस नारायण के पैर दबाती हैं। राम ने भी सीता को कौन सा सुख दिया? ये तो सारी दुनिया जानती है। फिर हम क्यों ऐसे नाम के पीछे भागें? अच्छा हुआ, मैंने पुरानी परम्पराएँ ही तोड़ दी। ऐसे जोड़ियाँ बनना था, सो बन गई। अगर किसी भगवान को ऐतराज होता, वे ऐसा नहीं होने देते। अब तो यही सच है- शायद भगवान कहीं है ही नहीं और बदलना चाहें तो सब कुछ बदला जा सकता है।”² उपर्युक्त उद्धरण से मालूम होता है कि पुरानी परंपरा और आदर्श को यह उपन्यास नकारता है।

एस.आर.हरनोट ने ‘हिडिम्ब’ उपन्यास में शावणू की वेश-भूषा, रहन-सहन संस्कृति में एक अलग पहचान दी है। यह उपन्यास हिमाचल प्रदेश के दुर्गम अंचल क्षेत्र का परिवेश है। “शावणू समझता था कि समय पहले जैसा नहीं रहा। उन तो उनकी संस्कृति है। साथी है। जरूरत है। घर की खेती है। मर्द हो या औरत, सभी अपनी-अपनी तरह से पहनते हैं। हाथ से काती उन के कितने ही सूट उनकी दरोठियों में पड़े होंगे। उसी का कुरता, उसी का पाजामा उसी की सदरी और उसी की घरवाली किन्हीं खास मौकों पर पहनती थी। शायद

¹ नीला आकाश, सुशीला टाकभौरै, पृष्ठ सं-53

² वही, पृष्ठ सं-55

ही उसने कभी बाजार से खरीदा कपड़ा पहना होगा।”¹ उपर्युक्त कथन से पता चलता है कि हिमाचल प्रदेश की दुर्गम पहाड़ियों में ऊन के कपड़े पहनने की संस्कृति है कुछ विशेष संदर्भ में भी इस कपड़ों को पहनने का रिवाज है।

3.8 विवाह

विवाह के बारे में वेस्टरमार्क लिखते हैं कि “विवाह एक या अधिक पुरुषों और एक या अधिक स्त्रियों के बीच स्थापित हो जाने वाला एक ऐसा सम्बन्ध है जिसे कानून या प्रथा की स्वीकृति मिल जाया करती है और जिसके माध्यम से आपस में जुड़ने वाले पक्षों और उनके योग से उत्पन्न होने वाली सन्ततियों, तथा पति-पत्नी दोनों ही के पारस्परिक कर्तव्यों और अधिकारों को परिभाषित किया जाता है।”² उपर्युक्त उद्धरण से मालूम होता है कि विवाह के अन्तर्गत परिवार के ही कुछ पक्षों का समावेश होता है।

नन्दलाल भारती के ‘अमानत’ उपन्यास में बालविवाह, अनमेल विवाह प्रथा को दिखाया गया है। विद्यावती ब्याह के समय नौवीं कक्षा में पढ़ रही थी। होनेवाला पति बैजू बहुत ज्यादा उम्र का था। और उसके साथ-साथ एक पैर से अपाहिज भी। ये बात विद्यावती के घर वालों को पता चलने पर घर में सब दुःखी हो जाते हैं। सच्चिदानन्द की पत्नी धनवन्ती कहती है कि “जब पता लगा था कि बैजू का एक पैर सही नहीं है तो, ब्याह ही नहीं करना था। ब्याह से लड़की को उठा देना था। लंगड़े से तो बिल्कुल ब्याह नहीं करना था। एक बीसा ना खेतीबारी ना नौकरी धंधा ना जाने बाबूजी की अक्ल कैसे मारी गयी थी। बेरोजगार अपाहिज और कंगाल लंगड़े के हवाले कर दिये भोलीभाली विद्यावती को काश मैं रही होती, ब्याह कतई नहीं होने देती।”³ विद्यावती की सगाई हो गयी थी। वह असहाय स्थिति में थी। शादी के बाद विद्यावती बैजू के घर में रहने लगी थी। मीठू का बेटा सच्चिदानन्द पिता गलती के कारण अपने-आप को दोषी मानता है जैसे- “बैजू के घर जाकर मेरी बहन की किस्मत उजड़ गयी। बेचारी जितने दिन जीवित रही। मर-मर के

¹ हिडिम्ब, एस.आर. हरनोट, पृष्ठ सं-53

² हिन्डू समाज की व्यवस्था, पनघारीनाथ एच.प्रभु, पृष्ठ सं.-179

³ अमानत, नन्दलाल भारती, पृष्ठ, सं.-21

जीवित रही। मरी भी तो दुर्दशा हो गयी थी।”¹ उपर्युक्त कथन से पता चलता है कि सच्चिदानन्द ने अपनी बहन की शादी करने के लिए जमींदारों के खेत में काम करता है। लेकिन उसके परिवार वालों की गलती के कारण उसकी बहन की जान चली जाती है। जिसके लिए वह बहुत ज्यादा दुःखी हो जाती है।

सत्यप्रकाश के ‘जस तस भई सबेर’ उपन्यास में सुमेधा के घर वाले अपनी ही जाति का लड़का सुशान्त से शादी करना चाहते हैं। प्रो.दत्त प्रोफेसर होने पर भी जाति का समर्थन करते हैं। सुशान्त प्रो.दत्त का भाँजा है। शिवदास दलित जाति से है। जब सुमेधा भाग कर शादी करने की बात करती है तब शिवदास कहता है कि “सुमेधा यह तो समस्या का समाधान नहीं है। परिस्थितियों से घबराना और समाज से भागना कायरता है। वैसे भी यह समस्या मात्र व्यक्तिपरक नहीं है। यह सामाजिक समस्या है। इसके पूरे निवारण के लिए समाज से डटकर मुकाबला करना चाहिए क्योंकि पलायन से अन्तर्जातीय विवाहों को बढ़ावा नहीं मिल सकता।”² उपर्युक्त कथन से पता चलता है कि प्रो.दत्त शिक्षित होने पर भी जाति को मानता है। वहीं शिवदास डॉ.अम्बेडकर के विचारों पर चलने वाला एक बुद्धिजीवी नज़र आता है।

3.8.1 अन्तर्जातीय विवाह

डॉ.अम्बेडकर का मानना था कि सामाजिक असमानताओं को दूर करने के लिए अंतर्जातीय विवाह एक माध्यम है। जिसके चलते जाति का विनाश हो सकता है। आक्रोश उपन्यास में अंतर्जातीय विवाह का संदर्भ मिलता है। भज्जू राम (बी.राम) दलित और गरीब परिवार से है। वह कानपुर से बी.टेक करने के बाद इन्जीनियर की पोस्ट पर नौकरी आरम्भ करता है। नौकरी होने के बाद अपने जाति के लोग शादी करने के लिए तैयार हो जाते हैं। लेकिन बी.राम अन्तर्जातीय विवाह कर लेता है। बालदीन उमा को अंतर्जातीय विवाह के बारे में समझाता है - “उमा अन्तरजातीय विवाह का यह आदर्श दलितों के लिए बहुत ही घाटे का सौदा है! ऐसे विवाहों से दलितों के घर पूँजी और उनकी अस्मिता का लोप हो

¹ अमानत, नन्दलाल भारती, पृष्ठ,सं.-21

² जस तस भई सबेर, सत्यप्रकाश, पृष्ठ सं-82

जाता है! जाति जैसी दलित की पहली थी वैसी ही रहती है! अन्तर्जातीय विवाह कर कोई दलित यह समझे कि वह ब्राह्मणी या बनैनी के साथ शादी कर ब्रह्मण या बनिया हो जाएगा तो वह उसकी भूल है, महाभूल है उमा! जाति का निर्धारण हिन्दू समाज व्यवस्था में जन्म से होता है! बी.राम जैसे कितने ही अधिकारी या नेताओं की जातीय अस्मिता में क्या अन्तर्जातीय विवाहों से कोई बदलाव समाज में आते देखा गया है? गरीब घर की पूँजी का दोहन होता है अन्तर्जातीय विवाहों से। बी.राम जैसे कितने ही दलित अन्तर्जातीय विवाह कर धोबी के कुत्ते की स्थिति से भी बदतर न घर के न घाट के रहे! अछूत गरीब मां बाप घर की खून पसीने, मेहनत मजदूरी, कमर कसाई पूँजी के बल पर इंजीनियर बने बी.राम जैसे युवकों को अन्तर्जातीय विवाहों के भंवरजाल में फंसने से पूर्व अपने पारिवारिक दायित्वों का निर्वहन कर घर की स्थिति को मजबूत करना चाहिए था! गाँव समाज और घर तक के लोग ऐसे लोगों के बारे में यह सोचने को मजबूर होते हैं कि इससे तो बिना पढ़ा-अच्छा होता कम से कम घर से दूर तो न जाता, बुढ़ापे में कुछ सहारा तो देता! घर का नाश तो नहीं होता!!”¹ उपर्युक्त कथन से पता चलता है कि बी.राम गुप्ता जी की बेटी भानुप्रिया से अन्तर्जातीय विवाह कर लेता है। और दो बेटों का जन्म होता है। उसने अछूत जाति का पूरा लाभ उठाकर एस.सी.के प्रमाण पत्र से शिक्षा से नौकरी तक फायदा उठाया। बड़ा लड़का डाक्टर बना, दूसरा लड़का इंजीनियर बन गया। भानुप्रिया दोनों बेटों का अपने वैश्य जाति की लड़कियों से शादी करवाती है। बी.राम को दलित होने के कारण भानुप्रिया और दोनों बेटे मिलकर घर से बाहर निकालते हैं।

3.8.2 दहेज प्रथा

आज दहेज प्रथा का भयंकर रूप सामने आ रहा है। जिसके चलते आये दिन कई लड़कियाँ अपनी जान गवां रही हैं। ‘अमानत’ उपन्यास में सच्चिदानन्द दहेज के बारे में धनवन्ती से कहते हैं कि “ब्याह का तो मुझे नहीं मालूम। हां गौने का दहेज मालूम है। बस एक छुई मुई सी दुल्हन। वह तुम हो बस बाकी तो शायद ही कुछ मिला हो मैं तो नहीं बता सकता। दुल्हन ही दहेज है वह तुम हो उसी को मैं मानता हूँ और जीवन भर साथ निभाऊंगा

¹ आक्रोश, रघुवीर सिंह, पृष्ठ सं.-374-375

ऐसा मेरा वादा रहा उस दुल्हन से जो अब धीरे धीरे बूढ़ी हो चली हैं।”¹ उपर्युक्त कथन से पता चलता है कि सच्चिदानन्द दहेज प्रथा को समाज में बीमारी के रूप में देखता है और उस बीमारी को समाज से मिटाने की भरपूर कोशिश करता है।

‘आक्रोश’ उपन्यास में हरबीर से गाँव के प्रधान गुप्ता जी कहते हैं कि “नहीं भाई पैसा मुझे अब चाहिए, नहीं तो खेत जो तुमने ब्याज में रखा है उसका बैनामा करवाओ। पैसा कोई कम नहीं है, पुरे बारह हजार बैठते हैं। मुझे भी तो अपनी लड़की की शादी इसी वर्ष करनी है। लड़के वाला एक लाख रुपये से कम नहीं लेगा, लड़का इन्जीनियर है, उसका बाप कार की भी कह रहा है। अब भाई इन्तजाम तो मुझे भी करना पड़ रहा है, बातें भी चल रही है। कुछ तुम जैसे लोग दोगे, कुछ अपनी तरफ से भी करूंगा। मुझे भी तो इधर-उधर से करके लड़की की शादी करनी है।”² रामसिंह की बहू दहेज लेकर नहीं आती और एक साल के अन्दर माँ नहीं बनने के कारण सास भगवन्ती बहू की पिटाई करती है। रामसिंह अपनी पत्नी भगवन्ती से कहता है कि “अरे भगवन्ती, यह अच्छी बात नहीं, इस बहू को ताने मार-मारकर क्या मार ही देगी। क्या तेरी लड़की नहीं है ? यदि तेरी लड़की की हालत इस तरह से हो, जैसी कि तूने इस बहू की कर रखी है तो तेरे दिल पर क्या बीतती। इसको भी अपनी लड़की ही समझ, उसी तरह से प्यार दुलार दे, जिस तरह से एक माँ अपनी बेटी को देती है। इन्सानों जैसा बर्ताव कर, जानवरों जैसा नहीं। मैं इससे अधिक बात सुनने का आदि नहीं हूँ और इस बहू के सामने ज्यादा कुछ कहना भी नहीं चाहता।”³ उपर्युक्त कथन से पता चलता है कि भगवन्ती अपने बहू से सुबह चार बजे से लेकर रात ग्यारह-बारह बजे तक घर का काम करवाती है। और वह निस्संतान होने के कारण उसे शारीरिक यातनाएँ देती रहती है। दहेज पूरा न चुकाना एक मुख्य कारण है।

3.8.3 लोक गीत

लोक परंपरा में लोकगीत का बहुत बड़ा महत्व है। दलित आदिवासी समाज में लोकगीतों के माध्यम से ही अपनी कथा व्यथा सुनाया करते थे। इन लोक गीतों में

¹ अमानत, नन्दलालराम भारती-पृष्ठ, सं.-19

² आक्रोश, रघुवीर सिंह, पृष्ठ सं.-104

³ वही, पृष्ठ सं.-112-113

मनोरंजन के साथ-साथ सामाजिक बुराईयाँ, संस्कृति, आचार-विचारों का संगम मिलता है। ‘हिडिम्ब’ उपन्यास में दलितों की लोकगीत की परंपरा देखने को मिलती है। दशहरा त्यौहार के अवसर पर शावणू, पत्नी सुरम देई और बेटी सूमा घर की लिपाई-पुताई करते हुए गीत गाने लगते हैं-

“दुराणिए लिपेया औबरा

जेठाणिए जो गई घसराठ

तेसा चपणी रा हुआ चकनाचूर

कि बहुआ जो दिता बनवास

(देवर की पत्नी ने निचले कमरे को लीप दिया। जेठानी बेचारी उस गोबर से लिपे फर्श पर फिसल गई। उसके हाथ में पांव साफ करने की मिट्टी की चपणी थी। वह टूट कर चकनाचूर हो गई। सास ने इस पर बहू को बनवास दे दिया।)।”¹

काम करते हुए संदर्भानुसार गाने की कला सिर्फ इन लोकगीतों में ही होती है।

“खीर गंगा रा जायरु, नीला ब्यासा रा पाणी

फूला सेही थी होलकी, गोला थी विन्हिया लाणी,

हांइए भियाणिए

(खीर गंगा का चश्मा, नीला ब्यास का पानी। तू तो फूलों की तरह सुन्दर और हल्की थी, तुझे गले में हार की तरह पिरो दूँ)।”²

सुंदरता का वर्णन इन लोक गीतों में सहज सौन्दर्य का आनंद देता है।

‘हिडिम्ब’ उपन्यास में नायक शावणू के पिता हिडिम्ब देवी को बलि चढ़ाना अमानवीय संस्कृति का परिचय है। “नड़ को अब मरना था। उसकी मृत्यु का विशेष उत्सव

¹ हिडिम्ब, एस.आर. हरनोट, पृष्ठ सं-79

² वही, पृष्ठ सं.-89

प्रारम्भ हो गया था। उसे अब यज्ञोपवीत धारण कराया गया। उसमें एक धर्म लकड़ी बांधी गई। एक बार फिर से सभी देवता वेदी के चारों तरफ नाचने लगे थे। नड़ को बीच में बैठा दिया गया। अब गालियों और अश्लील हरकतों की रस्म शुरू हो गई थी। वह देवता और कारकुनों के साथ गूरों, पुजारियों और दूसरे लोगों को गालियाँ देने लगा था।”¹ यह समाज कौनसी संस्कृति को अपना रहा है। एक इन्सान को मारने की परंपरा इस समाज में बनी-बनाई, रुढ़ और अंधाविश्वास द्योतक है।

3.9 मुस्लिम संस्कृति

भारतीय समाज भिन्न संस्कृतियों का संगम माना जाता है। यहाँ सिर्फ हिन्दू संस्कृति ही नहीं बल्कि मुसलमानों की संस्कृति भी विद्यमान है। मुस्लिम संस्कृति का परिचय हमें कुछ दलित उपन्यासों में भी मिलता है। डॉ. विजयी ने ‘सैनिक का खून’ उपन्यास में दिखाया है कि साम्प्रदायिता के कारण ही हिन्दुस्तान से पाकिस्तान अलग हुआ। “हम संस्कृति एवं सांप्रदायिक मनमुटावों के कारण हिन्दुओं से किसी प्रकार का समझौता नहीं कर सकते। जिस भारतवर्ष पर हमारे पूर्वजों ने शासन किया, उसमें हम अल्पसंख्यक बनकर नहीं रहेंगे।”² उपर्युक्त उद्धरण से मालूम होता है कि स्वतंत्र पूर्व मुस्लिम भारत पर शासन किये थी।

डॉ.रामस्वरूप संखवार के ‘भगोड़ू पुजारिन’ उपन्यास में रिचा सिंह ने ‘एक विश्व’ विचारधारा से जब हर देश के प्रधान मंत्री को पत्र देने रोबोट से चली थी। कुछ प्रगतिशील देशों में शादी प्रथा को विरोध करते हुए बिना शादी के जीवन का सर्वांगीण आनंद ले रहे थे। “विशेष रूप से मुस्लिम स्त्रियां। इसका कारण भी था, मुस्लिम स्त्रियां धार्मिक कट्टरपंथ के कारण घर में बंद रहती। बाहर निकलती भी तो बुर्का के अंदर। वे स्वतंत्रता पूर्वक घूम-फिर नहीं सकती। जीवन का आनंद नहीं ले सकतीं। यद्यपि खुदा की तरफ से ऐसा कोई प्रतिबंध नहीं था, परन्तु मनुष्य ने अपनी मूर्खता या श्रेष्ठता प्रमाणित करने के लिए स्त्री जाति को परतंत्र कर दिया।”³ उपर्युक्त उद्धरण से मालूम होता है कि मुस्लिम समाज में जो

¹ हिडिम्ब, एस.आर. हरनोट, पृष्ठ सं-43

² सैनिक का खून, डॉ.विजयी, पृष्ठ सं.-13

³ भगोड़ू पुजारिन, डॉ.रामस्वरूप संखवार, पृष्ठ सं.-94

लड़कियाँ बिना शादी के सर्वांगीण आनंद लेनेवाली लड़कियों को मुस्लिम कट्टरपंथियों ने हत्या कर दी है।

3.10 विश्वास

3.10.1 समाज में अंधविश्वास

भारतीय समाज में अंधविश्वास प्राचीनकाल से है। खासतौर पर भारतीय गाँवों में लोग आज भी अंधविश्वास को मानकर फँसे रहते हैं। इससे मालूम होता है कि पिछड़े हुए समाज में अनेक अंधविश्वासों का अस्तित्व है। जिस समाज या लोगों में साक्षरता कम हो समुचित ज्ञान का अभाव हो, ऐसे समाज में अंधविश्वास होना स्वाभाविक है। इस संदर्भ में रुपनारयण सोनकर अपने ‘सूअरदान’ उपन्यास में अंधविश्वास के बारे में संकेत करते हैं कि “आज भी भारत देश में दो तरह के समाज रहते हैं। एक अंधविश्वासी दूसरा अंधविश्वासों से मुक्त। अंधविश्वासी समाज अन्धा होता है। उसे कोई भी नई चीज जो जनकल्याणकारी हो बिल्कुल नहीं दिखायी पड़ती है। विज्ञान परस्त सिरस्त समाज को हर नई चीज दिखायी पड़ जाती है। उसमें इतना प्रकाश होता है कि सारे समाज को चमत्कृत कर देता है।”¹ उपर्युक्त कथन से पता चलता है कि समाज में अंधविश्वास किस रूप में लोगों को प्रभावित कर रहा है। अंधविश्वास मुक्त समाज के निर्माण में विज्ञान परस्त समाज का योगदान आवश्यकभावी है।

पुजारी मुरलीधर पार्टी में दारू पीकर नशे में सड़क पर सो जाता है। सुबह कुत्ता मरलीधर के मुँह पर मूत करता है। इस दृष्य को उनकी पत्नी राधा देखती है और इस दृष्य को लेकर मुरलीधर राधा को डांटता रहता है तब रामू आकर कहता है कि “गुस्से को पी जाओ पुजारी महाराज! यह तो मूत पीकर छक गया है, गुस्सा क्या पियेगा हरामी का पिल्ला! चूहा कहीं का!! औरत पर बहादुरी दिखाता है।”² उपर्युक्त उद्धरण से स्त्री के प्रति पुजारी मुरलीधर के मानसिक सोच को समझ सकते हैं। वह अपनी इस हरकत पर शर्म

¹ सूअरदान, रुपनारण सोलनकर पृष्ठ सं-145

² भगोड़ पुजारिन-डॉ.रामस्वरूप संखवार, पृष्ठ. सं.-12

करने की बजाय अपनी पत्नी पर हाथ उठाता है। गाँव में इस घटना को लेकर घसीटा कहता है कि “यह तो मैं नहीं जानता परंतु यह बात सभी लोगों के मुख से निकल रही है कि सुबह-सुबह पुजारी मंदिर के चबूतरे पर लेटे-लेटे कुत्ते का मूत पी रहे थे कुछ लोग तो यहाँ तक कहते सुने गये कि पुजारी तो प्रतिदिन प्रातः कुत्ते का मूत पीते हैं। कुछ स्त्रियाँ फुसफुसा कर कह रही थी कि कुत्ते का मूत पीने से स्वर्ग मिलता है।”¹ इस घटना को लेकर पुजारी मुरलीधर गाँव में पंचायत बैठाता है। अपने इस अपमान का बदला लेने के लिए पंचायत में एक वृद्ध कहता है कि “भारत के प्रधान मंत्री मुरार जी भाई भी तो मूत पीते थे। यदि हमारे ब्राह्मण देवता पुजारी महाराज ने मूत पी लिया तो कौन सा आसमान टूट पड़ा।”² उपर्युक्त कथन से पता चलता है कि अंधविश्वास सिर्फ सामान्य लोगों तक ही सीमित नहीं रहा यह अंधविश्वास सभी कथित समाजों में विद्यमान है। अगर अंधविश्वासों का पालने स्वयं प्रधान मंत्री ही करने लगे तो समझ सकते हैं कि उस की जड़ कितनी मजबूत है।

डी.पी.वरुण के ‘रक्त का रिश्ता’ उपन्यास में गंगू चौधरी ईश्वर को बहुत मानता है। गंगू चौधरी संतान के लिए पूजा-पाठ और अंधविश्वासों का सहारा लेता है। गंगू चौधरी और रामा दोनों के दाम्पत्य संबंधों के बारे में डॉक्टर सुषमा रामा से कहती है कि “अरी पगली, यह ईश्वर की मजी नहीं है। यह तो तुम दोनों में से एक की कमी मालूम पड़ती है। अच्छा यह बता कि तेरा गूंगा किसी दूसरी औरत को तो नहीं रखे है ? उसी के पास रहता हो और तुझ से बोलता भी न हो।”³ उपर्युक्त बात के बाद रामा डॉक्टर. सुषमा से कहती है कि “नहीं डाक्टर साहब वे ऐसे नहीं हैं। वे तो बेटे के लिए बड़े बेचैन घूमते हैं। न जाने कितनी बार तो गंगा नहा आये, मुझको भी ले गये। बड़े-बड़े मन्दिरों में पूजा कर ली, दर्शन कर लिये, कथा करा ली, मगर कुछ भी नहीं हुआ।”⁴ उपर्युक्त कथन से पता चलता है कि डॉक्टर सुषमा रामा को समझाती है कि संतान ईश्वर और पूजा-पाठ से नहीं होती है। स्वास्थ्य और पति-पत्नी के दाम्पत्य संबंध से संतान होती है। रामजी लाल से डॉ.सुषमा कहती है कि “मैंने ठीक कहा। यह बिल्कुल सत्य है कि बच्चे माँ-बाप की देन है। इसमें

¹ भगोड़ पुजारिन, -डॉ.रामस्वरुप संखवार, , पृष्ठ. सं.-13

² वही, पृष्ठ. सं.-13

³ रक्त का रिश्ता, डी.पी.वरुण, पृष्ठ सं.-8

⁴ वही, पृष्ठ सं.-8

ईश्वर कहाँ से आ गया? अगर पति अपनी पत्नी के पास नहीं जायेगा तो बच्चे कैसे हो जायेंगे? जब खेत में बीज ही नहीं बोया जायेगा तो उगेगा कैसे? अगर तुम्हारा विवाह न होता तुम्हारी पत्नी का भी विवाह न हुआ होता तो क्या उसके बच्चे हो जाते? जो लोग इस अन्धविश्वास में पड़े हैं उनका भविष्य अवश्य ही अन्धकारमय है। सुखी परिवार के लिये सच्चाई का सहारा लेना होगा। हाँ आपने धर्मग्रन्थ की बात कही। ऐसा कोई भी ग्रंथ नहीं है तो बच्चों को ईश्वर की देन कहता हो। अगर कोई ग्रंथ ऐसा कहता है तो वह झूठ है। ऐसा ग्रंथ आप जैसे अन्धविश्वासी का ही लिखा होगा।”¹ लेखक सुषमा के माध्यम से समाज में फैले अंधविश्वासों के प्रति बिगुल बजाती हैं। वह सहज और वैज्ञानिक व्यवहार का समर्थन करते हैं।

डी.पी.वरुण के ‘रक्त का रिश्ता’ उपन्यास में धामपुर गाँव की पिछड़ी मानसिकता और अंधविश्वास का चित्रण दिखाई देता है। इस गाँव के दलित समाज एवं महिलाओं को इन अंधविश्वासों और पुरानी रूढ़ियों से मुक्त करने के लिए डॉ.सुषमा निरंतर प्रयत्न करती है। इस गाँव में डॉ.सुषमा गाँव के लोगों से कहती है कि “यह सरासर एक धोखा है, झूठ है कि हम सबका पहला जन्म था और पहले जन्म के कामों का फल हम इस जन्म में भुगत रहे हैं और इस जन्म के कामों का फल अगले जन्म में भुगतेंगे। अगर मेरे पिता ने मुझे न पढ़ाया होता तो मैं डॉक्टर कैसे बनती ? हर काम का फल यही मिलता है। अगर जमीन को ठीक तरह से तैयार करके गेहूँ बोओगे तो गेहूँ की अच्छी फसल होगी। अगर जमीन को बिना बोये छोड़ दोगे तो कुछ नहीं उगेगा। इस जन्म के धर्म का फल यही मिलता है अगले जन्म की बात या पिछले जन्म की बात बिल्कुल मिथ्या है। इस पर तनिक भी विश्वास नहीं करना चाहिए। जिसने विश्वास किया है या विश्वास कर रहा है वह कभी तरक्की नहीं कर सकता है। यह अन्धविश्वास उसकी तरक्की का रोड़ा है।”² ब्राह्मणवादी मानसिकता ने परंपरा और भगवान के नाम पर पाप-पुण्य, स्वर्ग-नरक जैसी अलौकिक बातों पर जोर देकर इस भोली-भाली जनता को मूर्ख बना दिया है।

¹ रक्त का रिश्ता, डी.पी.वरुण, पृष्ठ सं-14

² वही, पृष्ठ सं.-15

अजय धर्म को लेकर भारतीय समाज व्यवस्था में सवर्ण मानने वालों से सवाल करता है। दलित समाज हिन्दू धर्म को मानता है तो सवर्ण समाज दलितों को क्या दे रहा है। अजय कहता है कि “मुझे तुम क्या दे रहे हो जब मैं तुम्हारे समाज में हूँ, तुम्हारे ही धर्म को मानता हूँ। मुझे मिल रहा है घोर तिरस्कार, अपमान और मानसिक वेदना। जो हिन्दू धर्म को छोड़कर अन्य धर्मों में चले गये हैं उनको आप बराबरी के सभी अधिकार दे रहे हैं तो हम भी क्यों न तुम्हारे धर्म को छोड़कर दूसरा ही धर्म स्वीकार ले ताकि तुम हमको भी बराबर मानने लगे।”¹ उपर्युक्त उद्धरण से स्पष्ट होता है कि अजय हिन्दू धर्म पर सावल उठाता है। धर्म तो एक ही है, फिर जाति में भेद-भाव क्यों है? ऊँच-नीच क्यों माना जाता है? डी.पी.वरुण अपने ‘रक्त का रिश्ता’ उपन्यास में सवर्ण मानसिकता का चित्रण हुआ है। कॉलेज में सवर्ण लड़के ने अजय की तस्वीर बनाकर नीचे गंदी-गंदी गालियाँ लिखकर अजय का अपमान करता है। उस अपमान से अजय कॉलेज छोड़कर घर आ जाता है। डॉ.सुषमा अजय को समझाकर कहती है कि “अजय, तुम बहुत कायर हो। इन चन्द गुन्डों से घबरा गये। थोड़े से अपमान से उद्विग्न हो उठे। तुम्हारे मस्तिक में बेचैनी छा गई मगर सोचो इन बेचारे ग्रामीणों की हालत जो रात दिन अपमानित, उत्पीड़ित एवं शोषित होते रहते हैं।”² डॉ.सुषमा आगे डॉ.अम्बेडकर का उदाहरण देते हुए कहती है कि “डॉ.बी.आर अम्बेडकर को हिन्दुओं ने धार्मिक एवं सामाजिक कुरीतियों के कारण अपमानित किया तो उन्होंने हिन्दू धर्म एवं समाज को बहुत सी बुराइयों पर करारा प्रहार किया और अन्ततोगत्वा हिन्दू धर्म को ही लाखों साथियों सहित सदा-सदा के लिए त्याग दिया। तुम एक प्रतिभाशाली युवक हो, साहसी हो और होनहार भी।”³ उपर्युक्त उद्धरण से मालूम होता है कि भारतीय हिन्दू समाज व्यवस्था में रहना है तो साहसी, निडर और बुलंद होकर रहना होगा वरना यहाँ धर्म के नाम पर बलि चढ़ा देगा।

सत्यप्रकाश के ‘जस तस भई सबेर’ उपन्यास में हंसा दलित समाज अंधविश्वास में पूरी तरह फँसा हुआ है। हंसा जो भी हादसा होता था, उसे देवता का ही क्रोध समझता था।

¹रक्त का रिश्ता, डी.पी.वरुण, पृष्ठ सं.-32

² वही, पृष्ठ सं.-33

³ वही, पृष्ठ सं.-33

एक बार हंसा की एक भैंस बीमार पड़ जाने पर देवी कृपा के कारण इलाज कराना उचित नहीं समझता है। झाड़-फूँक कराया, पर वह उससे कुछ नहीं हुआ, भैंस ने दम तोड़ दिया। कुछ दिन बाद हंसा की पत्नी सुनहरी खेत की मेंड से फिसलकर गिरने के कारण दायी टाँग टूट जाती है जिस पर महीनों पलस्तर चढ़ी रही। इन सारी बुराइयों व घटनाओं को देवी का ही क्रोध मान लेता है और सोचने लगता है कि जात में कोई कमी तो नहीं हुई जिसके कारण देवता ने अग्रह दिखाया। अलगे दिन भगत जी के पास गया तो भगत कहता है कि “आज रात मैं एकांत में देवता से बात करूँगा। सुबह आकर पता कर लेना। इस समय निश्चित होकर घर चला जा। चिन्ता करने की कोई बात नहीं है। मैं सब संभाल लूँगा। आखिर तो गलती इन्सान से ही होती है।”¹

3.10.2 शुभ-अशुभ

भारतीय समाज की संस्कृति में अंधविश्वासों के कई रूप हमारे सामने प्रस्तुत हैं जिनमें से शुभ-अशुभ, मंगल-अमंगल भी है। सच्चिदानन्द जब शहर में काम करने के लिए तैयार हो रहा था, तब उनकी मां सुमारी देवी सोखा पण्डित से कहती है कि “बेटा आज का दिन शुभ नहीं है। आनन फानन में सच्चिदानन्द का शहर जाना रद्द हो गया अच्छा मुहूर्त नहीं होने के कारण।”² उपरोक्त उद्धरण से पता चलता है कि लोग किस मानसिकता से ग्रस्त है। वह हर छोटे-मोटे काम की शुरुआत के लिए शुभ दिन का मुहूर्त ढूँढ़ने रहते हैं।

3.10.3 भूत चढ़ना

हिन्दू संस्कृति डायन, भूत चढ़ना, कालाजादू, टोना-टोटका जैसी घोर अंधविश्वासों से भरा पड़ा है। इन अनैतिक विश्वासों से कितने दलित आदिवासी महिलाएँ और पढ़े-लिखे समाज की हत्या की जा रही है। ‘हिडिम्ब’ उपन्यास में भूत के नाम पर मास्टर ने कांसी राम की हत्या करने पीछे गाँव का प्रधान, सेक्रेटरी और ठेकेदार का षड़यंत्र है। जमीन के लिए

¹ जस तस भई सबेर, सत्यप्रकाश, पृष्ठ.सं.-19

² अमानत-नन्दलालराम भारती-पृष्ठ.सं.-54

कांसी राम की हत्या की जाती है। “कुछ दिनों बाद लोगों ने एक अफवाह जरूर सुनी थी कि मास्टर पर कोई भूत चढ़ गया है। जब भी वह क्लास में बच्चों को पढ़ाता तो अचानक ऊधने जाता। उसके हाथ से किताब छूट जाती।”¹ उपर्युक्त उद्धरण से स्पष्ट होता है कि मास्टर पर भूत चढ़ने का आरोप लगाना सिर्फ एक नाटक था। जमीन को हड़पने के लिए रचा गया षड़यंत्र मात्र है।

‘काहिका’ उत्सव बारह वर्ष में एक बार मनाया जाता था। ‘काहिका’ उत्सव में नड़ जाति का मुख्य पात्र होता था। ‘काहिका’ उत्सव शावणू का पिता निभाते थे। “सभी देवता और लोग नड़ और नड़न से आशीर्वाद लेने आए थे। हर प्रकार के पापों से मुक्ति प्राप्त करने आए थे। जिसने आज तक के जीवन में जो भी बुरा किया....गऊ हत्या की....नर हत्या की ब्राह्मण हत्या की बिल्ली की हत्या की.... किसी दूसरे जानवर की हत्या की कोई जाने-अनजाने पक्षी, बंदर या कुत्ता मार दिया हो लड़ाई-झगड़ा कर दिया हो.... रिश्त खड़ा हो.... पर स्त्री भोग किया हो.... उसको सब माफ। झूठी कसमें माफ.... धोखा-धड़ी माफ.... किसी को भूत, प्रेत, डाकिनी, शाकिनी, राक्षास सता रहा हो, उससे सभी मुक्त। लोगों के मानसिक कष्ट दूर..... शारीरिक कष्ट दूर.... आर्थिक कष्ट दूर....यानी काहिका और नड़ सभी मर्ज की दवा।”² उपर्युक्त उद्धरण से मालूम होता है कि अंधविश्वास की परंपरा दूर-दूर तक फैल चुकी है सब अपने सुख-दुःख, कष्ट-नष्ट और पाप-पुण्यों से उनसे निजात पाने के लिए अंधविश्वास का सहारा लेते नज़र आते हैं।

3.11 परंपरा

‘मुक्ति पर्व’ उपन्यास में सदियों से चली आ रही अंधविश्वास और परंपरा की ओर लेखक संकेत करते हैं कि “आज शुभ मुहूर्त देख पण्डित जी घर से निकले थे। किसका मुँह देख लिया जो बनते-बनते काम बिगड़ गया। धर्म की कौन-सी अशुभ घड़ी आ गई उन्होंने विचार किया। सबसे पहले सुबह पण्डिताइन का ही मुँह देखा था। पचास बरस हो गए पण्डिताइन को घर में आए। याद करने की कोशिश की, कोई भंगन भी नहीं आई थी उसके

¹ हिडिम्ब, एस.आर. हरनोट, पृष्ठ सं-124

² वही, पृष्ठ सं-44

सामने टोकरा लिए, बिल्ली ने भी रास्ता नहीं काटा। किसी ने छींका भी नहीं। कोई विधवा औरत भी सामने नहीं आई। काला कुत्ता भी नहीं आया रास्ते में। मंगल लड़की भी कहीं दिखाई नहीं दी। रात में उल्लू भी नहीं देखा पेड़ पर। फिर ऐसा अपशगुन क्यों हुआ ? वे जितना याद करते उनके भीतर और भी उलझाव आते। घर आने पर हाथ जोड़कर अभिवादन भी किया था। उन्हें पानी को भी पूछा था, हालाँकि उन्होंने पानी पीने से इन्कार कर दिया था। एक दलित के घर पानी पीते भी कैसे। आज तक उन्होंने पानी पिया ही नहीं था। फिर उन्होंने जन्मपत्री निकाली और नाम सुझाया था, बुद्धू।”¹ उपर्युक्त उद्धरण से स्पष्ट होता है कि जो बंसी एक दलित जाति से होने के बावजूद ब्राह्मण के द्वारा नाम रखवाना चाहता है, लेकिन उसके द्वारा सुझाए हुए नाम से सहमत न होकर पंडित को रोकता है। बंसी के बेटे को पंडित केशव प्रसाद नामकरण करने आता है। बंसी ने केशव प्रसाद को नामकरण करने से मना किया है। खुद ही अपने बेटे का नामकरण करता है। बंसी ने सिर्फ नामकरण करना ही नहीं ब्राह्मण परम्परा को तोड़ा भी।

‘मुक्ति पर्व’ उपन्यास में दिखाया गया है कि भारतीय समाज व्यवस्था में बच्चे का जन्म होते ही कुछ परंपराएँ शुरू होती हैं। बंसी तो बौद्ध संस्कृति का उपासक था। बंसी का बेटा सुनीत को बस्ती के लोग अंधविश्वास का टीका लगाना और काले धागे को हार बनाकर गले में डालना शुरू करते हैं। “सुनीत एक सुंदर सपने की तरह पहले बंसी के घर आँगन और फिर बस्ती में बड़ा होने लगा था। बस्ती के लोग उसे प्यार करते, उससे बातें करते। औरतों उसकी बलाएँ लेतीं, उसके माथे पर काला टीका लगातीं। अपने-अपने विश्वास और आस्था से वशीभूत हो वे सुनीत को अला-बला से बचाने का प्रयास करतीं। बस्ती में यह सब परंपराएँ बरसों से चली आ रही थीं।”² उपरोक्त उद्धरण से मालूम होता है कि बंसी अंधविश्वासों बस्ती वालों को दूर करना चाहता है, लेकिन बस्ती के लोग अंधविश्वासों पर भरोसा करते हैं।

3.11.1 परंपरा के विरुद्ध स्वाभिमान

¹ मुक्ति पर्व, मोहनदास नैमिशराय, पृष्ठ सं-32

² वही, पृष्ठ सं-36

गलत परंपरा के विरुद्ध चलना ही है अम्बेडकरवाद है। वही दलित साहित्य एवं उपन्यासों में दिखाई देता है। ‘नीला आकाश’ उपन्यास में सेवानगर के लोग 16 सितम्बर, 1978 के खग्रास चंद्रग्रहण के दिन पूरे गाँव के लोग दान मांगने जाते हैं, लेकिन भीकूजी स्वाभिमान से दान मांगने नहीं जाता है। भीकूजी कहते हैं कि “यह ग्रहण का दान हमें नहीं चाहिए। हमें बस अपनी मेहनत की ही रोटी चाहिए। अब तो रामकिसन भी सबको ग्रहण का दान मांगने से मना करने लगा है। चन्दरी भी यह बात समझती है, -दान लेने के नाम पर भीख मांगना, हमारे स्वाभिमान के विरुद्ध है।”¹ उपर्युक्त कथन से पता चलता है कि भीकूजी का परिवार आत्मसम्मान की भावना से जीवनयापन करते हैं। वह इन पुरानी परंपराओं का विरोध करते जिनके चलते उनके स्वाभिमान का पतन हो जाता है।

3.11.2 परंपरा का बंधन

‘नीला आकाश’ उपन्यास में दलित जाति के बड़े बूढ़े यही कहते थे- “विद्या पाना सबके बस की बात नहीं होती। इसके लिए पिछले जनम में अच्छे कर्म करने पड़ते हैं। पिछले जनम के पुण्य से ही उच्चवर्ण की उच्चजाति में जनम मिलता है। हमने कोई पाप किये होंगे, इसलिए हमें इस जाति में जन्म मिला है।”² नीलिमा बूढ़े से सवाल करती है, पिछली जन्म का कौन देखा है? नीलिमा बूढ़े लोगों को समझाती है कि सवर्णों ने हमारे मन में इस तरह की भावना को पैदा किया है। ये सब झूठ है। यह सब ब्राह्मणों का शूद्रों-दलितों को शिक्षा से वंचित करने का षड़यंत्र है।

3.12 गुलामी

दलित साहित्य के आलोचक कंवल भारती गुलामी के बारे में लिखते हैं कि “सचमुच आजादी का अर्थ वही जान सकता है, जो गुलाम है और जिसने गुलाम की पीड़ा झेली है। पिंजरों में बंद पक्षियों की फड़फड़ाकट का अर्थ वे पक्षी क्या जानें, जो मुक्ति गगन में उड़ रहे हैं। भारत की दलित जातियाँ ऐसी गुलाम जातियाँ थी, जो हिन्दुओं के गुलामबाड़े में सदियों से बंद थीं। वे अपनी मानवीय अस्मिता के साथ स्वतंत्र होने के लिए छटपटाती

¹ नीला आकाश, सुशीला टाकभौर, पृष्ठ सं-57

² वही, पृष्ठ सं-73

थीं, बाड़े को तोड़ने की कोशिश करती थीं, पर हिंदुओं का आतंक उनकी सारी कोशिशें नाकाम कर देता था। इसलिए जब भारत को आजादी मिली और सभी नागरिकों को समान अधिकारों के उपभोगता का अवसर मिला, तो इसकी सबसे ज्यादा खुशी दलित जातियों को हुई थी। दलित एक झटके में ही हिंदुओं के गुलामबाड़े को तोड़कर बाहर आ गए थे। वे स्वयं को आजाद समझने लगे थे और मुक्त गगन में मुक्ति उड़ान का स्वप्न देखने लगे थे। वे खुश थे कि उन्हें वे सभी अधिकार मिलने जा रहे थे, जिनसे वे सदियों से वंचित थे। उन्होंने इस आजादी के दिन को मुक्ति पर्व कहा था।¹ गुलामी सभ्य समाज के लिए तमाचा है। जहाँ एक आदमी-दूसरे आदमी को गुलाम बनाया है। वह आदमी नहीं हैवान ही हो सकता है। इससे मुक्ति पाना सही मायने में दलित समाज के लिए मुक्ति का पर्व ही है।

15 अगस्त के दिन देश को आजादी मिली और इसी आजाद भारत में बंसी की पत्नी सुंदरी ने एक खुबसूरत बेटे को जन्म दिया। आजादी का प्रभाव बच्चे के नामकरण पर भी पड़ा। पंडित केशव प्रसाद जो अभी तक बस्ती में नवजात बच्चों के नाम रखने आते थे, बंसी के घर से अपमानित होकर निकले थे। दलित बस्ती में आठ बरस से चली आ रही उनकी पंडिताई आज समाप्त हो गई थी। पंडित रगडू, झगडू, धुरिया, सिरिया, कालू जैसे जो नाम रखते आए थे, अब वे नाम बस्ती के लोगों को स्वीकार नहीं थे। पंडित आया तो बंसी ने कहा – “आज के बाद इस बस्ती में किसी पण्डित की जरूरत नहीं पड़ेगा।”² बंसी ने अपने बेटे का नाम सुनीत रख दिया था। दलित समाज अब समाज में समान अवसर, सम्मान की जिंदगी जीना चाहता है। इसी लिए वह अपना रास्ता स्वयं बनाने का निर्णय लेता है।

3.13 परिवर्तन

परिवर्तन प्रकृति का नियम है। समाज के निर्माण और विकास में परिवर्तन का महत्वपूर्ण भूमिका है। जिसके बिना नये विचार और नयी सोच का उदय होना असंभव है। ‘मुक्ति पर्व’ उपन्यास में बंसी ने अपने बेटे का नाम स्वयं ही तय कर दिया था। जिसकी वजह से पण्डित

¹ अपेक्षा, संपा.तेजसिंह, जनवरी-जून 2010, पृष्ठ सं.-17

² मुक्ति पर्व, मोहनदास नैमिशराय, पृष्ठ सं-32

केशव प्रसाद को दान-दाक्षिणा नहीं मिल सकी थी। इस तरह पण्डित को अपने घर खाली हाथ जाना पड़ा था। पण्डित केवश प्रसाद पण्डिताईन से कहता है - “तो सुन, इन ससुरे ढेढ़े चमारों ने बच्चे का नाम स्वयं ही रख लिया।”¹ पण्डित केशव प्रसाद सुबह किस का मुँह देखा था। पण्डित पण्डिताईन का मुँह पचास सालो से देख रहा था, लेकिन आज ऐसा क्यों हुआ था ? पण्डित केशव प्रसाद इस परिवर्तन के बारे में सोच नहीं पाये थे। और वह इससे बिल्कुल खुश नहीं थे। क्योंकि मनुवादी समाज ने परिवर्तन को अभी तक नहीं स्वीकारा।

3.14 आंदोलन से समाज परिवर्तन

सामाजिक बदलाव के लिए, समाज अधिकार, गौरव और अवसर पाने के लिए आंदोलन शुरू हुए हैं। जिसके कारण बदलाव संभव हो पाया है। ‘मुक्ति पर्व’ उपन्यास में देखा जा सकता है कि दलितों की बस्ती गाँव से दूर रहती है। गाँव में दलितों के घर अलग से पहचाने जाते हैं। “देश जब आजाद हुआ तो बस्ती में शराबबंदी के खिलाफ आंदोलन हुआ। जिसमें पुरुषों के साथ महिलाओं ने भी योगदान दिया। एक दिन तो अच्छा खासा उपद्रव भी हुआ। स्त्री-पुरुषों ने कलालखाना के भीतर जाकर शराब की बोतलें तोड़ डालीं। बाद में पुलिस के आने पर संघर्ष भी हुआ। कई लोगों को चोटें भी आई। बस्ती के लोगों का किसी सामाजिक बुराई को दूर करने के लिए यह पहला आंदोलन था।”² उपरोक्त उद्धरण से यह मालूम होता है कि दलित बस्ती में शराब बंदी जैसे सामाजिक बुराई का अंत हुआ था। उस पंचायत में दो मुख्य फैसले हुए थे। एक बाब साहेब अम्बेडकर के नाम पर बस्ती में पुस्तकालय शुरू किया जाए। दूसरा कारखाने से जुड़ी जगह को अपने कब्जे में लिया जाये क्योंकि जमीन रहमत अली की थी। वे लोग भारत छोड़कर पाकिस्तान चले गये थे। जिस जगह पर लोग शराब पीने आते हैं उस जगह पर स्कूल बनाना चाहिए।

3.15 व्यवसाय

‘मुक्ति पर्व’ उपन्यास में रामलाल पिछले चुनाव में दलित बस्ती से जीता था। उन्होंने चुनाव में स्कूल बनाने वादा किया था। जीतने के बाद दलित बस्ती में स्कूल बनवाया गया।

¹ मुक्ति पर्व, मोहनदास नैमिशराय, पृष्ठ सं-33

² वही, पृष्ठ सं-76

लेकिन दलितों की आर्थिक स्थिति दयनीय थी। बच्चों माँ-बाप के लिए रोजगार में मददगार थे। “पैदा होने से पहले ही उनके हिस्से में बाप के व्यवसाय का नाम लिख दिया जाना था। जाति का नाम तो माथे पर पहले से ही गोद दिया जाता था।”¹ उपर्युक्त कथन से स्पष्ट होता है कि सरकार को बच्चों की आर्थिक सहायता करनी चाहिए। क्योंकि वे आर्थिक अभाव के कारण स्कूल जाना बन्द कर देते हैं।

3.16 षडयंत्र

ब्राह्मणवादी मानसिकता ने समय-समय पर शूद्रों-दलितों को हर एक सुविधा एवं अवसरों से वंचित करने के लिए षडयंत्र रचा था। जिससे दलित समाज पिछड़ता गया। ‘मुक्ति पर्व’ उपन्यास में सुमित्रा ने सुनीत से कहा था कि तुम्हारे बारे में शिवानंद शर्मा जी कह रहे थे- “अगर ससुर ढेढ़े-चमार के बच्चे ने हमारे स्कूल को टाप किया तो नाक नहीं कट जाएगी हमारी। क्या ब्राह्मणों के बच्चे मारे गए अब्बल आने के लिए। ये ससुरे जूते गाँठने वाले कैसे आगे ही आगे बढ़ते जा रहे हैं। शेष अध्यापकों ने भी उसकी हाँ में हाँ मिलाते हुए कहा था-पाण्डेय जी, जैसा आप कहोगे, वैसा ही होगा।”² उपर्युक्त कथन से पता चलता है कि सुनीत दलित छात्र है। इसलिए शिवानंद शर्मा सुनीत को पढ़ाई में आगे बढ़ते देखकर सह नहीं पाते हैं। षडयंत्र चलाकर उसके अंक कम करवाते हैं।

‘हिडिम्ब’ उपन्यास में जमीन के लिए शावणू का बेटा कांसी को मारने के लिए उसके खाने में अफीमदाना और भांग के बीज मिला देता है। “भीड़ में कई लोग फुसाफुसा रहे थे कि शावणू का छोकरा इतनी छोटी उम्र में भांग पीता था। बुरा नशा करता था। इसीलिए गिर कर मर गया। ये बातें शावणू के कानों में पड़ी तो वह चिल्ला गया....कि उसका छोटा कोई नशा नी करता था....उसको मास्टर ने मार दिया....ठेकेदार ने उसकी हत्या कर दी....। लोगों ने सुना तो हक्के-बक्के रह गए....ये क्या बोल रहा था शावणू...? कोई कहता कि बच्चे के दुःख ने बौरा दिया है इसको....आपा खो दिया है इसने....तो कुछ इस कड़वी सच्चाई से वाकिफ भी थे...पर चुप्पी लगा गए। सांप के बिल में कौन हाथ

¹ मुक्ति पर्व, मोहनदास नैमिशराय, पृष्ठ सं-43

² वही, पृष्ठ सं-112

डालता। लेकिन शावणू का दृढ़ विश्वास था कि कांकी को मारा गया है।”¹ उपरोक्त कथन से पता चलता है कि जमीन के लिए मंत्री ने शावणू के परिवार को मौत के घाट उतार के घाट उतारा था।

जमीन के लिए शावणू परिवार को मंत्री द्वारा मरवा दिया जाता है। शावणू अकेला बच गया था। शावणू पर काहिका उत्सव में देवी की मूर्ति के चोरी का आरोप लगाया जाता है। शावणू को पुलिसवाले स्टेशन ले जाते हैं। “एक-दो लोगों ने जब हवलदार से बात की तो पता चला कि देवरीधार के मंदिर में चोरी हो गई है। वहां स्थापित देवता की सोने की प्राचीन मूर्ति तथा सारे जेवरात चोर उड़ा ले गए। वहां के पुजारी ने शक की बिनह पर शावणू का नाम भी लिखा दिया है। चोरी उस दिन हुई जिस दिन शावणू रात को वहां से चला आया था।”² उपरोक्त उद्धरण से मालूम होता है कि यह सब जमीन के लिए मंत्री का खेल था। शावणू का इस दबाव से मन करता था भाग कर ढांक से नदी में कूद जाए और अपनी जीवन लीला की समाप्त कर दे। अपने स्वार्थ पूर्ति के लिए ये लोग दलित समाज पर हर संभव षड़यंत्र को अंजाम देते हैं।

3.17 प्रेम

‘सैनिक का खून’ उपन्यास में कमला के पिता शंकर लाल की मृत्यु होने के बाद दुःख में प्रियवर कवीन्द्र को पत्र लिखती है कि “मैं तुम्हारे बिना एक पल भी नहीं रह सकती। ठीक है, मेरा और तुम्हारा प्रेम है। प्रेम का नाम पवित्र है, इसका सम्बन्ध तो जन्म-जन्मान्तर तक चलता है। बाहरी सौन्दर्य एवं माया मोह को यदि पीछे छोड़ दिया जाए तो सात्विक आनन्द की अनुभूति होती है, अन्यथा प्रेम नाम हमारे विकास के मार्ग में बाधा बन जाता है।”³ उपर्युक्त कथन से पता चलता है कि कमला और कवीन्द्र दोनों एक दूसरे चाहते थे। इन दोनों का निस्वार्थ प्रेम था और समाज सेवा करने लिए कटिबद्ध थे। ‘मुक्ति पर्व’ उपन्यास में सुनित और सुमित्रा स्कूल से लेकर कॉलिज तक साथ में पढ़ते हैं। “अंगों में मादकता आ गई थी। आकर्षण और भी बढ़ गया था। कभी-कभी जब वह साड़ी पहन

¹ हिडिम्ब, एस.आर. हरनोट, पृष्ठ सं-123

² हिडिम्ब, एस.आर. हरनोट, पृष्ठ सं-223

³ सैनिक का खून, डॉ. विजयी, पृष्ठ सं.-28

कर आती तो सुनीत मंत्रमुग्ध हुए बिना न रह पाता। वे दोनों विचारशील होने के साथ जवान युवक-युवती भी थे।”¹ उपरोक्त कथन से मालूम होता है कि दोनों की जाति अलग है, लेकिन दोनों की विचारधारा एक ही थी। “वे दोनों पुस्तकालय से निकल कर बाहर लॉन में आ गए थे जहाँ हरी-हरी घास उगी थी। बराबर की क्यारी में गुलाब के फूल खिले हुए थे। उनके नजदीक ही चमेली के फूल थे। सुनीत ने आगे बढ़कर क्यारी से गुलाब का फूल तोड़कर उसके बालों में लगा दिया।”² लेखक उन दोनों युवाओं के बीच के प्रेम को दर्शाते हैं।

3.17.1 भाई का प्यार

कमला अपने पिता शंकर लाल के देहांत होने के बाद अपने भाई सैनिक आर्येश कुमार को पत्र लिखती है कि “दुख की बात है, इस अकेली, नीरस तथा एकाकी घड़ियों में तुम्हारा भी स्नेह भरा पत्र नहीं मिला। मैं भी कितनी अभागिन हूँ। माता के वात्सल्य प्रेम से वंचित रही, खिलखिलाते महकते हुए जीवन में पिता का साया सर से उठ गया। अब तुम रहे, मेरे रक्षा के बन्धन, तुम्हें इतना भी अवकाश नहीं कि पत्रों के बादलों से ही स्नेह की वर्षा करते रहो।”³ उपरोक्त उद्धरण से मालूम होता है कि माता-पिता के बाद वह अपने भाई से आत्मीयता की अपेक्षा करती है। अपने भाई में माता-पिता का प्यार ढूँढ़ना चाहती है।

3.18 ज्योतिष

‘गटर का आदमी’ उपन्यास में गरिमा सौरभ से प्यार करती है। सौरभ के लिए तांत्रिक चौबे से मिलने जाती है। गरिमा से चौबे कहता है कि “जितना अधिक दम घुटेगा उतनी ही जल्दी से सौरभ तुम्हारे पास खिंचा चला आयेगा। देखो मैं सौरभ को तुम्हारे पास इस तांत्रिक अनुष्ठान से बुला रहा हूँ।”⁴ उपर्युक्त उद्धरण से मालूम होता है कि गरिमा अंधविश्वास और तंत्रों पर भरोसा करने लगती है।

¹ मुक्ति पर्व, मोहनदास नैमिशराय, पृष्ठ सं-116

² वही, पृष्ठ सं-117

³ सैनिक का खून, डॉ. विजयी, पृष्ठ सं.-31

⁴ गटर का आदमी, रुपनारायण सोनकर, पृष्ठ सं.- 56-57

3.19 वेशभूषा

समाज के मुख्य धारा के लोगों में यह धारणा रही है कि दलित समाज के लोग लंगोटी पहनकर हमारे सामने सिर झुकाकर जायें। जब डॉ. अम्बेडकर को बड़ौदा महाराजा उस रियासत का मिलिटरी सेक्रेटरी के रूप में नियुक्त किये थे। “अस्पृश्य और सम्मान! आम्बेडकर ने उन आँखों में देखा था, उन सबकी आँखों में भरपूर जातीय घृणा पढ़ी थी। वहाँ द्वेष का लावा बह रहा था। वे ईर्ष्या से भरे हुए थे। एक दलित समाज का व्यक्ति कोट पैण्ट पहने, सूट पहने, टाई लगाए, यह कहाँ उन्हें भला सहन होता? एक सुंदर, मजबूत काठी का शिक्षित आदमी उनके सामने था। जो दलित समाज से था।”¹ उपर्युक्त उद्धरण से मालूम होता है कि डॉ.अम्बेडकर ने दलितों को स्वाभिमान और आत्मगौरव से जीने का मार्ग दिखाया है। अच्छी वेश-भूषा सिर्फ किसी एक वर्ग के लिए नहीं हो सकता। वह सभी के लिए होना चाहिए। इसी विचार से उन्होंने अपने आपको सूट-बूट वाली वेश-भूषा में स्थापित किया।

दलित उपन्यासों में दलित संस्कृति के साथ-साथ सवर्ण संस्कृति तथा मुस्लिम संस्कृति का भी वर्णन हुआ है। मुख्य रूप दलित संस्कृति पर इन उपन्यासों में विस्तृत रूप से वर्णन हुआ है। दलितों की संस्कृति खान-पान से लेकर रहन-सहन, देवी-देवता आदि सवर्णों की संस्कृति से अलग है।

¹ महानायक बाबा साहेब डॉ.आम्बेडकर ,मोहनदास नैमिशराय .पृष्ठ .सं 32

चतुर्थ अध्याय

हिन्दी दलित उपन्यासों में चित्रित सत्ता के सवाल

- 4.1. राजनीतिक सत्ता
- 4.2. बी.आर.अम्बेडकर की राजनीतिक विचारधारा
- 4.3. बी.आर.अम्बेडकर और गाँधी
- 4.4. गाँधी और नेहरू
- 4.5. आरक्षण
 - 4.5.1. जाति-उपजातियों का अधिकार
- 4.6. शिक्षा में नेताओं का योगदान
- 4.7. ब्रिटिश साम्राज्य
- 4.8. अदालत
- 4.9. समाज में आधिकार
- 4.10. चुनाव
- 4.11. आर्थिक सत्ता
 - 4.11.1. नगरपालिका में दलितों की स्थिति
- 4.12. धार्मिक सत्ता
 - 4.12.1 दाह संस्कार

4.1 राजनीतिक सत्ता

देश के राजनीतिक परिदृश्य में दलित शक्ति अब हाशिए पर नहीं है। वह विभिन्न राजनीतिक दलों की कृपापात्र की भूमिका से तेजी से बाहर निकल रही है। अब वह सत्ता में भागीदारी करने की मनःस्थिति में भी है और कार्य स्थिति में भी। जहाँ तक उसके आर्थिक-सामाजिक अधिकारों का सवाल है? तो देश के किसी भी राजनीतिक दल में, भले ही वह हिन्दुत्ववादी दल ही क्यों न हों, राष्ट्रीय स्तर पर या क्षेत्रीय स्तर पर, इन्हें चुनौती देने का साहस शेष नहीं रह गया है। आरक्षण जैसी व्यवस्था के विरोधी भी दलितों के आर्थिक सामाजिक अधिकारों को स्वीकारने लगे हैं। भारतीय राजनीतिक की यह एक महत्वपूर्ण परिघटना है। दलित चाहे दक्षिण में, चाहे उत्तर में, सत्ता में भागीदारी के लिए सचेत हैं।

समाज एवं समय की वर्चस्ववादी सांस्थानिक शक्ति को सत्ता के रूप में चिह्नित किया जा सकता है। कार्ल मार्क्स समाज की ऐतिहासिक व्याख्या करते हुए कहते हैं कि “आदिम साम्यवादी युग, दास युग, सामंती युग, पूंजीवादी युग, समाजवादी युग, एवं साम्यवादी युग के रूप में विभक्त करके विश्लेषण है।”¹ यह एक प्रकार का समाज वर्गीय सत्तामूलक विश्लेषण है। इसमें उन्होंने बताया है कि मानव सभ्यता के शुरुआती चरण में समाज शोषण मुक्त, सामूहिक सत्तामूलक समाज था। जहाँ वर्ग नहीं बने थे, उनकी सत्ता नहीं बनी थी। इसलिए उसे हम लोकतंत्रवादी सत्तामूलक समाज की संज्ञा भी दे सकते हैं। जैसै-जैसे समाज में वर्ग बने, तो श्रम करने वालों को दास बनाया गया। और उन पर अधिकार रखने वाला दास मालिक बन गया। यह उच्चवर्गीय सत्ता की शुरुआत थी जिसे इतिहास में दास एवं दास मालिक के रूप में चिह्नित किया गया। इसी प्रकार खेतिहार समाज में किसान-सामंत एवं पूंजीवादी समाज में सर्वहारा और पूंजीवादी के रूप में चिह्नित है। इससे हम यह जान पाते हैं कि विश्व समाज में अभी तक समाज के नीति निर्धारक और नियामक उच्चवर्गीय लोग थे इसलिए उन्हीं की सत्ता कायम थी। सत्ता के सभी संस्थान-शिक्षा, राजनीति, संस्कृति, अर्थतंत्र, समाज की अधिकांश इकाइयाँ उच्चवर्गीय सत्ता से संचालित थीं। मार्क्स ने इसे राजसत्ता और लोकसत्ता का रूप भी कहा है। समाज में कोई भी

¹ सत्ता संस्कृति और दलित सौंदर्यशास्त्र, सूरज बड़त्या, पृष्ठ सं.-21

सत्ता हो, वह अपनी वैचारिकी को शैक्षणिक, राजनीतिक, सामाजिक, सांस्कृतिक, धार्मिक संस्थानों के माध्यम से समाज में परोसने का कार्य करती है।

इसे हम भारत के संदर्भ में भी समझने का प्रयास कर सकते हैं। जिस प्रकार मार्क्स ने “यूरोपीय समाज का वर्गवादी विश्लेषण करके उच्चवर्गीय सत्ता को स्पष्ट किया उसी प्रकार भारत के वर्गवादी समाज को आधार बनाकर बाबू साहेब डॉ. अम्बेडकर ने भारतीय समाज का वर्गवादी विश्लेषण प्रस्तुत किया। उन्होंने बताया कि “भारतीय समाज अपने विकास की प्रक्रिया में जातियों के आधार पर समाज का बंटवारा करता है और ब्राह्मण-क्षत्रिय-वैश्य तीन उच्च वर्ग (जातियाँ) मिलकर एक उच्च वर्गीय सत्तामूलक समाज की स्थापना करते हैं। इससे भारत का इतिहास, संस्कृति, साहित्य, राजनीतिक, अर्थव्यवस्था, सभी कुछ उच्चवर्गीय वैचारिकी से संचालित होते हैं। बाबा साहेब अम्बेडकर ने ब्राह्मणवादी वैचारिकी के रूप में ऐसी संस्कृति का निर्माण किया जो आज रीति-रीवाज, आचार-व्यवहार, खान-पान, वेशभूषा, रहन-सहन, तीज-त्यौहार, भाषा सभी के माध्यम से ब्राह्मणवादी वैचारिकी और संस्कृति को प्रतिष्ठित करती रही है”¹। उपर्युक्त उद्धरण से पता चलता है कि यूरोप में वर्गवादी शासन करते हैं। भारत में वर्णवादी शासन करते हैं। क्योंकि भारत का समाज में जाति पर आधारित समाज है।

कुछ लोगों के विचार से दलित होने के नाते हमको भरपूर आरक्षण का फायदा चाहिए। अपने दलित लोग या समाज वैसे भी रहे हमें क्या लेना-देना, हमें सिर्फ अपनी सुख-सुविधा की चिंता है। उदाहरण के तौर पर “बाबू जगजीवन राम अपने जीवन में अधिकतम सत्ता में रहे। वे ऐशो-आराम में रहे। सुविधाओं का भरपूर उपभोग भी किया। पर अम्बेडकर को कभी याद नहीं किया। याद किया तो खलनायक के रूप में। उनकी बेटी मीरा कुमार ने भी यही किया। बल्कि वे तो एक कदम और आगे बढ़ गई। अरुण शौरी जैसे दलित विरोधी को ‘वरशिपिंग फाल्स गॉड्स’ लिखने के लिए एक तरह से शह ही दी।”² उपर्युक्त कथन से पता चलता है कि सत्ता में रहने पर भी दलितों को क्या मिला ? लोग

¹ सत्ता संस्कृति और दलित सौंदर्यशास्त्र, सूरज बड़त्या, पृष्ठ सं.-22

² महानायक बाबा साहेब डॉ. अम्बेडकर, मोहनदास नैमिशराय, पृष्ठ सं. 28

अम्बेडकर द्वारा दिए गए आरक्षण का फायदा लेकर उनको ही खलनायक बनाना चाहते हैं। अपने घर को ही आग लगाना चाहते हैं।

सत्ता ऐसी चीज है जिसके मिलने पर व्यक्ति में परिवर्तन हो जाता है। “रामविलास पासवान तथा मायवती के बारे में क्या कहा जाए ? यह समझ में नहीं आता। दोनों ही एक समय धुआंधार भाषणों वक्तव्यों से अम्बेडकर के गुणगान करने में पीछे नहीं रहते थे, लेकिन जब सत्ता मिली तो धीरे-धीरे सब कुछ भूल गये। द्विज नेता की तरह व्यवहार करने लगे”।¹ ये लोग सत्ता के लिए कुछ भी कर सकते हैं। जैसे भाषण में आप लोगों के लिए ये करेंगे, वो करेंगे सब झूठ है, ये सब सत्ता में आने के लिए एक नाटक है। लोगो को भ्रमित करने की चाल मात्र हैं।

‘मानव की परख’ उपन्यास में चित्रित राजनीति के बारे में अपेक्षा पत्रिका के भूतपूर्व संपादक स्वर्गीय तेजसिंह लिखते हैं कि “मूलतया यह उपन्यास अंबेडकरवादी न होकर गाँधीवादी उपन्यास है। दूसरे अर्थ में हरिजनवादी। एक प्रथम गाँधीजी ने वाल्मीकि समुदाय के लोगों को हरिजन कहकर संबोधित किया था जिसके आधार पर बाद में इस समुदाय के लोगों की हरिजन बस्तियाँ बसाई गई। शहरों में आज भी उनके अवशेष देखे जा सकते हैं। यही नहीं, सरकार ने शहरों के अंदर इनकी अलग बस्तियाँ पूरी तरह से समाज से अलग-थलग कर दि जिससे समाज में उनकी अलग पहचान की जा सकी। यही वजह है कि गाँधीजी के कारण आज भी इस समुदाय के लोग कांग्रेस का राजनीति आधार बने हुए है। लेकिन पिछले एक-दो दशकों से भाजपा जैसे सांप्रदायिक दल ने इस समुदाय पर अपना राजनीतिक प्रभुत्व कायम कर लिया है।.....अभी तक कांग्रेस और भाजपा दोनों दल इस समुदाय को अपने –अपने दलों से बांधने में सफल रहे हैं –जिसे उनकी राजनीतिक सफलता भी कहा जा सकता है।”²

¹ महानायक बाबा साहेब डॉ. अम्बेडकर, मोहनदास नैमिशराय, पृष्ठ सं 28

² अपेक्षा, संपा. तेजसिंह, जनवरी-जून 2010, पृष्ठ सं-130

‘आक्रोश’ उपन्यास में सरजू यादव ने रामदीन से कहा-“चाचा, राजनीतिक पार्टियों का भला इसी में है कि प्रत्येक गांव जातियों में बंटा रहे, चालाक लोग हमेशा गांव का शोषण करते रहें, वहां हमेशा झगड़े झंझट होते रहें और सब लोग मुकदमेबाजी में फंसकर अपना कचूमर निकलवाते रहें, आप तो देख ही रहे की ठाकुर बांभनों में भी आपस में कितने झगड़े झंझट हैं। सब अपने को तीसमार खां और तीरन्दाज समझते हैं। हममें भी तो ऊंच-नीच का भेदभाव है। ऊंच-नीच के चक्कर ने ही तो हम लोगों को पंगु बना दिया है, हमारे अन्दर मिथ्याभिमान पैदा कर दिया है, गांवों में कुछ भी नहीं है हवा ही हवा है केवल, शक्ति नाम की चीज नहीं है, यदि शक्ति रहती तो हम गुलाम क्यों रहते ?।”¹ उपर्युक्त कथन से पता चलता है कि राजनीति से गुलामी दूर हो जाती है। आपसी मन-मुटाव, भेद-भाव छोड़कर एकजुट होने पर ही सत्ता हासिल कर सकते हैं और गुलामी की जंजीरों को तोड़ सकते हैं।

4.2 डॉ.बी.आर.अम्बेडकर के राजनीतिक विचार

डॉ.बी.आर.अम्बेडकर ने सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक विकास के लिए संघर्ष किया। भारतीय समाज व्यवस्था में राजनीति में प्रवृत्त हिन्दुओं से डॉ.बी.आर.अम्बेडकर सवाल करते हैं कि “जब आप अपने ही देश के अछूतों जैसे एक बहुत बड़े वर्ग को सार्वजनिक स्कूल का प्रयोग नहीं करने देते तो क्या आप राजनीतिक सत्ता के योग्य हैं? जब आप उन्हें सार्वजनिक कुओं का प्रयोग नहीं करने देते तो आप राजनीतिक सत्ता के योग्य हैं? जब आप उन्हें आम सड़कों का प्रयोग नहीं करने देते तो क्या आप राजनीतिक सत्ता के योग्य हैं? जब आप उन्हें उनकी पसंद का भोजन नहीं करने देते तो क्या आप राजनीतिक सत्ता के योग्य हैं?”² उपर्युक्त उद्धरण से पता चलता है कि सवर्णों को दलितों पर अधिकार चलाने का हक नहीं है। जब तक दलितों को समाज में उचित स्थान और अवसर प्रदान नहीं कराएंगे तब तक उन्हें सत्ता में रहने का कोई अधिकार नहीं है। यह डॉ.अम्बेडकर का उद्देश्य है।

¹ आक्रोश, रघुवीर सिंह, पृष्ठ सं.28-29

² बाबासाहेब डॉ.अम्बेडकर सम्पूर्ण वाङ्मय खंड-1, पृष्ठ सं-58-59

डॉ.बी.आर.अम्बेडकर वर्ग और सत्ता के बारे में बात कहते हैं कि “एक देश दूसरे देश पर शासन करने योग्य नहीं है, यह बात स्वीकार करनी चाहिए कि एक वर्ग दूसरे वर्ग पर भी शासन करने के योग्य नहीं है।”¹ उपर्युक्त उद्धरण से बात स्पष्ट है, सदियों से एक ही वर्ग अधिकार चलाते रहा। भारत को स्वतंत्र हुए सत्तर वर्ष हो गए हैं फिर भी स्थिति जैसी की तैसी है हाँ कुछ विकास हुआ है। लेकिन जितना डॉ.अम्बेडकर ने सोचा था, उतना विकास नहीं हो पाया। इसलिए कि अधिकार सवर्णों के हाथ में है।

राजनीति से देश की रूप-रेखा बदल जाती है। लोग अपने स्वार्थ के लिए देश के टुकड़े-टुकड़े कर देते हैं। ‘महानायक बाबा साहेब डॉ.अम्बेडकर’ उपन्यास में स्वतंत्रता के बाद की स्थितियों को दर्शाया है। “जिन्ना को पाकिस्तान मिल गया था और नेहरू को हिन्दूस्तान। आम आदमी को क्या मिला? कहने भर को आजादी।”² उपर्युक्त उद्धरण से पता चलता है कि विश्व में अपने-अपने स्वार्थ के लिए लोग देश का विभाजन भी करने के लिए तैयार हो जाते हैं।

‘मुक्ति पर्व’ उपन्यास में बंसी और रामलाल को आर्य समाजी डॉ. अम्बेडकर और गाँधी के बारे में समझाता है “बंसी, तुम्हें पता है, डॉ. अम्बेडकर और गांधी जी में क्यों बार-बार टकरार होती थी ? क्यों भला ? उत्तर सुनने की उस्तुकता में पूछा उसने- तो सुनो, तकरार का मुख्य कारण यह था कि गांधी जी कभी भी यह नहीं चाहते थे कि अम्बेडकर यह सिद्ध कर पाँए कि वे ही दलितों के नेता थे।”³ उपर्युक्त कथन से पता चलता है कि सवर्ण कभी नहीं चाहते हैं कि दलित नेता बने। डॉ. अम्बेडकर का नेता बनना गाँधी सह नहीं कर पा रहे थे।

मोहनदास नैमिशराय के ‘मुक्ति पर्व’ उपन्यास में बंसी अपने बेटे सुनीत को डॉ.अम्बेडकर की पढ़ाई-लिखाई से प्रभावित करना चाहता है। “पिता जी, आपने ही तो बताया था बाबा साहेब डॉ.अम्बेडकर खूब पढ़ते-लिखते थे। उनके घर बिजली न थी, पर

¹ बाबासाहेब डॉ.अम्बेडकर सम्पूर्ण वाङ्मय खंड-1, पृष्ठ सं-59

² महानायक बाबा साहेब डॉ. अम्बेडकर, मोहनदास नैमिशराय, पृष्ठ.सं.234

³ मुक्ति पर्व, मोहनदास नैमिशराय पृष्ठ सं-69

वे बाहर लैम्प पोस्ट के उजाले में पढ़ते थे।”¹ उपर्युक्त उद्धरण से स्पष्ट होता है कि अम्बेडकर से प्रेरणा लेकर सुनीत पढ़ने लगता है।

बंसी अपने बेटे सुनीत को पढ़ने के लिए डॉ.अम्बेडकर की किताब लाकर देता है। “बंसी ने डॉ.अम्बेडकर के बचपन की दबी हुई कहानी सुनीत को लाकर दी थी, जो एक ही बैठक में उसने पढ़ डाली थी। पढ़ने के बाद सुनीत बार-बार यही सोचता कि जब बाबा साहेब अम्बेडकर इतनी गरीबी में पढ़ सकते हैं तो वह क्यों नहीं पढ़ सकता। अम्बेडकर ने तो सारे दलित समाज का सिर ऊँचा किया था। उन्हें गुलामी से छुटकारा दिलाया था। उन्हें एहसास दिलाया था कि वे गुलाम नहीं हैं। उन्हें गुलामी की ओढ़ी हुई चादर उतार कर फेंक देनी चाहिए।”² उपर्युक्त कथन से पता चलता है कि डॉ.अम्बेडकर के बचपन के जीवन संघर्ष को पढ़कर सुनीत बहुत प्रभावित हुआ था। डॉ.अम्बेडकर से प्रेरणा लेकर वह भी सोचने लगा कि जीवन में चाहे कितने ही अड़चन आजाए पर वह पढ़ाई नहीं छोड़ेगा।

‘मुक्ति पर्व’ उपन्यास में नायक सुनीत और सुमित्रा दोनों भारत के संविधान के बारे में वर्तालाप करते हैं कि “यही कि बाबा साहेब डॉ.अम्बेडकर ने संविधान बनाकर सबको बराबर कर दिया है। सुनकर कहा था सुनीत ने- हाँ सुमित्रा, यह कार्य तो वास्तव में ही उनका महत्वपूर्ण था। वे स्वयं भी तो सामाजिक बदलाव के प्रतीक थे।”³ संविधान के द्वारा दलित पिछड़े हुए समाज के लिए अम्बेडकर ने एक नई जिंदगी देने की कोशिश की थी। जिसके द्वारा वह समाज में परिवर्तन चाहते थे।

‘नीला आकाश’ उपन्यास में भारतीय समाज व्यवस्था में छुआछूत जैसे अमानवीय व्यवहार का चित्रण है। जैसे- “पानी पीने की छुट्टी मिलते बच्चे ही गिरते पड़ते सीधे पानी के घड़े के पास जाकर, मग से गिलास में पानी लेकर, वहीं खड़े रहकर गटागट पीते। मगर आकाश और नीलिमा ऐसा नहीं कर सकते थे। उन्हें आदेश था कि वे स्कूल के पानी के घड़े को न छुए। घड़े से दूर रहकर, चपरासी से या किसी अन्य सवर्ण बच्चे से पानी पिलाने

¹ मुक्ति पर्व, मोहनदास नैमिशराय पृष्ठ सं-71

² वही, पृष्ठ सं-71

³ मुक्ति पर्व, मोहनदास नैमिशराय पृष्ठ सं-135

के लिए कहें।”¹ उपर्युक्त उद्धरण से स्पष्ट होता है कि सर्वर्ण जाति के नाम पर अमानवीय व्यवहार करते हैं। स्कूल जैसी संस्थाओं को भी जाति की विषमता ने नहीं छोड़ी।

सुशीला टाकभौरे के ‘नीला आकाश’ उपन्यास में नीलिमा और आकाश के विवाह समारोह के संदर्भ में नीलिमा डॉ.अम्बेडकर के बारे में कहती है कि “पूरा देश जानता है, पूरा विश्व जानता है – महिलाओं का उद्धारक कौन हैं? डॉ.अम्बेडकर ने हमारे देश के संविधान में महिलाओं को पुरुषों के बराबर अधिकार दिए हैं, यह बहुत बड़ी बात है? जिस देश में महिलाएं सदियों से गुलामी का जीवन जीती रहीं, पति के मरने पर, सती के नाम पर जलाई जाती रहीं। उन्हें जीने का अधिकार, शिक्षा पाने, नौकरी करने, और सम्पत्ति का अधिकारी बनने का अधिकार किसने दिया? हमारे देश के संविधान में, लिखित रूप में, डॉ.अम्बेडकर ने दिया।”² उपर्युक्त कथन से पता चलता है कि भारतीय समाज में स्त्री उपेक्षित है। इसलिए अम्बेडकर पुरुष के समान स्त्री को बराबर अधिकार दिलाने के लिए कोशिश करते थे। जिसके कारण आज समाज में महिलाएँ सम्मान जनक जीवन का आनंद ले पा रहे हैं।

4.3 डॉ.बी.आर.अम्बेडकर और गाँधी

भारत के इतिहास में डॉ.अम्बेडकर और गाँधी का विशेष स्थान है। जिनमें से एक ने भारत को आजाद करने के लिए जीवन भर संघर्ष किया। दूसरे ने भारत में रह रहे दलित समाज को स्वतंत्रता दिलाने के लिए जीवन पर्यंत संघर्ष किया। इन दोनों महापुरुषों का विचार अलग-अलग लेकिन उनका व्याक्तित्व विरोध है। ‘महानायक बाबा साहेब डॉ.अम्बेडकर’ उपन्यास की एक खास विशेषता इस रूप में भी उभरती है कि इसको पढ़ते हुए हमें डॉ.अम्बेडकर के समकालीन छोटे-बड़े नेताओं के चरित्र को भी समझने का अवसर मिला है। उपन्यास में गाँधी, नेहरू, जिन्ना, तिलक, सुभाष चन्द्रबोस, जगजीवन राम आदि के चरित्र भी उभर कर आते हैं। विशेष रूप से गाँधी और डॉ.अम्बेडकर का दलितों के प्रतिनिधि होने के दावों और संघर्ष का नैमिशराय जी ने अच्छा विश्लेषण किया। गाँधी

¹ नीला आकाश, सुशीला टाकभौरे पृष्ठ सं-62

² वही, पृष्ठ सं-104

ताउम्र दलितों का प्रतिनिधि और शुभचिंतक होने का दावा करते रहे। अब देश की आजादी के इतने वर्षों बात शीशे की तरह साफ हो कि दलितों का स्वाभिमान डॉ.अम्बेडकर से जागा है। गाँधी को मानने वाले दलित आज भी परंपरा की गंदगी को ढोते हुए अपने आपको हरिजन कहलाने में गौरव महसूस करते हैं। इसके विपरीत डॉ.अम्बेडकर को मानने और जानने वाली जातियाँ सत्ता में अपनी भागीदारी सुनिश्चित कर रही हैं।

डॉ.अम्बेडकर हजारों सालों की जाति की गुलामी से निकलने का आह्वान करते हैं तो गाँधी वर्ण और जाति व्यवस्था को आदर्श मानकर उसे काम के बंटवारे के रूप में देखते हैं। विशेष रूप में पूना पैक्ट गाँधी की कूटनीति का परिणाम था जिसने इस देश के करोड़ों दलितों के प्रतिनिधित्व के मसले पर कुठाराघात किया। उन्होंने दलित हितैषी होने का ढोंग रचा। उनके घृणित कार्यों को मानव-सेवा से जोड़कर पीढ़ी-दर-पीढ़ी उसी दलदल में धंसे रहने को महिमा मंडित किया। दलितों के विषय में तमाम सवर्ण चिंतकों की शिद्दत यही रही कि दलित इस हिन्दू व्यवस्था में ही अपना कल्याण सोचें। वे इससे बाहर निकलकर स्वतंत्र जीवन के पक्षधर न बनें। डॉ.अम्बेडकर इसी पुरातनपंथी को तोड़कर नए समाज की आधारशिला रखना चाहते थे। इस उपन्यास में ये विश्लेषण बड़ी गंभीरता से आए हैं। नैमिशराय ने ऐसे सवर्ण ढोंगी समाज सुधारकों पर सटीक टिप्पणी की है। महाड़ आंदोलन के समय उस समय के अधिकतर सवर्ण स्वामित्व के समाचार पत्रों ने बाबा साहेब का उतावला कदम कहकर संबोधित किया। परन्तु नैमिशराय की टिप्पणी दर्शनीय है।

भारत में नेतृत्व के मसले पर भी जाति और वर्ण की पहचान होती है। डॉ.अम्बेडकर के अपने समय के सबसे बड़े विद्वान होने के बावजूद उन्हें कदम-कदम पर कठिनाइयों का सामना करना पड़ा, इसके बावजूद गाँधी कदम-कदम पर सम्मान पाते रहे। गाँधी को भारत में बहुत जन समर्थन मिला क्योंकि गाँधी हजारों सालों के शासक वर्ग के प्रतिनिधि थे। उनके जीवन काल में जो सुविधाएँ उन्हें उपलब्ध थी, डॉ.अम्बेडकर को वे सपने में भी संभव नहीं थी। गाँधी जब भी कभी इंग्लैंड यात्रा से भारत लौटते तो उनका एक राजनेता के रूप में भव्य स्वागत किया जाता है। नैमिशराय लिखते हैं कि “वहीं गाँधी के भारत

लौटने की प्रक्रिया शुरू हो गई थी। विदेश में रहने वाला एक द्विज अपने देश में अपनों के बीच लौट रहा था। लौटे तो अम्बेडकर भी थे। पर उनका देश कहाँ था, जिसकी परिकल्पना अम्बेडकर ने की थी? हिन्दू धर्म की वे पहेलियाँ तो अभी भी उलझी हुई थी, जिन्हें सुलझाने के लिए महानायक ने पहल की थी।”¹ उपर्युक्त कथन से पता चलता है कि भारतीय समाज में सवर्ण और अवर्ण का भेद-भाव बहुत गहरा था। जिसके कारण उस समय डॉ.अम्बेडकर के साथ बहुत बुरा व्यवहार किया था। लेकिन गाँधी को सम्मानित किया जाता है।

“महानायक बाबा साहेब डॉ. अम्बेडकर” उपन्यास में लेखक संकेत करते हैं कि “वास्तव में गाँधी और अम्बेडकर दो अलग-अलग देशों के लिए लड़ रहे थे। जहाँ गाँधी अंग्रेजों से सत्ता हस्तांतरण चाहते थे वहीं अम्बेडकर की लड़ाई दोहरी थी। वे अंग्रेजों के साम्राज्यवाद को ललकार रहे थे, वहीं भारतीय समाज व्यवस्था को भी तार-तार करना चाहते थे। असल में विदेशों में अध्ययन का अनुभव उन्हें मानव की सच्ची मुक्ति हेतु काम करने के लिए प्रेरित कर रहा था। उनका ध्यान स्त्री, किसान, दलित सभी की मुक्ति पर था। वे तमाम अंधविश्वासों से मानव को छुटकारा दिलवाना चाहते हैं।”² उपर्युक्त उद्धरण से स्पष्ट है कि डॉ.अम्बेडकर चाहते थे कि दलित समाज आगे बढ़े लेकिन गाँधी चाहते थे कि वह समाज पुरानी परंपराओं का पालन करते हुए अपना कर्तव्य निष्ठा के साथ निभाए।

गाँधी और डॉ.अम्बेडकर में टकराव परिणति तक पहुँचता है, 1932 में हुए पूना पैक्ट में डॉ. अम्बेडकर गोलमेज सम्मेलनों में अपने अथक परिश्रम और अपनी विद्वता के प्रभाव में कम्यूनल अवार्ड वहाँ की सरकार द्वारा मान्य करवा कर भारत में लौटे थे। गाँधी की दूरदर्शिता ने भांप लिया था कि अगर डॉ.अम्बेडकर कामयाब हो गए तो दलितों की स्थिति में गुणात्मक परिवर्तन होना प्रारंभ हो जाएगा, जो पारंपरिक व्यवस्था के लिए हानिकारक होगा। गोलमेज सम्मेलन के दौरान भी उन्होंने मुस्लिम नेताओं से मिलकर डॉ.अम्बेडकर का विरोध करने की बात कही थी। उन्होंने कहा था कि अगर मुस्लिम डॉ.अम्बेडकर का विरोध करेंगे तो वे उनकी तमाम शर्तों को मनवाने का प्रयास करेंगे।

¹ महानायक बाबा साहेब डॉ.अम्बेडकर, मोहनदास नैमिशराय, पृष्ठ सं.-39

² बयान, संपा.मोहनदास नैमिशराय, अंक-78, जनवरी-2013, पृष्ठ सं.-48

परन्तु सवाल प्रतिनिधित्व का था। गाँधी जी ने डॉ.अम्बेडकर के स्थान पर स्वयं को अस्पृश्यों का नेता मनवाये जाने के लिए भरकस प्रयास किये थे। वे डॉ.अम्बेडकर के प्रयत्नों को रोकना चाहते थे। जो दलित समाज के लिए बहुत ज्यादा नुकसान पहुँचने वाला था।

मोहनदास नैमिशराय के ‘महानायक बाबा साहेब डॉ.आम्बेडकर’ उपन्यास में बाबा साहेब डॉ.आम्बेडकर गाँधी के बारे में कहते हैं कि “मैं घृणा तो नहीं करता लेकिन उन्हें पसंद भी नहीं करता। मेरी नापसंदी का कारण यह है कि मैं देश को सर्वोपरि मानता हूँ। इसमें गाँधी जी तो क्या कोई भी आ जाये।”¹ उपर्युक्त कथन से पता चलता है कि देश को कौन सर्वोपरि मानते थे।

महानायक बाबा साहेब डॉ.आम्बेडकर’ उपन्यास में लेखक गाँधी को हिन्दू धर्म के समर्थक होने का संकेत करते हैं हुए कहते हैं “वे आरंभ में हिन्दू धर्म और वर्ण व्यवस्था के कट्टर समर्थक थे यानी लकीर के फकीर थे। उन्होंने कहा भी, मैं पहले हिन्दू हूँ बाद में भारतवासी। लेकिन बाबा साहेब ने कहा था, वे पहले भी भारतवासी हैं और बाद में भी।”² उपरोक्त कथन से पता चलता है कि देश के प्रति भावना को धर्म के प्रति निष्ठा कम आंकने वाले गाँधी कैसे देश भक्त हो गये ?

महिलाओं के प्रति आम्बेडकर और गाँधी के विचारों को स्पष्ट करते हुए लेखक लिखते हैं कि, “अम्बेडकर ने एक बार कहा, मेरे लिए भारतीय महिलाएँ और विदेशी महिलाएँ एक बराबर होती हैं। मैं गाँधी की तरह यह नहीं कहूँगा कि गोरी औरतें मुझे पसंद है। वे भारतीय औरतों की तरह संकोची और दबी-दबी नहीं होतीं। गाँधी का एक-दो नहीं अनगिनत महिलाओं से सान्निध्य रहा। जबकि आम्बेडकर का अपनी पत्नी के अलावा

¹ महानायक बाबा साहेब डॉ.आम्बेडकर ,मोहनदास नैमिशराय, पृष्ठ .सं 23

² वही, पृष्ठ .सं 23

किसी से इस तरह का कोई संबंध नहीं था।”¹ उपर्युक्त कथन से स्पष्ट है कि डॉ.बी.आर. अम्बेडकर और गाँधी के व्यक्तित्व का पता चलता है कि स्त्री को कौन सम्मान करते थे।

4.4 गाँधी और नेहरू

स्वतंत्रता की लड़ाई में गाँधी और नेहरू का योगदान भूलने वाला नहीं है। स्वतंत्रता के बाद नेहरू साम्यवादी समाज का निर्माण करना चाहते थे। गाँधी की तुलना में नेहरू कुछ बातों में दलितों के पक्षधर नज़र आते हैं। ‘आक्रोश’ उपन्यास के द्वारा लेखक गाँधी और नेहरू के सपनों को साकार होते हुए देखाता है। बालदीन के दादा रामदीन ने रणधीर व सरजू यादव से कहा- “भैया क्या गांव छोड़कर हम कहीं और चले जायें? अब हमारा इस गांव में निभाव नहीं है। अब तो घूमना-फिरना भी मुश्किल हो गया है। हमको भागना मंजूर है परन्तु अब बेगार करना मंजूर नहीं। सरकार ने मेरे जानवर उठाने के ठेके दिए हैं। ठेकेदार को बुलाकर ये लोग अपने मेरे हुए बैल भैंसों को उठवायें, हमसे बेगार क्यों करवाते हैं। पढ़ने-लिखने से हमें और हमारे बच्चों को कुछ ज्ञान तो हुआ है। गाँधी-नेहरू की अछूतोद्धार की लम्बी-लम्बी स्पीच रेडियो पर हम भी सुनते हैं। पढ़े-लिखे नहीं है तो क्या बात है। धीरे-धीरे अब हमारी भी आंखें खुल रही हैं। अंधकार और अज्ञानता में तो भैया हमने अपना पूरा जीवन ही काट दिया। अब कुछ सम्मान की जिन्दगी चलते-चलते जीने की तमन्ना है। परन्तु मालूम पड़ता है कि वह दिन अभी दूर है जब इस गांव को गांधी और नेहरू के सपनों का गांव कहा जाय, एक आदर्श गांव कहा जाय।”² उपर्युक्त उद्धरण से मालूम होता है कि स्वतंत्र भारत में दलितों की स्थिति का वास्तविक चित्रण दिखाई देता है। सरकार द्वारा दिखाये गये रास्ते पर चलने को लिए वे तैयार हो जाते हैं। जिसके कारण उनमें एक नया जोश, नई उमंग और नई चेतना को जागते हुए देख सकते हैं।

¹ महानायक बाबा साहेब डॉ.आम्बेडकर ,मोहनदास नैमिशराय, पृष्ठ .सं 23-24

² आक्रोश, रघुवीर सिंह, पृष्ठ सं.28

4.5 आरक्षण

भारतीय समाज के बहुत बड़े वर्ग अर्थात अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति व पिछड़े वर्ग को आरक्षित कोटे के अंतर्गत शिक्षा, नौकरी और चुनाव आदि में विशेष स्थान देने का संवैधानिक प्रावधान है। ताकि वे शिक्षा, नौकरी के सही अवसर पाकर समाज में समान अधिकार प्राप्त कर सकें।

मार्क्सवादी आलोचक डॉ. नामवर सिंह सवर्ण होने कारण आरक्षण पर लिखते हैं कि “समाज की राजनीति करते हुए आरक्षण के प्रावधान का विरोध कुछ-कुछ इन शब्दों में किया कि अगर आरक्षण इसी तरह चलता रहा तो ब्राह्मण और ठाकुर के लड़के भीख मांगते नजर आएंगे।”¹ उपर्युक्त उद्धरण से स्पष्ट होता है कि सवर्णों के मन में आरक्षण के प्रति विरोध की भावना है।

अजय नावरिया के ‘उधर के लोग’ उपन्यास में लेखक इस आरक्षण के मुद्दे पर चर्चा करते हैं। सुशील की महफिल में नए साल की पार्टी में जयंत, सुशील, फिरोज और तीन नए लोग थे। सुशील कहता है कि “आरक्षण का सबसे ज्यादा फायदा जाटवों ने उठाया है।”² उपर्युक्त कथन से पता चलता है कि आरक्षण से तो सुशील भी आई.पी.एस. बनता है। लेकिन सुशील वाल्मीकि जाति से था। आजकल आरक्षण से अधिक दलितों को फायदा हो रहा है। लेकिन उनमें भी कहीं-न-कहीं अधिक आरक्षण का फायदा उत्तर भारत से चमारों, जाटव और आंध्र प्रदेश और तेलंगाना से माला जाति के लोगों को मिला है। यानी दलित, पिछड़ी जातियों में भी जिनका संख्या बल अधिक है वहीं आरक्षण का फायदा उठा रहे हैं। जिसकी वजह से अन्य उपजातियाँ आज भी आरक्षण के लाभ से वंचित रह रही हैं।

‘आक्रोश’ उपन्यास में लेखक ने दलित परिवार में आरक्षण से होने वाले परिवारों का जिक्र किया है। भज्जू राम दलित गरीब परिवार से है। भज्जू राम ने आई.आई.टी. कानपुर से बी.टेक करके इन्जीनियर की पोस्ट से नौकरी आरम्भ की थी। बी.राम से गुप्ता

¹ अपेक्षा, सं. तेजसिंह, जनवरी-मार्च 2012, पृष्ठ सं.-3

² उधर के लोग, अजय नावरिया, पृष्ठ सं.-57

और मिसेज गुप्ता उनकी पुत्री भानुप्रिया की शादी करते हैं। गुप्ता जी जाति से वैश्य और बी.राम जाति से दलित थे। भानुप्रिया और बी.राम की शादी के बाद भी जाति वही रही जो जन्म से थी। “घर में ये बच्चे वैश्य थे और मेडिकल और इन्जीनियरिंग कालेजों में इनके द्वारा बी. राम की अछूत जाति का पूरा लाभ उठाकर एस.सी. का सर्टिफिकेट बनवाकर शिक्षा दीक्षा और नौकरी तक अर्जित की गई! इस तरह की औलादों का वजूद भी थाली के लुढ़कने बैंगन जैसा होता है फायदे के लिए एस.सी और जाति के लिए वैश्य। एक बड़ा लड़का डाक्टर बना तो दूसरा इन्जीनियर! इन दोनों बच्चों की किसी ने एस.सी. सर्टिफिकेट बनवाने की शिकायत भी की थी परन्तु चूंकि इनका वैधानिक बाप एस.सी. था, इसलिए वैश्य मनोवृत्ति के इन डॉक्टर, इन्जीनियरों को एस.सी. का फायदा ऐसे बनावटी एस.सी. से दलित समाज का प्रच्छन्न शोषण ही होता है सुधार नहीं! दलितों की सीट हथिया कर काम सवर्णों का करते हैं।”¹ लेखक इन विचारों से पता चलता है कि भानुप्रिया उन दो बच्चों को पढ़ाई और नौकरी के लिए एस.सी. जाति के सर्टिफिकेट का उपयोग करती है। उन बच्चों की संस्कृति, शादी, रहन-सहन, आचार-विचार सभी वैश्य जाति के रह जाती हैं। सिर्फ उनके फायदे के लिए अन्तर्जातीय विवाह कर लेते हैं। अन्तर्जातीय विवाह से बी.राम अपने गाँव और घर से नाता-तोड़ लेता है। डॉ.अम्बेडकर ने जाति उन्मूलन के लिए अन्तर्जातीय विवाह को एक माध्यम माना था। लेकिन आज ब्राह्मणवादी समाज इसका भरपूर फायदा उठाने का काम कर रहा है। सिर्फ अपने फायदे के लिए अन्तर्जातीय विवाह को प्रोत्साहित कर रहे हैं।

4.5.1 जाति-उपजातियों का अधिकार

समाज में आज जिस व्यक्ति के पास अधिकार है, वह दूसरी जाति पर अत्याचार कर रहा है। अधिकार मिलने से वह अपने आपको प्रभुत्वशाली समझने लगता है। समाज में आज उच्च स्थिति में पहुँच कर व्यक्ति अपना अधिकार निम्न व्यक्तियों पर दिखाना चाहता है। ‘उधर के लोग’ उपन्यास में सुशील आई.पी.एस बनता है। उसके मित्र प्रोजेक्ट का निर्माण करते हैं। उसमें जयंत को शामिल नहीं करना चाहते क्योंकि वह चमार जाति से

¹ आक्रोश, रघुवीर सिंह, पृष्ठ सं.-379

संबंध रखता है और उसे लगता है कि ये लोग उन्हें कभी भी लीडरशिप नहीं देंगे। सुशील कहता है कि “मैं नहीं चाहता कि कोई इस प्रोजेक्ट में रहे।...वे हमें कभी लीडरशिप नहीं देंगे।”¹ उपर्युक्त उद्धरण से पता चलता है कि प्रत्येक व्यक्ति अधिकार का दावेदार बनना चाहता है वह नहीं चाहता कि कोई भी जाति ऊपर उठे, वह सिर्फ अपनी जाति को ऊपर उठाना चाहता है। इसी प्रकार बनवारी लाल जो नायक का दूर का चाचा है संघमित्र संस्था में शामिल है। वह भी फिरोज को इस संस्था से बाहर निकालना चाहता है क्योंकि वह मुस्लिम है। वे इसलिए ऐसा करते हैं क्योंकि वे हिन्दूवादी संगठन के साथ काम कर रहे हैं। इसका कारण है कि वह दल जिसके साथ चाचा बनवारीलाल काम कर रहा था, वह उसका विरोध कर रहे थे। “सत्ता और सत्ता के अप्रत्यक्ष दावेदार, हमारे हर काम की निगरानी कर रहे थे। वह उनका फर्ज था, उनकी जिम्मेदारी थी और उनका स्वार्थ भी। चाचाजी, वहाँ से संचालित होकर मुझ तक पहुँचे थे, वे सत्ता के अनाधिकृत परन्तु ताकतवर केन्द्र थे।”² उपर्युक्त उद्धरण से मालूम होता है कि सत्ता के लिए हिन्दू दल, चाचा जी द्वारा नायक को मुस्लिम फिरोज के खिलाफ करके अपनी सत्ता के केंद्र को ऊपर उठाना चाहते थे और मुस्लिम लोगों के प्रति उसे भड़काना चाहते थे। लेकिन नायक न तो सुशील की बात को सहमति देता है न ही चाचा बनवारी लाल को।

समाज में दिन-ब-दिन जातिवाद बढ़ रहा है। अधिकार के दावेदार अपनी राजनीति द्वारा किसी जाति को अन्य जाति के विरुद्ध लड़ाना चाहता है। लेकिन नायक द्वारा लेखक इसका विरोध करता है और संघमित्र संस्था में वह सभी को शामिल करता है। लेखक यह भी स्पष्ट करता है कि सुशील जिसको ऊपर से दबाव है, वह अपनी नौकरी में उच्च बना रहने के लिए ऐसा करता है। उपन्यास में राजनीतिक असमानताओं पर भी प्रकाश डाला गया है। उपन्यास का पात्र राना एक अफसर है। वह सरकारी कार्य पर कार्यरत है। उसका राजनीतिक दलों पर विश्वास नहीं है क्योंकि उसका मानना है कि राजनीतिक पार्टियाँ अपने फायदे के लिए ब्राह्मणों से भी समझौता करती हैं और जब उन्हें हमारे-तुम्हारे लोगों से जैसे काम होगा तो वह हमसे संबंध बना लेगा। राना प्रोफेसर से कहता है कि “प्रोफेसर, तुम्हें यह

¹ उधर के लोग, अजय नावरिया, पृष्ठ सं.-178

² वही, पृष्ठ सं.-174

भी साफ-साफ बता दू कि चमार कम्युनिटी की यह पोलिटिकल पार्टी, बार-बार ब्राह्मणों से समझौता करेगी।...ऑफ्टर ऑल रिकग्निशन तो ब्राह्मण ही दे सकते हैं..पर ये मत भूलना कि ब्राह्मण, चमारों को कभी पसंद नहीं करेंगे, न किया है, न करेंगे..उन्हें साथ लेना पड़ा तो वह हमें और तुम्हें लेंगे..चमार कम्युनिटी उनकी नेचुरल अलायन्स नहीं है पर हम हैं..वे एक-दूसरे के विरोधी हैं, हाँ, पर इस चक्कर में अच्छे चमार और अच्छे ब्राह्मण बेमौत मारे जाएँगे।”¹ उपर्युक्त उद्धरण से पता चलता है कि लेखक राना के माध्यम से राजनीतिक पार्टियों की पोल खोलता है कि किस प्रकार ये राजनीतिक दल अपने फायदे के लिए बेकसूर लोगों को अपनी राजनीति का मोहरा बनाकर कार्य करते हैं। जिससे राना जैसे लोग राजनीतिक दलों से असंतुष्टता का अनुभव करते हैं।

4.6 शिक्षा में नेताओं का योगदान

भारतीय समाज व्यवस्था में शिक्षा सभी के लिए एक समान नहीं रह पायी आज संवैधानिक अधिकार के चलते हर समाज के लिए शिक्षा के द्वार खुल गये हैं। लेकिन शिक्षा के क्षेत्र में आज नेताओं का हस्तक्षेप होता नजर आता है। जिसके कारण शिक्षा एक व्यापार बन पड़ा है। उसके साथ-साथ राजनीतिक हथियार भी। मोहनदास नैमिशराय के ‘मुक्ति पर्व’ उपन्यास में इस मुद्दे पर विशेष ध्यान दिया गया है। दलित बस्ती के लोगों ने रामलाल को नगरपालिका के चुनाव में जिताया था। रामलाल ने चुनाव में स्कूल मंजूर करवाने का वादा किया था। इसलिए तीनों बस्ती के लोगों ने मिलकर रामलाल को जिताया था। “बस्ती में स्कूल खुलने की सूचना रामलाल ने दी थी। रामलाल पिछले चुनाव में यहीं से जीता था। वह कांग्रेसी था। आर्य समाज का उस पर प्रभाव था। जाति से बनिया था। बस्ती के जिस व्यक्ति ने भी सुना उसकी खुशी का कोई ठिकाना नहीं था। एक ने दूसरे को बताया और दूसरे ने तीसरे को। घर-घर में यही चर्चा थी। चूल्हे के आगे हाथ-पाँव तापते हुए मर्द अपनी घरवालों से बतिया रहे थे। औरतों का मन यह सोच कर पुलकित हो रहा था कि उनके बच्चे भी अब स्कूल में पढ़ने-लिखने जाया करेंगे।”² उपर्युक्त उद्धरण से स्पष्ट होता है कि नेता रामलाल के वादे ने दलित बस्तियों में खुशी फैला दी। हर दलित

¹ उधर के लोग, अजय नावरिया, पृष्ठ सं.-148-149

² मुक्ति पर्व, मोहनदास नैमिशराय पृष्ठ सं-38

व्यक्ति का यही विचार था कि उनके अपने बच्चों भी अब स्कूल जायेंगे, पढ़ेंगे, लिखेंगे अच्छी नौकरी पायेंगे।

4.7 ब्रिटिश साम्राज्य

अंग्रेजों के शासन में कुछ अमूल-चूल परिवर्तन हुए थे। जिसके कारण दलितों के लिए शिक्षा के द्वार खुल गये थे। फिर भी सवर्णों का वर्चस्व कायम था। उनका असर ब्रिटिश सरकार पर पड़ा था। ‘महानायक बाबा साहेब डॉ.अम्बेडकर’ उपन्यास में उस समय की स्थितियों का चित्रण लेखक ने बखूबी किया है। ब्रिटिश शासन काल में भी सवर्णों का शासन था। कहने के लिए तो दलित भी हिन्दू है। “हिन्दुओं का बड़ा निर्दय समाज था। कहने को अंग्रेजों का शासन था, लेकिन चलती सवर्ण जातियों के अधिकारियों की ही थी। ब्रिटिश साम्राज्य के वे पाएदान भी थे और पीकदान भी। वे गुलाम भी थे और दरबारी भी। दलित तो इन गुलामों के गुलाम थे।”¹ उपर्युक्त उद्धरण से मालूम होता है कि भारत में स्वतंत्रतापूर्व भी सवर्ण ठाकुर और जमींदार का ही शासन चलता था। दलित लोग गुलामों के भी गुलाम रहे। स्वतंत्रतापूर्व ब्रिटिश अधिकारी शासन कर रहे थे। भारतीय स्वतंत्रता के बाद सवर्ण शासन चला रहे हैं। दलितों की जैसी स्थिति पहले थी वैसी ही स्थिति आज भी भारत के गाँवों में विद्यमान है।

डॉ.अम्बेडकर के प्रयासों से दुनिया के लोगों को पता चला कि भारत में ऐसे भी लोग हैं। जो व्यक्ति से ज्यादा पशुओं का आदर करते हैं। दलित होना पशु से भी बदतर जिंदगी है। “कोकण में उनके लिए आम सड़क पर चलने की मनाही है। यदि कोई सवर्ण हिन्दू सामने आ जाए तो अछूत को दूर हट जाना पड़ता है ताकि उसकी परछाई पड़ने से सवर्ण हिन्दू अपवित्र न हो जाए। अछूत तो एक नागरिक भी नहीं।”² यानी सवर्ण दलित और अछूतों को मनुष्य की तरह देख भी नहीं पाते थे तो वह कैसे अपेक्षा कर सकते हैं कि उन्हें नागरिक होने का दर्जा दिया जाएगा।

¹ महानायक बाबा साहेब डॉ.आम्बेडकर, मोहनदास नैमिशराय, पृष्ठ .सं 42

² वही, पृष्ठ .सं 50

‘आक्रोश’ उपन्यास में उमा बालदीन से कहती है कि “डॉ.अम्बेडकर के इस मत से सहमत नहीं हूँ कि व्यवस्था में जातिवाद और अस्पृश्यता के पोषक धर्मशास्त्र नष्ट किये जायें। बेहतर यह होगा कि भारतीय संविधान के द्वारा प्रदत्त अधिकारों का दलित शोषण अन्याय के प्रतिकार के रूप में उपयोग करें। मनुस्मृति जैसे ग्रंथ जलाना समस्या का सही हल नहीं है। सही हल है लोगों की मानसिक सोच बदलना। आप देखते हैं न आपके जो पढ़े-लिखे भाई हैं हवन यज्ञ, व्रत ,उपवास, गंगा स्नान, पूजा पाठ करने पर क्या कोई उन्हें रोकता है?...सोच भी धीरे-धीरे ही बदलती है, इस तथ्य को आपको स्वीकार करना चाहिए।”¹ उपर्युक्त कथन से पता चलता है कि जाति से सवर्ण थी। वह डॉ.अम्बेडकर की विचारधारा का विरोध करती है। लेकिन गाँधीवाद से प्रभावित थी। उमा को लगता है कि मनुस्मृति का जलाना समस्या का हल नहीं है। उमा समाज में मानसिक बदलाव चाहती है।

‘मुक्ति पर्व’ उपन्यास में लेखक ने दिखाया है कि भारत में आजादी के बाद सवर्णों द्वारा दलितों को देखने की दृष्टि बदल गयी है। “देखो, सँभल कर रहना, दलित अब पहले जैसे नहीं रहे हैं। इनके नेता भी अब संसद और विधान सभाओं में पहुँचने लगे हैं। जो बाल की खाल निकालने लगे हैं। और सचमुच वे सावधान हो जाते थे।”² यानी आज संवैधानिक अधिकार ने दलित समाज को आर्थिक प्रदत्तता के साथ सामाजिक सम्मान व दर्जा भी दिया है।

‘मुक्ति पर्व’ उपन्यास में रामलाल कांग्रेसी पिछले चुनाव में दलित बस्ती से ही जीता था। वह जाति से बनिया था। दलित बस्ती में सभी अँगूठा छाप थे। पढ़ने-लिखने का अवसर ही नहीं मिला था। कदम-कदम पर जाति के आधार पर लगाई गई बंदिशें सामने आती थी। रामलाल ने चुनाव में स्कूल खुलने की घोषणा की थी। वैसे ही स्कूल की शुरुआत हो जाती है। लेकिन दलित बस्ती में पढ़ाने के लिए कोई तैयार नहीं था। सुनीत को पढ़ाने के लिए नियुक्त किया जाता है। इस घटना के बाद रामलाल को लोग इज्जत करने लगे थे। रामलाल बीमार पड़ गया तो दलित बस्ती के सभी लोग देखने चले जाते हैं। “रामलाल को विश्वास न था। इतनी संख्या में लोग दौड़े-दौड़े उन्हें देखने आ जाएँगे। खुशी

¹ आक्रोश, रघुवीर सिंह, पृष्ठ सं.- 320

² मुक्ति पर्व, मोहनदास नैमिशराय पृष्ठ सं-34

से उनकी आँखें भर आई कहा कुछ नहीं, वे उनकी भावनाएँ समझते थे। वही भोले भाले लोग ही तो उनकी ताकत थे। उन्हीं के बलबूते पर उन्होंने मात्र पचास रुपए खर्च कर नगरपालिका का चुनाव जीता था। न तंबू न डेरे, न भाषणबाजी। बहुत सीमित चुनावी कार्यक्रम के आधार पर वे सैकड़ों मतों से विजयी हुए थे। चुनाव क्षेत्र के मतदाताओं की संख्या दो हजार के लगभग थी। जिसमें तीन बस्तियाँ आती थीं। इन तीनों बस्तियों में दलित मतदाताओं की संख्या अधिक थी। पर वह सुरक्षित सीट न थी।”¹ इससे लेखक कहना चाहता है कि दलित समाज अपने लिए जो भी काम करता है उनके भरोसे को निभाता है, उन्हें कभी अकेले नहीं छोड़ते हैं। उसके हर सुख-दुःख में उसका साथ देते हैं। अंत तक उसके साथ खड़े होते हैं।

मोहनदास नैमिशराय के ‘मुक्ति पर्व’ उपन्यास में लेखक ने सुनीत के माध्यम से शिक्षा के महत्व को समझाया है। सुनीत ने करतारा को शिक्षा के महत्व के बारे में समझाकर उसके बेटे उछाल को ले जाकर स्कूल में दाखिला करवाया था। हेड मास्टर साहब से पाण्डेय कहता है कि “यह स्कूल कोई भंगी-चमारो का स्कूल नहीं है जो चाहे गिरे-पड़े किसी को भी दाखिला दे दो। उनकी बात सुनकर हेड मास्टर धीमे स्वर में बोले- पर पाण्डे जी, हम कर ही क्या सकते हैं। सरकार के ऐसे ही आदेश हैं। सुनकर पूरी मण्डली भड़क गई। पाण्डेय फिर उबले –जिस सरकार ने एक चमार को अपने मंत्रिमंडल में ले रखा है उस सरकार का भला कोई दीन-ईमान है क्या ? तभी बीच में चौबे बोल उठे-सरकार ने ही तो इन्हें सिर पर बैठा रखा है।”² उपर्युक्त उद्धरण से पता चलता है कि हेड मास्टर ने सरकार के नियमों के अनुसार स्कूल में उछाल की दाखिले की बात की है। लेकिन दलितों के प्रति सवर्णों की मानसिक विचार और जलन का बाकी मास्टरों से पता चलता है। वे दलितों को शिक्षा और अन्य अधिकारों से वंचित रखना चाहते हैं। वे सोचते हैं कि पीढ़ी-दर-पीढ़ी वे हमारी सेवा करे और गुलाम बनकर ही रहे।

“हालाँकि पूरे शहर में ही जातिबेल फलने-फूलने लगी थी। शिक्षा संस्थानों में सरस्वती वंदना करने वाले अध्यापक जातियों की दीवारों को गिरा नहीं रहे थे बल्कि

¹ मुक्ति पर्व, मोहनदास नैमिशराय पृष्ठ सं-40

² वही, पृष्ठ सं-103

शिक्षण भावना और नैतिकता के विपरीत वे जाति-विषमता की दीवारों को और ऊँचा उठाने की मुहिम में लगे थे। अन्य स्कूलों की तरह जब इस स्कूल में जातियों की राजनीति को हवा मिली तो परिवेश को और भी वह झुलसाने लगीं। ऐसी गर्म हवा में भला विद्यार्थी कैसे बचे रह सकते थे। वे स्कूल में होते या स्कूल से बाहर, अस्पृश्यता की बातें करने से बाज नहीं आते। पाण्डे जैसा अध्यापक उन बच्चों के दिमाग में जहर घोलने लगा था।”¹ लेखक मानता है कि शिक्षा संस्था जैसी पवित्र और नैतिकता के प्रतीक जगहों पर भी जाति की हवा तेजी से फैलने लगी है। इसको आगे बढ़ाने में शिक्षकों के योगदान को भी स्पष्ट करते हैं।

एस.आर.हरनोट के ‘हिडिम्ब’ उपन्यास में दलित जाति के साथ होने वाले अत्याचार एवं शोषण का चित्रण मुखरित होता है। शावणू को यह ज़मीन उनके पिता नड़न हिडिम्ब देवी को प्राण बलिदान करने से मिला था। “शावणू नड़ की ज़मीन पर एक दिन मन्त्री की नजर पड़ गई। मन्त्री घाटी में अपने चुनाव क्षेत्र के दौर पर था। वह अपने काफिले के साथ अचानक रुक गया। ज़मीन सड़क से नीचे की ओर साफ दिखाई देती थी। काफी देर तक मन्त्री ज़मीन का मुआइना करता रहा। उसने ऐसी बढ़िया जगह कहीं नहीं देखी थी। इस पर मुग्ध होना स्वाभाविक था। ज़मीन की खूबियां उसके मन में बैठ गई। तीव्र अभिलाषा हुई कि किसी भी कीमत पर वह जगह हासिल हो जाए।”² दलित जातियों की हर वस्तु पर सवर्ण जाति के वे लोग अपना हक जमाना चाहते हैं। वे कभी नहीं चाहते कि उनके पास कोई कीमती और अच्छी चीज के हकदार न बने। शावणू की जमीन को पाने के लिए मन्त्री किसी भी हद तक गिरने के लिए तैयार दिखाई देता है।

मन्त्री चुनाव में जीतकर आने के बाद “उस मन्त्री की कल्पनाएं निराली थीं। राजनीति में आते ही उसकी पहली इच्छा यह थी कि उस सुन्दर घाटी में नदी के किनारे उसके पास कई बीघे जगह हों। जिसमें रहने के लिए आलीशान कोठी, एक सौ कमरों वाला पाँचसितारा होटल और एक ऐसा फार्महाउस जिसमें सौ गायें पाली जाएं। वैसे मन्त्री बनने से पूर्व उसने उसी घाटी में नदी के किनारे कुछ जगह पर अपनी कल्पनाएं साकार करने की

¹ मुक्ति पर्व, मोहनदास नैमिशराय, पृष्ठ सं-105

² हिडिम्बा, एस. आर. हरनोट, पृष्ठ सं-11

कोशिश शुरू कर दी थी।”¹ सत्ता के हासिल होने के साथ ही चाहे जितना भी नेक इरादों वाला इन्सान क्यों न हो, वह लालच में आ जाता है। अपनी सत्ता का उपयोग करके सुविधा भोगी बनाना चाहता है। उस लोभ के कारण उसे साकार करने के लिए किसी का घर बिखरा सकता है। और जान भी ले सकता है। यह सब सत्ता के बल पर करना चाहता है।

लेखक मंत्री और उसके गुण्डों की प्रवृत्ति का फर्दाफिश करते हुए कहते हैं कि “वह ज़मीन एक गरीब हरिजन की थी। उसे भी मन्त्री ने अवैध रूप से हथियाया था। उस हरिजन के परिवार में दूसरा कोई न था। दो बेटियाँ थीं जिनकी शादियाँ मुश्किल से की थीं। पत्नी की मृत्यु हो चुकी थी जब मन्त्री ने ज़मीन पर कब्जा जताना चाहा तो इस अन्याय के खिलाफ उसने मुकदम दर्ज कर दिया। लेकिन एक दिन मन्त्री के आदमियों ने उसके चेहरे पर तेज़ाब फेंक दिया। वह बुरी तरह झुलस गया। कई दिनों तक अस्पताल में पड़ा मौत और जिन्दगी से जूझता रहा लेकिन बच न पाया। पटवारी और दूसरे अधिकारियों ने ज़मीन के झूठे कागजात बनाए कि हरिजन ने अपनी ज़मीन मन्त्री को बेच दी थी।”² उपर्युक्त उद्धरण से स्पष्ट होता है कि मन्त्री और उसके गुण्डे जमीन के लिए कुछ भी करने को तैयार हो जाते हैं। यहाँ तक की उस पर जान लेना हमला भी करते हैं। सत्ता का यह खौफनाक सच है। जिसे लेखक ने बेबाकी से इस उपन्यास में चित्रित किया है।

लेखक प्रशासनिक व्यवस्था का असली रूप दिखाने का प्रयास करते हैं। “पटवारी जानता था कि शावणू को क्यों बुलाया गया है पर अपना मुँह बन्द रखने में ही बेहतरी समझाता है। भले ही वह शावणू का अच्छा परिचित था। उसके गांव-परगने का रहने वाला था। लेकिन था तो उसी व्यवस्था का हिस्सा। उसे अपनी नौकरी प्यारी थी। पटवारी जैसे लोग इस तरह के अवसरों को कतई हाथ से नहीं जाने देते थे। इसके लिए चाहे उन्हें कुछ भी क्यों न करना पड़ता। उस समय न इनका कोई ईमान होता न कोई धर्म और न ही कोई अपना-पराया। न कोई कायदे-कानून होते। अपने अफसरों के आदेश ही इनके लिए

¹ हिडिम्बा, एस. आर. हरनोट, पृष्ठ सं-12

² वही, पृष्ठ सं-12

सर्वोपरि रहते। फिर यहां तो मामला मन्त्री का था।”¹ मंत्री जो लोकतांत्रिक सत्ता का प्रतीक है, कोई उसका विरोध करने की कोशिश नहीं कर सकता उसके आज्ञा का पालन करने वाले प्रशासनिक व्यवस्था से क्या उम्मीद कर सकते हैं। वह भी उसके डर के अनुकूल ही काम करते हैं।

“वहाँ एक नया विवाद खड़ा हो गया था। दो देवता आपस में लड़ गए। कारकुनों में बहस हो रही थी। नौबत हाथपाई तक आ पहुँची। यात्रा रुक गई। मसला यह था कि एक देवते के कारदार कहते कि उनका देवता भगवान जी के दाएँ बाजू चलेगा। दूसरे की जिद थी कि दायाँ किनारा उसी का है। इसलिए दाईं तरह वही चलेगा। शावणू का एक जानने वाला मिला तो उससे बात पूछी। उसने बताया कि यह झगड़ा पुराना है। इसमें अब राजनीति घुस गई है। भाई वह कैसे? शावणू की उत्सुकता जागी। जो पहला देवता है न वह नई पार्टी के विधायक के गाँव से है। और देवता जी पुराने एम.एल. गाँव के। दोनों पक्ष-विपक्ष के हैं आपस में बणती नहीं। बुरा जमाना आ गया बई शावणू।”² समाज में सत्ता की भावना सभी क्षेत्रों व जगहों पर हावी है। यहाँ तक कि मंदिर, भगवान और उत्सव में भी उसका हस्तक्षेप है। सत्ता के लिए बीच में जब विवाद छिड़ जाता है तो वह हिस्सा का रूप धारणा करता है। जिसका अंजाम बुरा ही निकलता है।

लेखक ने उपन्यास के माध्यम से राजनीतिक व्यवस्था और उसके पोषक जब सत्ता में आ जाता है तब उनके वास्तविक चेहरा किस तरह सामने आ जाता है इसका चित्रण किया है। “हाँ ! शावणू हाँ मैं मन्त्री। नेताओं का नेता.... मेरे टोपी में सभी समा गए हैं। मेरा एकछत्र राज.... हर जगह.... चल रहा है। मैं जो चाहूँ कर सकता हूँ। सब कुछ मेरे वश में है। नदी, झरने, पहाड़, जंगल, हिमशिखर, पशु, पक्षी, लोहबाग, जानवर, तुम्हारे ये देवता जो मन्दिरों में कैद हैं। यानी सम्पूर्ण प्रकृति मैं इन सभी का राजा बन गया हूँ।”³ मनुष्य जब अधिकार पा लेता है, उस वर्ग में यह भूल जाता है कि वह संपूर्ण प्रकृति का एक

¹ हिडिम्बा, एस. आर. हरनोट , पृष्ठ सं-17

² हिडिम्बा, एस.आर. हरनोट, पृष्ठ सं.-94

³ वही, पृष्ठ सं-232

हिस्सा मात्र है। स्वयं को सबसे ऊँचा और सर्व शक्ति संपन्न समझने लगता है। सभी को अपने में समाहित करना चाहता है।

दलित-आदिवासी सदियों से प्रकृति के साथ समेक्य हो कर उसे अपने जीवन का अंग बनाए हैं। जिसका चित्रण लेखक ने अपने उपन्यास में दलित पात्र के द्वारा दिखाया है। “राजा ही नहीं शावणू, इस धरती का अधिष्ठाता राक्षस हूँ मैं। मैं रघुनाथ और हिडिम्बा की तरह असहाय नहीं हूँ। गूंगा-बहरा नहीं हूँ। मेरी न कोई पालकी है और न ही कोई रथ-छत्र। मेरा न कोई मन्दिर, न गुरुद्वारा। न चर्च और न मस्जिद। न कोई देहरियां। मैं तो साक्षात् हूँ....सर्वत्र। देख ले शावणू देख।”¹

“शावणू को उस पहाड़ का गिरना भीतर तक साल गया। उसे न तो कभी पहाड़ों को डायनामाइटों से गिराना अच्छा लगा था और न ही धड़ाधड़ पेड़ों का काटना व बुलडोजर का पहाड़ की छाती को रौदते जाना भाया था।.... वह सोचने लगा कि इन पहाड़ों की स्थिति भी उस जैसी ही हो गई है....अपने स्वार्थ के लिए ये नेता लोग कुछ भी नहीं देखते, चाहे वह कोई गरीब हो या फिर हरे-भरे जंगल या पहाड़। हालांकि ये सारे काम विदेशी कम्पानियों के हाथों हो रहे थे जिसमें एरी भी था लेकिन वह दोष वहां की सरकार और स्वार्थी नेताओं को ही देता था जो दिन रात इन पहाड़ों और नदियों का सौदा कर रहे थे।”² इससे प्रतीत होता है कि चन्द पैसों के लिए अपने जीवनाधार को ही खतम करने जा रहे हैं। इसके पीछे पूरी व्यवस्था गुनेहगार की तरह खड़ा करते हैं।

अधिकार की लोलुपता ने अपने स्वार्थ के लिए एक परिवार को ही खत्म कर दिया जाता है। “शावणू और उसकी माँ के लिए यह प्रलय से कम नहीं था। उनका तो संसार ही उजड़ गया। खेल ही खेल में सब कुछ जाता रहा। चहुं ओर एक अविश्वास की सत्ता कायम हो गई। किल्बिष का साम्राज्य फैल गया।”³ इससे स्पष्ट होता है कि न्याय नीति नैतिकता और समानता जैसी बात दलित समाज के लिए झूठी साबित होती नज़र आती हैं।

¹ हिडिम्बा, एस. आर. हरनोट, पृष्ठ सं-232

² वही, पृष्ठ सं-256

³ वही, पृष्ठ सं-48

“देखो, सँभल कर रहना, दलित अब पहले जैसे नहीं रहे हैं। इनके नेता भी अब संसद और विधान सभाओं में पहुँचने लगे हैं।”¹ किसी एक दो दलित नेताओं का संसद में अपने से विधान सभा कोई बड़ा परिवर्तन नहीं हो जाता है। वह भी अधिकार की मादकता में डूबकर अपने समाज के प्रति झूठी सांत्वना दिखाने लगते हैं।

4.8 अदालत

‘सैनिक का खून’ उपन्यास में सोमलता का दामोदर बलात्कार करता है। अदालत में न्यायधीश से सोमलता कहती है कि “रात के नौ बजे पुनः शराब के नशे में डोलता हुआ मेरे पास पहुँचा। मैं घबराई हुई थी। सांसों की बदबू से मेरा मस्तिष्क चक्कर खा गया। मैंने अपनी इज्जत बचाने की कोशिश की, लेकिन सफल न हुई। मैं छटपटाती रही, मेरी परवाह न करके इसने मेरे साथ बलात्कार किया। दायरा असीमित होता गया, इसके बाद कई आदमी अपनी वासना की आग बुझाते रहे। मेरी अस्मत् को झिझोड़ कर रख दिया। बेहोशी की हालत में भी कई इन्सानी जिस्म मेरे साथ जलील हरकतें करते रहे। दो दिन बाद मुझे होश आया था।”² उपर्युक्त उद्धरण से मालूम होता है कि भारतीय समाज में स्त्रियों पर अत्याचार किया जाता है। और न्यायधीश से सोमलता कहती है कि “सर, मैं औरत नहीं हूँ। नारी समाज के नाम पर कलंक का टीका हूँ। मैं जीना भी नहीं चाहती। लेकिन जिन्दगी की एक गतिविधि होती है, उसे रोकना किसी के भी वश की बात नहीं, रोकना भी नहीं चाहिए। आत्मघात सबसे बड़ा पाप है। मैं इस सभ्य समाज में मुँह दिखाने लायक नहीं हूँ।”³ उपर्युक्त कथन से पता चलता है कि भारतीय समाज में नारियों पर शक करना आज से नहीं सदियों से यह परंपरा चली आ रही है। नारी का सदियों से बलात्कार और शोषण किया जा रहा है। नारी को स्वतंत्र रूप से जीने के लिए स्वतंत्रता के सत्तर वर्ष होने पर भी नारी को स्वतंत्रता नहीं मिली। वह आज की न्याय के लिए न्यायलय के चक्कर काट रही है।

¹ मुक्ति पर्व, मोहनदास नैमिशराय पृष्ठ सं-34

² सैनिक का खून, डॉ.विजयी, पृष्ठ सं.-130

³ वही, पृष्ठ सं.-128

4.9 समाज में अधिकार

अधिकार, किसी वस्तु को प्राप्त करने या किसी कार्य को संपन्न करने के लिए उपलब्ध कराया गया किसी व्यक्ति की कानून सम्मत या संविधान सम्मत सुविधा, दावा या विशेषाधिकार है। कानून द्वारा प्रदत्त सुविधाएँ अधिकारों की रक्षा करती हैं। दोनों का अस्तित्व एक-दूसरे के बिना संभव नहीं। जहाँ कानून अधिकारों को मान्यता देता है वहाँ इन्हें लागू करने या इनकी अवहेलना पर नियंत्रण स्थापित करने की व्यवस्था भी करता है। अधिकार भोगनेवाली महारानी लक्ष्मीबाई और श्रम का शोषण होनेवाली वीरांगना झलकारी बाई से उनके पिता सदोवा कहते हैं कि “सवर्ण जाति के लोगों से बातचीत हो, पूछ ताछ की जाए। ऐसी न सुविधा थी और न ही अवसर मिल पाता था। ऊँची जाति के लोग स्वयं उससे अपने काम की बातें करते थे। बातें करते हुए बीच में उनका बड़प्पन आता था। दलित समाज को सुनना ही अधिक पड़ता था, जबकि सवर्ण जातियों के लोगों के पास सुनाने के सारे विशेषाधिकार थे। जब उन्हें उनकी जरूरत पड़ती, तुरन्त बुलाते थे।”¹ उपर्युक्त उद्धरण से पता चलता है कि समाज में श्रम करना दलितों का और उस का फल भोगना सवर्णों का काम है। इस उपन्यास में पुरन और झलकारी बाई समाज हित के लिए कार्य करते हुए दिखाया है। लेखक कहता है कि “जो झाँसी के सवर्ण समाज को सहन नहीं हुआ। उन्होंने आगे बढ़ने का प्रयास किया था, पर समाज उन्हें पीछे खींच रहा था। वे दोनों ही तत्कालीन परिस्थितियों से जूझ रहे थे। और संघर्ष कर रहे थे। यूँ समाज में भी मन्थन था, पर धीमी रफ्तार से। बदलाव की आशा थी, पर बहुत कम। लोगों को अपने ऊपर विश्वास न था। वे मठ-मन्दिरों में जा-जाकर नाक रगड़ते थे।”² उपर्युक्त कथन से पता चलता है कि सवर्ण समाज पुरन और झलकारी बाई कोरीन जाति से होने के कारण इन दोनों को आगे बढ़ने नहीं देते हैं। वे लोग समाज में बदलाव की अपेक्षा करते थे और लोग उन मंदिरों और मठों पर विश्वास करते थे।

डॉ. विजय के ‘सैनिक का खून’ उपन्यास में पूंजीपतियों द्वारा मजदूरों का किस प्रकार शोषण किया जाता है उसका चित्रण है। मद्रास सूती कपड़े के मिल में आर्येश कुमार का

¹ वीरांगना झलकारी बाई, मोहदास नैमिशराय, पृष्ठ सं-24

² वही, पृष्ठ सं-39

मामा जगदेव सिंह एकाउन्टेन्ट का काम करते थे। आर्येश कुमार अक्तूबर महीने में छुट्टी लेकर आते हैं। जगदेव सिंह अधिकारी वर्ग का आदमी था, लेकिन वह मजदूरों से सहानुभूति रखता था। मजदूरों का वेतन बढ़ाना और काम के घंटे कम करने के लिए किये गये हड़ताल में लाठी चार्ज और गोली चलायी गयी। घटना के बारे में इन्स्पेक्टर डी.पी.राय एस.पी. साहब से कहता है कि “कल दिन के दस बजे अजय कुमार साहनी, जो कपड़े मिल के मालिक हैं, उनके यहाँ मजदूरों की हड़ताल में एक मजदूर मारा गया पांच, घायल हैं, कातिल का कोई पता नहीं चला। मजदूर साहनी को कातिल नहीं बताते। साहनी के पास वाले कमरे से गोली चली, बन्दूक और गोलियां भी नहीं मिली। लगता है, कातिल हथियार सहित भाग गया है। अब हमें क्या करना चाहिए ?।”¹ उपर्युक्त उद्धरण से मालूम होता है कि जिसका अधिकार उसकी लाठी। इस घटना में मजदूरों का प्रतिनिधि जयकुमार मर जाता है।

‘सूअरदान’ उपन्यास में कामता प्रसाद बिष्ट और मारकण्डेय अग्निहोत्री से सत्यनारायण त्रिपाठी कहता है कि “अरे! मैंने ऐसे ही थोड़े इस गाँव पर पन्द्रह साल सफलतापूर्वक शासन किया है। मैं लोगों की नस-नस जानता हूँ। कब किस आदमी को कैसे परास्त किया जाता है, यह गुरुमंत्र मेरे पिताजी ने मरने से पहले मुझे दिया था।”² उपरोक्त कथन से स्पष्ट होता है कि त्रिपाठी पंद्रह साल गाँव का प्रधान बन चुका था। सवर्ण पीढ़ी-दर-पीढ़ी शासन चलाना चाहते हैं। कामता प्रसाद बिष्ट कहते हैं कि “कोई भी राज्य देख लीजिए। किसी भी बड़ी सेवा में नजर दौड़ाइये। चाहे आई.ए.एस. सेवा हो या प्रदेशों की सबसे बड़ी सेवाएँ हों ब्राह्मण अधिक संख्या में सबसे ऊँची कुर्सियों पर विराजमान मिलेंगे। प्रदेश और देश इन्हीं के इशारों पर चलता है। स्वतंत्रता के बाद भारत वर्ष में सबसे ज्यादा ब्राह्मण राष्ट्रपति, उपराष्ट्रपति, प्रधानमंत्री, गवर्नर और मुख्यमंत्री हुए हैं।”³ उपरोक्त उद्धरण से स्पष्ट होता है कि भारतीय समाज व्यवस्था में उँची जाति के लोग दलितों को दमित करते हुए शासन करते हैं।

¹ सैनिक का खून, डॉ. विजयी, पृष्ठ सं.-75

² सूअरदान, रुपनारायण सोनकर, पृष्ठ सं.-134

³ वही, पृष्ठ सं.- 134

‘सूअरदान’ उपन्यास में सत्यनारायण त्रिपाठी गाँव का प्रधान होने के कारण सुनयना से कहता है कि “जो ताकतवर है वही सभी चीजों का भोग करता है। ऐसा सभी युगों में होता आया है। तुम सुन्दर हो। अति सुन्दर हो। मैं इस गाँव का राजा हूँ। हर चीज पर मेरा हक पहले है।”¹ उपरोक्त उद्धरण से स्पष्ट होता है कि एक दलित सुनयना को गाँव का प्रधान सत्यनारायण त्रिपाठी, डॉक्टर जोरव सिंह और प्रधानाध्यापक जितेंद्र यादव तीनों मिलकर बलात्कार करते हैं।

प्रेम कपाड़िया के ‘मिट्टी की सौगंध’ उपन्यास में ठाकुर मोहन सिंह के बारे में इंस्पेक्टर जगजीवनराम से एस.पी. देहात कहता है कि “बड़े-बड़े रईसों का काफी समय एय्याशी में ही गुजरता है...उनके पास ताकत भी है और धन भी होता है। ऐसी स्थिति में हमारा उनसे टकराना ठीक नहीं है तुम नहीं जानते कि मोहन सिंह का परिचय राज्य के गृहमंत्री से भी है। ऐसी स्थिति में तुम्हारी नौकरी पर भी खतरा आ सकता है।” उपरोक्त उद्धरण से स्पष्ट होता है कि ठाकुर मोहन सिंह के पास सत्ता और धन रहने के कारण जगजीवनराम उसे गिरफ्तार नहीं करता है।

प्रेम कपाड़िया के ‘मिट्टी की सौगंध’ उपन्यास में “तुम क्या समझते हो...मोहन सिंह को गिरफ्तार करने से अछूतों की बहन-बेटियों की इज्जत बच जाएगी...अरे इंस्पेक्टर! एक मोहन सिंह गिरफ्तार हो जाएगा तो दूसरा पैदा हो जाएगा...ये सदियों पुराना सिलसिला है...जो ताकतवर है वह लूटता रहेगा...जो कमजोर होगा..उसे लुटना ही है...अगर किसी को लुटने से बचाना चाहते हो तो उसे ताकत और धन से सम्पन्न करो, तभी यह परंपरा बदल सकती है...गरीब की बेटी जब गाँव की कच्ची राह पर चलती है तो उसे लूटना आसान है... क्योंकि गरीब की बेटी हो, अकेली होती है...अमीर की बेटी तो कारों पर चलती हैं...उसके साथ नौकर भी होता है... उसे लूटना जान जोखिम में डालना होता है।”² उपरोक्त कथन से पता चलता है कि दलित लोगों को रक्षा करनेवाले पुलिस भी अपने स्वार्थ के लिए सत्ताधारी लोगों का खयाम रखते हैं।

¹ सूअरदान, रुपनारायण सोनकर, पृष्ठ सं.-31

² मिट्टी की सौगंध, प्रेम कपाड़िया, पृष्ठ सं.-39

4.10 चुनाव

रघुवीर सिंह ने ‘आक्रोश’ उपन्यास में राजनीति का असली चहरे को सामने रखने का प्रयास करते हैं गाँव के प्रधान लाल गुप्ता जी से नेता कहता है कि “बहुत दिनों बाद आपसे मुलाकात हो रही है। बहुत तमन्ना थी आपसे मिलने की। आप तो जानते ही हैं कि एक समाज सुधारक को कितने ही काम होते हैं, कितना व्यस्त रहता है वह अपने आम जीवन में। अब मैं आपके दरवाजे पर भीख मांगने के लिए आया हूँ जरूर ध्यान रखना। मेरी जीत, आपकी जीत और आपकी जीत, मेरी जीत होगी।”¹ उपर्युक्त कथन से पता चलता है कि गाँव के प्रधान जी चुनाव का फायदा लेना चाहते हैं। प्रधान जी किसी भी जीप के झण्डे को देखकर अपनी टोपी तुरन्त ही बदल देते हैं।

प्रधान जी नेता को दलित बस्ती में ले जाता है। बस्ती में रामदीन से प्रधान जी कहते हैं कि “अरे साहब हम पुराने जनसंघी हैं। हमारा वोट दिये को छोड़कर और कहीं कैसे पड़ेगा। मुहर दीये पर ही लगेगी। अरे साहब पार्टी वार्टी का नाम तो हम जानते ही नहीं हैं। नाम जानने लायक ही होते तो झोपड़ी में नरक की जिन्दगी क्यों बिताते?।”² उपर्युक्त उद्धरण से मालूम होता है कि प्रधान जी नेता को दलित बस्ती में ले जाकर रामदीन से परिचय करवाता है। क्योंकि रामदीन दलित बस्ती में प्रभावशाली व्यक्ति है। वह अनपढ़ व्यक्ति है। वोट के महत्व को नहीं जानता है।

नेता से रामदीन कहते हैं कि “प्रधान जी हम पर है ही क्या, कौन खुश है हमसे, सभी तो नाराज हैं। जब मैं छोटा सा था तो कोई भी पास नहीं बैठने देता था। कहते थे चमार के अलग हट, बदबू आ रही है, बदबू आ रही है। मैंने तो प्रधान जी जैसे तैसे करके इस बोझिल जिन्दगी को काट लिया है परन्तु आज की नई तांती ऐसा जीवन काटने से कतरा रही है। कहते हैं न जाने कौन सा कसूर किया है हमने, जो लोग हमारे नाम से ही नफरत करते हैं। जातियां तो इस देश में अनगिनत हैं परन्तु न जाने हमारी जाति ने ही कौन सा कसूर किया है जो लोग हमारे नाम से ही नफरत करते हैं। जातियां तो इस देश में अनगिनत

¹ आक्रोश, रघुवीर सिंह, पृष्ठ सं.-70

² वही, पृष्ठ सं.-76

है परन्तु न जाने हमारी जाति में ही कौनसा विष भरा हुआ है जो लोग हमें अच्छा नहीं मानते। अब साहब बताओ हम ही कब तक बर्दाश्त करें उसकी भी तो कोई हद है।”¹ उपर्युक्त कथन से पता चलता है कि भारत देश में जाति व्यवस्था अमानवीय व्यवस्था है। इस जाति व्यवस्था से ही छुआछूत करते हैं। रामदीन अपने व्यथा सुनाते हुए कहता है कि अब हम यह सब बरदाश्त नहीं करेंगे। हम भी सम्मान जनक जीवन जीना चाहते हैं।

श्याम सिंह और रामसिंह दोनों को सरकार की ओर से मुफ्त में ज़मीन मिलनेवाली थी, लेकिन वह ज़मीन लेने के लिए प्रधान गुप्ता जी को रिश्त देना पड़ता है। प्रधान गुप्ता जी कहते हैं कि “इनको कह दो इनका काम तो हो जायेगा परन्तु दोनों को कम से कम पांच-पांच नीले नोट खर्च करने पड़ेंगे, यानी पांच-पांच सौ रुपये। अन्धे को क्या चाहिए दो आंख, अतः दोनों ही किसानों ने धोती की अंटी से नोट निकाल-निकाल कर प्रधान जी को दे दिये।”² उपर्युक्त से उद्धरण स्पष्ट होता है कि सरकार की ओर से मिलनेवाली ज़मीन को पाने के लिए गाँव प्रधान को रिश्त देना पड़ा। गरिबों को मुफ्त में जमीन देना चाहते हैं, लेकिन उसे जिनके हाथों से दिलवाती है वे उसके बदले उन गरीब किसानों से रिश्त लेते हैं। इस तरह से अपनी जेब भरते हैं यह लोग।

‘सूअरदान’ उपन्यास में सिंहासनखेड़ा गाँव का ग्राम प्रधान का दलित को चुनाव में रिजर्व हुआ था। सत्यनारायण त्रिपाठी पंद्रह सालो से गाँव का प्रधान बन चुके थे। वह चाहता है कि गाँव का प्रधान एक दलित न बने। सत्यनारायण त्रिपाठी तहसीलदार से कहता है कि “सरकार ने इस गाँव के प्रधान की राय नहीं ली। मैं अभी चीफ-मिनिस्टर और प्रधानमंत्री को पत्र लिखता हूँ। इस गाँव को रिजर्व न किया जाये।”³ उपरोक्त उद्धरण से पता चलता है कि प्रधान पद दलितों को रिजर्व हो चुका था। इसलिए त्रिपाठी चतुराई से जैसे बोले वेसे सुनने वाले भगतू को चुनाव में खड़ा करता है। भगतू के खिलाफ संकटा प्रसाद चिकवा चुनाव में लड़ता है। भगतू अनपढ़ व्यक्ति है। संकट प्रसाद चिकवा इलाहाबाद विश्व

¹ आक्रोश, रघुवीर सिंह, पृष्ठ सं.-76

² वही, पृष्ठ सं.-79

³ सूअरदान, रुपनारायण सोनकर, पृष्ठ सं.-40

विद्यालय से समाज शास्त्र में एम.ए., किया है। गाँव की प्रधान की चुनाव में भगतू को भारी मतों से हराकर संकटा प्रसाद चिकवा जीत जाता है।

4.11 आर्थिक सत्ता

आर्थिक विपन्नता दलित समाज की बड़ी समस्या है। अधिकार परिवारों की आर्थिक स्थिति दयनीय ही रहती है। उनकी इस स्थिति के कारण अपने बच्चों को ढंग का खाना, अच्छे कपड़े और अच्छी शिक्षा नहीं दे पाते। इसी आर्थिक विपन्नता के कारण आज भी कई दलित परिवार अपने बच्चों को काम करने के लिए भेज देते हैं। ‘मुक्ति पर्व’ उपन्यास में नेता रामलाल ने दलित बस्ती से चुनाव जीतने के बाद उस बस्ती में स्कूल खुलवाया था। लेखक कहते हैं कि “पर स्कूल में यह संख्या दो-चार दिन ही रही, जितनी तेजी के साथ स्कूल के शुरुआती दिनों में बच्चे आए उतनी ही तेज गति से उनका स्कूल में आना बंद भी हो गया। उनमें कुछ बच्चों को तो सुबह जल्दी उठने की आदत ही न थी और जो उठते थे, उनके माँ-बाप का रोजगार उनकी शिक्षा में आड़े आता था। इसलिए कि बच्चे अपने-अपने माँ-बाप के रोजगार में मददगार थे। वे ए मेटिरीयल न थे, पर माल की खपत कराने में सहायक सिद्ध होते थे। कोई माँ के साथ चिल्ला-चिल्ला कर गाजर, आलू, प्याज बेचता था तो कोई फल-फूल। उनके अलग-अलग धंधे थे। जिनमें वे लगे थे। कुछ बच्चे मजदूरी भी करते थे।”¹ उपर्युक्त कथन से पता चलता है कि आर्थिक परिस्थितियों के कारण दलित बस्ती के बच्चे शिक्षा ग्रहण नहीं कर पाते हैं। इसलिए सरकार द्वारा बच्चों को छात्रवृत्ति के साथ-साथ उनके परिवार को भी आर्थिक रूप से प्रोत्साहित करना चाहिए। जब तक आर्थिक असमानताएँ कम नहीं हो जाती, तब तक समाज में आर्थिक विषमता बनी रहेगा। आर्थिक सत्ता कुछ ही लोगों तक सीमित बनकर रह गयी है।

लेखक का मानना है कि “इस बस्ती के बच्चे पढ़ नहीं पाएँगे और हमारी बरसों की मेहनत पर पानी फिर जाएगा। उनकी स्थिति को समझो। वे गरीब हैं। बच्चे रोजगार और कामधंधों में अपने माता-पिताओं की मदद करते हैं। हमें ऐसे बच्चों की मदद करनी

¹ मुक्ति पर्व, मोहनदास नैमिशराय, पृष्ठ सं-42

चाहिए।”¹ सरकार द्वारा कई योजनाएँ बनायी जाती है। लेकिन उसके आचरण में सफल नहीं हो पाते। बाल मजदूरी के दूर करने का अर्थ यह नहीं कि उन्हें उस काम से दूर करके उन्हें शिक्षा दी जाय। उन्हें हर तरह से सहायता करना है। बच्चों और उनके माँ-बाप को भी आर्थिक सहायता प्रदत्त करना।

‘मुक्ति पर्व’ उपन्यास में दलित बस्ती में लेखक ने दलितों की आर्थिक स्थिति को दर्शाया है। आर्थिक स्थिति ठीक न होने के कारण अपने बच्चों को आगे की पढ़ाई के लिए भेजने में असमर्थ होने की वास्तविकता को दिखाया गया। बाला ने पांचवीं की बोर्ड परीक्षा पास कर ली थी। “बाला के घरवालों के सामने दो धर्मसंकट थे। पहला उनकी भी आर्थिक स्थिति ठीक न थी, दूसरे लड़की को बस्ती के बाहर वे अकेले भेजने को तैयार न थे। हालाँकि बाला का मन आगे पढ़ाई करने का था। बाला इस साल दसवें बरस में लग गई थी। और सुनीत दस बरस का हो चुका था।”² उपर्युक्त कथन से पता चलता है कि बाला को पढ़ाने के लिए आर्थिक परिस्थिति ठीक न होने के कारण घरवाले स्कूल नहीं भेज पाते हैं। जिसके कारण पढ़ने की इच्छा के बावजूद बच्चे पढ़ नहीं पाते।

एक तरफ बाला का पिता जो आर्थिक स्थिति अच्छी नहीं होने के कारण उसे स्कूल नहीं भेजना चाहता दूसरी तरफ बंसी है जो अपने बेटे की पढ़ाई के लिए कुछ भी करने को तैयार है। लेखक बंसी माध्यम से कहना चाहते हैं कि दलित समाज के लिए शिक्षा ही एक मात्र साधन है जो उनका आर्थिक और सामाजिक स्तर बदल सकता है।

“क्या नाम है तुम्हारा? बेरुखी से पूछा था उन्होंने।

जी, जी बंसी है मास्टर साहब। झिझकते हुए जवाब दिया बंसी ने।

क्या करते हो?

दूसरा सवाल दाग दिया था।

मजदूरी करता हूँ साहब।

¹ मुक्ति पर्व, मोहनदास नैमिशराय, पृष्ठ सं-46

² आक्रोश, रघुवीर सिंह, पृष्ठ सं-56

फिर जवाब में बोले थे वे।

पर अपने बेटे की आगे की पढ़ाई के लिए पैसा जुटा पाओगे ?

उन्होंने सीधे-सीधे सवाल किया था।

हाँ मास्टर साहब, सब कुछ करूँगा। इसकी पढ़ाई के लिए। मैं तो चाहता हूँ मेरा सुनीत पढ़-लिख कर कुछ बने। हमारी तो जिंदगी कट गई, पर।”¹ बंसी अपनी अब तक की जिंदगी में खुश नहीं दिखाई देता है। इसलिए वह बेटे को पढ़ा-लिखाकर अच्छी स्थिति में देखना चाहता है।

‘मुक्ति पर्व’ उपन्यास में लेखक दलितों की आर्थिक स्थिति का ब्यौरा देते हुए कहते हैं कि “असल में बस्ती में रहने वाले दलितों के भीतर यही दुविधा थी। इसी द्वंद्व में वे अपने-आपसे जूझते थे। वे अपनी-अपनी गरीबी को कोसते थे। उनके मन में बच्चों को पढ़ाने की लालसा थी, पर कभी-कभी वे मजबूर हो जाते थे। पेट की आग सामने होती। ऊपर से अचानक आया आर्थिक संकट। कभी किसी की सब्जी खराब निकल आई तो कभी उनके द्वारा बनाया हुआ सामान ही नहीं बिका। मौसम भी गरीबों के साथ अजीबोगरीब छेड़छाड़ करता था।”²

‘हिडिम्ब’ उपन्यास में लेखक दिखाना चाहता कि जमीन और उस पर अपने स्वार्थ के लिए शोषण कारी व्यवस्था क्या कुछ नहीं करती है इसको दिखाया है। “शावणू की जमीन पर वह अपनी परिकल्पनाओं को एक बड़ा विस्तार देना चाहता था। उस प्रदेश में हजारों प्राचीन मन्दिर थे और उनमें विलक्षण मूर्तियां थीं जिनकी कीमत विदेशी बाजारों में करोड़ों आंकी जाती।”³ दलितों की जमीन पर नजर गाड़ के रखने वाले इन गिद्धों से बचना शायणू जैसे लाचार दलित के लिए आसान नहीं है।

¹ मुक्ति पर्व, मोहनदास नैमिशराय, पृष्ठ सं-57

² वही, पृष्ठ सं-92-93

³ हिडिम्बा, एस. आर. हरनोट, पृष्ठ सं-13

शावणू की जमीन बहुत ज्यादा उपजाऊ है। अब की बार की फसल से उसका कुछ समय आराम से बीत सकता है। “यह एक ऐसी नकदी फसल थी जिससे अनारदाना निकाल कर बेचा जाता और छः महीनों की दाल-रोटी, नमक-तेल और कपड़ा लत्ता निकल जाया करता। कुछ घर के नए बर्तन भी आ जाते थे।”¹

हिडिम्ब उपन्यास में लेखक ने दिखाने की कोशिश की है जो लोग अमीर होने का रौब जमाते हैं। उनका धंधा दो नंबर का होता है। “जिन लोगों ने शावणू के घर आकर झगड़ा किया था या जो लोग अपनी ज़मीन से उखड़ गए थे, उन्होंने कई तरह के उल्टे-सीधे धन्धे शुरू कर दिए थे। उनको भी वे ही लोग करवाते थे जो बाहर से आकर जमींदार या व्यापारी बन बैठे थे। इनके पास खूब पैसा हो गया था। लोग उसे दो नम्बर का कहते। ये पैसा कई तरह से कमाया जाता। कुछ चरस-भांग और विदेशी नशा बेच कर तो कुछ देवदार जैसी बेशकीमती लकड़ी की तस्करी करके।”² जिससे साबित होता है कि पैसे कमाने के एवज में लोग किसी भी हद तक गिर सकते हैं। अनैतिक और असामाजिक कार्यों द्वारा तिजोरियाँ भरते हैं।

जिसका उदाहरण हमें नीचे मिलता है। “एरी उसका दुःख समझता था। इसीलिए तो उसने सूमा से शादी के करार का प्रस्ताव रखा था। एक बहाना भी था उनकी मदद करने का। अपना स्वार्थ तो था ही किन्तु उसके एवज में एक बड़ी रकम भी थी। वह जानता था कि अब पहाड़ों में गरीबी के कारण कई घर ऐसे करार करने को राजी हो जाते थे। लेकिन इसमें वही परिवार होते जिनके पास या तो ज़मीनें बहुत कम होतीं या उनकी लड़कियों के लिए कोई रिश्ता न मिलता। या फिर परिवार के कुछ निजी स्वार्थ होते। इसमें अच्छे-खासे पैसों का लालच भी रहता। फिर इतने पैसे भी तो कोई नहीं देता था।”³ मजबूरी और लालच में सबकी जीवन पद्धति को बिगाड़ कर रख दिया है।

“जूते खोले और भीतर चला गया। एरी दो लाख साथ लाया था। नकद। उसने यही सोचा था कि बिना पैसे लिए शावणू सूमा को कहां भेजेगा। पैसे पकड़ाने लगा तो शावणू ने हाथ

¹ हिडिम्बा, एस. आर. हरनोट, पृष्ठ सं-31

² वही, पृष्ठ सं-63

³ वही, पृष्ठ सं-191

जोड़ दिए, बेटा ! म्हारे पहाड़ में तो बेटा को देते ही हैं। लेते नी कुछ। पर मैं क्या दे सकता हूं। मेरा धन तो सूमा ही है। रही इन पैसों की बात तो इस पगली के नाम कर देणा। ऐसे रखणा कहीं कि इसके काम आए। तुम्हारे बाद यही सब कुछ है इसका। फिर भगवान जाणे कोई इसको पूछेगा भी कि नहीं। जेब में कुछ होगा तो जी लेगी कुछ दिन। मेरे लिए तो ये छूणे भी पाप हैं।”¹ शावणू सब की तरह नहीं सोच पाता। इसलिए वह पैसे लेने से इन्कार करता है।

रूपनारायण सोनकर के ‘सूअरदान’ उपन्यास में रामचन्द्र त्रिवेदी, सज्जन खटिक, घसीटे चमार और सलवंत यादव चारों मित्र मिलकर पिगरी-फार्म खोलते हैं। इस पिगरी-फार्म से अर्जित लाभ को राजनीति लोगों को मदद करते हैं। “पिगरी-फार्म के मालिक ईमानदार ग्रामीण राजनेताओं की भी मदद करते थे। पिगरी-फार्म के मालिक राजनीति में आई विकृतियों को समाप्त करना चाहते थे। आजकल नेताओं को बहुत ही बुरी नजर से देखा जाता है। जो गिरावट राजनीति में आई थी, वे लोग इसको दूर करना चाहते थे। ताकि राजनीति में जाने वाले लोग देश व समाज की सच्ची सेवा कर सकें।”² उपर्युक्त उद्धरण से स्पष्ट होता है कि इन चारों पिगरी-फार्म की ओर से ईमानदार राजनेताओं को आर्थिक रूप से मदद करते हैं। क्योंकि राजनीति में ईमानदार नेताओं को प्रोत्साहित करना जरूरी है। ऐसे लोगों से ही देश का विकास होगा।

4.11.1 नगरपालिका में दलितों की स्थिति

‘गटर का आदमी’ उपन्यास में देखा जा सकता है कि सफाई कर्मचारियों के द्वारा किस तरह से काम करवाया जाता है। और काम के दौरान उन्हें सुरक्षा सामग्री की कोई व्यवस्था नहीं की जाती है। दलित मजदूर सल्लन फावड़ा लेकर मेनहोल के अन्दर घुस गया। मजदूर सल्लन का शरीर काला हो गया। उसी समय एक काला नाग किचड़ के अन्दर से निकल कर आ गया। सल्लन फावड़े को कोने में रख देता है और सर्प का सिर

¹ हिडिम्बा, एस. आर. हरनोट, , पृष्ठ सं-194

² सूअरदान, रूपनारायण सोनकर, पृष्ठ सं.-147

पकड़कर ऊपर को फेंक देता है। सल्लन बच गया। उस समय सौरभ और गरिमा आ गये थे। सौरभ सभी मजदूरों के साथ देहरादून नगरपालिका के सामने धरने पर बैठ गया। नगरपालिका चेयरमेन, शमीमुद्दीन अली आ गया। साहब से सौरभ कहता है कि “शहर की नालियों को साफ कराने के लिए नालियों के अन्दर मजदूरों को मत भेजो, वहां खतरा है जीव जन्तुओं और विषैली गैसों से।”¹ उपर्युक्त कथन से पता चलता है कि नगरपालिका दलित मजदूरों से जान का खतरा होने वाले काम करवाती है। मेनहोल सफाई का काम मशीन से करवाना चाहिए। नगरपालिका में भंगी और वाल्मीकि जाति के लोग ही मैला ढोना और झाड़ू लगाने का काम करते हैं। यह काम सवर्ण को भी करने से हीन भावना मिट जायेगी। इस संदर्भ में सौरभ चेयरमेन से कहता है कि “चेयरमेन साहब इससे समाज में समस्या पैदा होगी। जो लोग नालियों की सफाई करते हैं, सरकारी कार्यालयों में झाड़ू लगाते हैं उनको हेय दृष्टि से देखा जाता है। यदि सभी जातियों या सम्प्रदायों के लोग यह काम करेंगे तो कोई भी आदमी दूसरे आदमी को नीच नहीं समझेगा बल्कि एक दूसरे आदमी को सम्मान की दृष्टि से देखेंगे।”² उपर्युक्त उद्धरण से मालूम होता है कि नगरपालिका में झाड़ू लगाना और मैला ढोने का काम सभी जातियाँ करने से हीन भावना मिट जायेगी। समाज में सभी जातियों में समरसता की भावना पैदा होगी।

‘गटर का आदमी’ उपन्यास में वनगूजर के लोग सदियों से जंगल में रहते हैं। गूजर जंगल में पैदा होते हैं और जंगल में ही मर जाते हैं। वनगूजरों के बच्चे अशिक्षित रहते हैं। वनगूजरों के जानवर के लिए सौरभ कहते हैं कि “आपको एवं आपकी भैंसों को पालने के लिए बहुत जगह मिलेगी। सरकार एवं बहुत सारी मानव हितार्थ बनी संस्थाएं आपकी मदद करेगी। पहले आपको घर बनवाकर दिया जायेगा। भैंसों को पालने के लिए बहुत सारी खुली जगह दी जायेगी। भैंसों का पालने की वैज्ञानिक विधि आपको बतायी जायेगी। भैंसों

¹ गटर का आदमी, रुपनारायण सोनकर, पृष्ठ सं.-13-14

² वही, पृष्ठ सं.-14

की देख रेख के लिए एवं उनका स्वास्थ्य चेक करने के लिए पशु चिकित्सक आयेगा। आपको दूध का अच्छा मूल्य मिलेगा। आपके बच्चे पढ़ लिखकर केन्द्रीय व प्रांतीय सेवाओं में आयेगे।”¹ उपर्युक्त उद्धरण से मालूम होता है कि सौरभ वन गूजरों को शहर में जा कर उन लोगों के जीवन में सुधार लाना चाहता है।

रामस्वरूप संखवार के ‘भूगोड़ू पुजारिन’ उपन्यास में नारायण पंडित से अखिलेश कहता है कि “ठीक तो है, अब मनु का संविधान बदल गया है। डाक्टर भीमराव अंबेडकर का संविधान लागू है। इसलिए वे जयभीम कहते हैं। तुमको अच्छा लगे तो कहो, न अच्छा लगे तो मत कहो परंतु दूसरों को जयभीम कहने से कैसे रोक सकते हो।”² उपरोक्त उद्धरण से स्पष्ट होता है कि भारत स्वतंत्र होकर लगभग सत्तर वर्ष होने के बाद भी समाज में मनु का संविधान लोगों की मानसिकता में देखने को मिलता है। मनु का संविधान अनौपचारिक रूप में समाज के ऊपर हावी है। आज हर समाज और व्यक्ति के अपने अधिकार एवं स्वतंत्रता है। जो जैसा चाहे रह सकता है और जिसे चाहे मान सकता है।

4.12. धर्मिक सत्ता

ब्राह्मणों ने वैदिक काल से सत्ता व संस्कृति के माध्यम से अपनी श्रेष्ठता सिद्ध करने एवं बनाए रखने का भरसक प्रयत्न किया है। आर्यों के भारत आगमन के समय यहाँ के मूल निवासियों से उन्हें कड़े संघर्ष और प्रतिरोध का सामना करना पड़ा। लेकिन ऐतिहासिक स्रोतों के अभाव में मूल निवासियों के प्रारंभिक प्रतिरोध और संघर्ष की गाथा के बारे में हम नहीं जानते। लेकिन ऐसा जान पड़ता है कि स्थापित वैदिक समुदाय को बौद्ध धर्म से सघन प्रतिरोध का सामना करना पड़ा था। चूँकि बौद्ध धर्म वैदिक कर्मकांड और वर्ण-व्यवस्था का विरोध करता था। उसने संस्कृत भाषा की गूढ़ता के स्थान पर मागधी भाषा के द्वारा अपने सिद्धांतों का प्रचार किया और संभवतः पहली बार बौद्ध विचारों के माध्यम से शिक्षा के द्वारा शूद्रों, स्त्रियों, शिल्पियों, कामगारों और आमजन के लिए खोले। बौद्ध धर्म ने वर्ण श्रेष्ठता की वैचारिकी से प्रतिपादित असमानता के स्थान पर समानता की बात की।

¹ गटर का आदमी, रुपनारायण सोनकर, पृष्ठ सं.-35

² भूगोड़ू पुजारिन-डॉ.रामस्वरूप संखवार, पृष्ठ. सं.-18

बुद्ध ने अपने समय में समाज के स्तरीकरण को देखा था। उन्होंने वर्गीय असमानता को महसूस किया था। इसलिए असमानता के स्थान पर समानता की अवधारणा का प्रतिपादन अनिवार्य था। बौद्ध दर्शन के बारे में बताते हुए प्रसिद्ध भारतीय इतिहासकार रोमिला थापर अपनी पुस्तक भारत का इतिहास में बताती हैं कि – “ब्राह्मणों के कर्मकांड का बौद्ध मत के प्रारंभिक शुद्ध रूप में लगभग पूरा बहिष्कार था। फिर भी, वृक्षों की पूजा तथा मृतक पूजा जैसी लोक प्रचलित मान्यताएँ उसमें स्वीकृत रहीं और इस प्रकार बौद्ध धर्म ने अपने –आप को जनसामान्य में प्रचलित पूजा से संबद्ध कर लिया। ..पर मूलतः एक सामूहिक धर्म था और इसमें भिक्षु-प्रणाली का सूत्रपात किया। ...बौद्ध विहारों के निर्माण से शिक्षा का प्रसार बढ़ा, क्योंकि ब्राह्मणों के अतिरिक्त ये भी अब शिक्षा के स्रोत बन गए। इससे भी अधिक महत्वपूर्ण बात यह थी कि, चूँकि व समाज के हर वर्ग के स्त्री-पुरुषों को भिक्षुणी तथा भिक्षु बनलिया करते थे इसलिए, शिक्षा केवल कुछ उच्चस्थ लोगों तक सीमित नहीं रहीं”¹। उपर्युक्त कथन से स्पष्ट होता है कि बौद्ध धर्म ने पहली बार ब्राह्मण समुदाय के विशेषाधिकार, शैक्षणिक संस्थानों के वर्चस्व को चुनौती दी। इतिहास में जो अब तक नहीं हुआ था। ब्राह्मणों गुरुकुलों के सांस्थानिक रूप को बौद्ध विहारों ने चुनौती दी और शिक्षा के दरवाजे शूद्रों, स्त्रियों और आम जन के लिए खोल दी। इसमें दूसरा क्रांतिकारी पहलू था पुरोहितों की सत्ता को चुनौती। क्योंकि धर्म प्रचार, पूजा का अधिकार ब्राह्मणों, क्षत्रियों और वैश्यों तक ही सीमित था। ब्राह्मण समुदाय में से ही कर्मकांड करने के लिए, धार्मिक पद्धति बताने के लिए पुरोहित बने हुए थे। वहाँ न तो शूद्र नजर आते हैं और न ही स्त्रियाँ।

हिडिम्ब उपन्यास में “वहाँ एक नया विवाद खड़ा हो गया था। दो देवता आपस में लड़ गए। कारकुनों में बहस हो रही थी। नौबत हाथापाई तक आ पहुँची। यात्रा रूक गई। मसला यह था कि एक देवते के कारदार कहते कि उनका देवता भगवान जी के दाएं बाजू चलेगा। दूसरे की जिद थी कि दायां किनारा उसी का है। इसलिए दाईं तरफ वही चलेगा। शावणू का एक जानने वाला मिला तो उससे बात पूछी। उसने बताया कि यह झगड़ा पुराना है। इसमें अब राजनीति घुस गई है। भाई वह कैसे? शावणू की उत्सुकता जागी। जो पहला देवता है न वह नई पार्टी के विधायक के गांव से है। और दूसरे देवता जी पुराने एम.एल.के

¹ सत्ता संस्कृति और दलित सौंदर्यशास्त्र, सूरज बड़त्या, पृष्ठ सं.-49

गांव के। दोनों पक्ष-विपक्ष के हैं आपस में बनती नहीं। बुरा जमाना आ गया बई शावणू।”¹ उपरोक्त उद्धरण से स्पष्ट होता है कि नेता लोग धार्मिक सत्ता को चाहते हैं।

4.12.1 दाह संस्कार

रामस्वरूप संखवार के ‘भगोड़ू पुजारिन’ उपन्यास में एडवोकेट रमेश के परिवार के एक व्यक्ति की मृत्यु हो जाती है। मृतक को गंगा नदी के तट पर दाह संस्कार के लिए पंडित हरिनारायण रमेश से कहता है कि “मैं शव का दाह संस्कार पूर्णतः रीति से करूंगा। मात्र पांच सौ रुपया लगेंगे। वैसे तो शव के साथ एक गौ माता का होना आवश्यक है, जिसकी पूँछ पकड़ कर मृतक स्वर्ग पहुँचे परंतु इसकी आप चिंता न करें, मैं मंत्रों द्वारा ही मृतक को स्वर्ग पहुँचा दूँगा।”² उपरोक्त उद्धरण से स्पष्ट होता है कि पंडित हरिनारायण धर्म के नाम पर लोगों को धोखा दे रहा है। और लूटना उनका पेशा बन गया था। दूसरा मोटा पंडित आकर वकील रमेश से कहने लगता है कि “वकील साहब! इस साले पंडा के चक्कर में मत पड़ना! यह ब्राह्मण थोड़े ही है। कपड़िया है! कपड़िया!! यह मंत्र-तंत्र कुछ नहीं जानता है। रामायण के कुछ श्लोक रट लिए हैं। बस उन्हीं को पढ़कर लोगों को उल्लू बनाता रहता है। आप मृतक संस्कार मुझसे करवाइए। वैदिक मंत्रोच्चारण के साथ दाह-संस्कार संपन्न कराऊँगा, जिससे मृतक बिना किसी बाधा के सीधे स्वर्ग लोक पहुँचेगा। मैं ऋग्वेद के मौलिक मंत्र पढ़ूँगा। आपको किंचित धोखा नहीं होगा। रुपया भी कम लूँगा। मात्र तीन सौ रुपया में पूरा काम करूँगा।”³ उपरोक्त उद्धरण से स्पष्ट होता है कि ब्राह्मणों के द्वारा दाह संस्कार कराये जाने वाले कितना धोखा देते हैं। मनुवाद ने धर्म के नाम पर लूटने के लिए समाज को भ्रमित कर रखा है। समाज को मानसिक रूप से गुलाम बना दिया है। वकील रमेश सदियों से चली आ रही परंपरा को तोड़कर एक नयी परंपरा को जन्म देता है। दाहन

¹ हिडिम्बा, एस. आर. हरनोट पृष्ठ सं-94

² भगोड़ू पुजारिन-डॉ. रामस्वरूप संखवार, पृष्ठ. सं.-15

³ वही, पृष्ठ. सं.-15

संस्कार का काम एक डोम से करवाता है। रमेश से ब्राह्मण कहता है कि “आप पढ़े-लिखे वकील है। छी! छी!! एक शूद्र से मृतकर्म करवा रहे हैं। मृतक नर्क जायेगा! नर्क!!”¹ उपर्युक्त उद्धरण से स्पष्ट होता है कि नर्क -स्वर्ग को कौन देखता है? झूठी बातों से ब्राह्मण को बिना परिश्रम के दान-दक्षिणा मिलता है। और वह उसे खोना नहीं चाहता। इसलिए परंपरा के नाम पर लोगों को डरा-धमकाने की कोशिश करते हैं।

¹ भगोड़ पुजारिन-डॉ.रामस्वरूप संखवार, पृष्ठ. सं.-16

पंचम अध्याय

हिन्दी दलित उपन्यास : भाषा एवं शिल्प

5. भाषा और शिल्प

5.1 आत्मकथात्मक शैली

5.2 वर्णनात्मक शैली

5.3 पत्रात्मक शैली

5.4 व्यंग्यात्मक शैली

5.5 अंग्रेजी शब्द

5.6 दलित पीड़ा की अभिव्यक्ति

5.7 बोल-चाल की भाषा

5.8 मुहावरे

5.9 लोकोक्तियाँ

5. भाषा और शिल्प

हिन्दी दलित उपन्यासों में भाषा पर विचार करने से पहले भाषा के बारे में बात करना उचित होगा। सामान्यतः मनुष्य की सार्थक व्यक्त वाणी को भाषा कहते हैं। भाषा शब्द संस्कृत के 'भाष्' धातु से बना है। इसका अर्थ वाणी को व्यक्त करना है। इसके द्वारा मनुष्य के भावों, जिसके द्वारा लेखक अपने विचारों और भावों को सहृदयों तक प्रेषित करने में सफल होता है। उपन्यास में ही नहीं किसी भी साहित्यिक कृति की सफलता, उसकी भाषा-शैली पर निर्भर करती है। प्रस्तुत विवेचन में मैं हिन्दी दलित उपन्यास के भाषिक प्रयोगों को संक्षेप में सामने रखने का प्रयास करूँगा। दलित साहित्य के उपन्यासों में कहने और लिखने का अपना अलग अंदाज है। जैसे-घटना प्रधान, वर्णनप्रधान, रीति आधारित, मनोविश्लेषणात्मक, आत्मकथात्मक विधान आदि।

उपन्यासों में भाषा लेखन की परंपरागत और नये कई रूपों को देख सकते हैं। भाषा किसी रचना की रचनात्मकता का प्रकार है अथवा उसे वाक्य की बनावट या पद्धति कह सकते हैं। क्योंकि दलित उपन्यासों की रचनात्मकता अपने आप में अलग है इसलिए हम कह सकते हैं कि उसकी भाषा भी अलग और विशेष है। भाषा कथा के मेरुदंड के समान है, जिसके अभाव में रचना सजीवता का आधार प्राप्त नहीं कर पाती। उपन्यासों में आवश्यक तत्व होते हुए भी एक ही विषय पर लिखी गई एक से अधिक रचनाएँ पाठक के मानस-पटल पर अपना अलग-अलग प्रभाव छोड़ती है। उसका मुख्य कारण उनकी भाषिक भिन्नताएँ व जीवन की व्यापकता और बहुरूपता है। भाषा तो उसके कला-पक्ष का एक हिस्सा है। इसलिए शब्द-चयन, वाक्य-विन्यास, प्रतीक, मुहावरे इत्यादि साहित्यिक अवयवों के समावेश के साथ-साथ कथा को उपयुक्त ढंग से प्रस्तुत करने से ही भाषा विकसित होती रहती है। देखना यह है कि दलित उपन्यासों की भाषा हिन्दी के स्थापित भाषिक मानदंडों पर आधारित है या यह साहित्यिक भाषा से अलग अपने परिवेशानुकूल

मानदंडों को विकसित कर रहा है। वर्तमान समय में हिन्दी दलित उपन्यास ही नहीं अपितु संपूर्ण दलित साहित्य को सौंदर्य संबंधी भाषिक चिंतनों का सामना करना पड़ रहा है। अतएव प्रस्तुत अध्याय में हम दलित उपन्यासों की भाषा पर मूल्यांकन करने से पहले हिन्दी साहित्य व दलित साहित्य के प्रमुख कथाकारों, समीक्षकों और आलोचकों की भाषा विषयक मान्यताओं को जान लेने का प्रयास करेंगे।

हंस पत्रिका के भूतपूर्व संपादक राजेन्द्र यादव के अनुसार – “इसे (दलितों को) हमारे जैसा बनने में समय लगेगा। यानी स्टैंडर्ड हम हैं। हमने अपने आपको मानक मान लिया है। हम यह तय करते हैं कि उसकी भाषा कैसी हो ? हम उसके ऊपरी तौर-तरीके को देखते हैं। उसके भीतर तो तकलीफ है, उसे नहीं देखते। दलितों के संदर्भ में मुख्य धारा के आलोचक शिल्पवाद, कलावादी सबको जानते हैं। जो हमारे हिसाब से खरा नहीं उतरता। वह यहाँ नहीं आएगा। इसे यदि हम बदलते हैं तो जैसे किसान अत्याचारी जमींदार को या तो मार देते हैं या अपदस्थ कर देते हैं या भागने को विवश कर देते हैं। वहीं होगा जैसे मौक्सिकन कला के बारे में कहा जाता है कि वहाँ के शासक उन्हें सैकड़ों सालों तक कुत्ते, घोड़े, गधों के रूप में चित्रित करते रहे और अब उन्होंने उन्हें कुत्ते, घोड़े आदि लिया, परंतु दहाड़ते हुए शासक को खाते हुए दर्शाया। आपने जिस मानसिक स्तर पर रखा जो भाषा सुनने के वे अभ्यस्त रहे वहीं तो वे बोलते-लिखते हैं।”¹ मुरली मनोहर प्रसाद शिल्प के बारे में लिखते हैं कि शुरुआत में कच्चापन होगा ही, परिपक्वता धीरे-धीरे ही आएगी। भारतेन्दु के यहां भी शिल्प सौष्ठव और पच्चीकारी नहीं मिलती। पर युगांतरकारी संज्ञान प्रक्रिया में उनकी ऐतिहासिक भूमिका से कौन इंकार कर सकता है। उपर्युक्त उद्धरण से मालूम होता है कि सवर्ण कथाकार दलित कथाकार से तुलना करते हुए भाषा और शिल्प में अपने-आप को सर्वश्रेष्ठ मानते हुए अहम की भावना दिखाई देती है।

¹ हिन्दी दलित कथा-साहित्य, अवधारणाएँ और विधाएँ, रजत रानी मीनू-पृष्ठ सं.-247

दलित लेखकों और समीक्षकों का भाषा संबंधी चिंतन इस प्रकार है-ओमप्रकाश वाल्मीकि कहते हैं कि- “सवर्ण आलोचकों को दलित लेखन में कलात्मक अभिव्यक्ति की कमी दिखाई देती है। दलितों के कष्टमय करुण जीवन की अभिव्यक्ति अभिजात भाषा में लपेटकर नहीं रखी जा सकती है।”¹

हिन्दी दलित लेखक डॉ. श्यौराजसिंह बेचैन शिल्प के बारे में लिखते हैं कि “परंपरागत शिल्प शास्त्री दलित साहित्य में सन्निहित वैसा ही शिल्प चाहते हैं, जैसा देखने के वे अभ्यस्त हो गए हैं। वे नए विषय, नए संदर्भ और नए शिल्प जो दलित समाज, साहित्य और संस्कृति की पृथक संरचना के कारण अलग स्वरूप में हैं, गैर दलित विद्वान इसे समझने की क्षमता नहीं रखते। इसलिए अपनी अयोग्यता को स्वीकार करने के बजाय ये अनधिकार दखलअंदाजी करते हैं। वे एक जिज्ञासु विद्यार्थियों की तरह वस्तु-स्थिति का अध्ययन नहीं करते हैं। उनमें दलितों और विदेशी शोधार्थियों की तरह सीखने की इच्छा नहीं होती। वे जन्मना विद्वान होते हैं। वे शिल्पगत समस्याएँ उत्पन्न करते हैं। क्योंकि गैर दलित साहित्यकार आलोचक और संपादक आत्ममुग्धता में जाते रहे हैं। जिन स्थितियों में दलित साहित्य गुजर रहा है उसका शिल्प भी उसी के अनुरूप विकसित हो रहा है।”² हिन्दी दलित साहित्य के चर्चित लेखक डॉ. श्यौराजसिंह बेचैन ने शिल्प में समाज, संस्कृति, परम्परा और परिस्थितियों पर बल दिया।

दलित कथाकार जिन परिस्थितियों व जैसे परिवेश में जीवन गुजारते आ रहे हैं अथवा उन्हें अभिजात वर्ग ने स्वतंत्रता के बद जैसे हालात दिए हैं वे उन्हीं हालातों में पैदा हुए अपने साहित्यिक संस्कारों को, परिवेशगत अपने अनुभवों को अलग तरह के समाज की ओर से लौट रहे हैं जिसे व सदियों से चुपचाप सहते आये हैं। आज वे दलित कथा-साहित्य के माध्यम से उसे मानो वापस कर रहे हैं।

¹ हिन्दी दलित कथा-साहित्य, अवधारणाएँ और विधाएँ, रजत रानी मीनू, पृष्ठ सं.-247

² वही, पृष्ठ सं.-248

‘आक्रोश’ उपन्यास की भाषा और शिल्प के बारे में राजेश राव कहते हैं कि “प्रस्तुत उपन्यास रघुवीर सिंह का प्रथम उपन्यास है। भाषा और शिल्प के स्तर पर वह परिपक्वता नहीं आ पायी है लेकिन उनके प्रयास की सराहना करनी चाहिए।”¹

डॉ. संजय नवले ‘छप्पर’ उपन्यास की भाषा के बारे में कहते हैं कि “उपन्यास की भाषा प्रवाहमयी, स्पष्ट, पारदर्शी, बोधगम्य, आम आदमी की है। सवर्ण अंग्रेजी शब्द खटकते हैं। उपन्यास की कथावस्तु में समस्याओं की कथा घटनाओं की बुनावट वास्तविक है। लगता है कि पुस्तक नहीं समाज को देख रहे हैं, पढ़ रहे हैं। यही उपन्यासकार की शक्ति है।”²

अजय नावरिया कृत ‘उधर के लोग’ उपन्यास में दिल्ली में रिक्शा वाले की बोली इस प्रकार है – “आप लोग खुद तो मड़ेंगे, मुझे भी मड़वा देंगे। आप लोग उतड़ जाइए। दंगाई यहीं गार देंगे, हम सपको।”³ उपरोक्त उद्धरण से पता चलता है कि रिक्शा वाला ‘र’ को ‘ड़’ और ‘ड़’ को ‘र’ शब्दों का प्रयोग करता है।

राजेंद्र यादव ‘उधर के लोग’ उपन्यास की भाषा शैली के बारे में कहते हैं कि “उपन्यास को यूँ तो सभी संभावनाओं से पूर्ण माना परंतु लगे हाथ नावरिया को भाषा के मोहक खतरे से आगाह करते हुए कहा कि कई बार भाषा की रोमानियता के चक्कर में पड़कर कथाकार ऐसे मुग्ध रहते हैं कि यथार्थ फिसल जाता है, उपन्यास में कोई सुगठित कहानी या थ्रस्ट का अभाव भी अखरता है, परंतु उपन्यास जिन बहसों को समेटता है, वह जरूरी और सामयिक है। इस उपन्यास में अजय लगनशील व्यक्ति है और वे आगे भी हमें निराश नहीं करेंगे। भाषा को अजय ने मास्टर किया है, उपन्यास की सबसे बड़ी खासियत इसकी भाषा है, यह

¹ अपेक्षा, संपा. तेजसिंह, फरवरी-जून-2010, पृष्ठ सं.-103

² वही, पृष्ठ सं.-108

³ उधर के लोग, अजय नावरिया, पृष्ठ सं.-45

उपन्यास एक नए लेखक का विचारोत्तेजक उपन्यास है।”¹ अजय नावरिया के इस उपन्यास में खासियत यह है कि परिवेश और संदर्भ के अनुसार भाषा को सुकोमल और कलात्मक रूप से प्रयोग किया है।

डॉ. अजमेर सिंह काजल ‘जस तस भई सबेर’ उपन्यास की भाषा के बारे में लिखते हैं कि “उपन्यास की भाषा शैली उपन्यास के उद्देश्य को अपने लक्ष्य तक पहुँचाने में सफल हुई है। लेखक ने आवश्यकतानुसार तत्सम, तदभव, देशज, विदेशी शब्दों का प्रयोग किया है। पाठक रचनाकार के सामाजिक-संस्कृतिक संघर्षों संबंधी विषयों में रुचि एवं ज्ञान से रुबरु होता है। लेखक के दैनिक शोषण के प्रकरणों की भाषा में अतिरेक के बावजूद साहित्यिक मर्यादा का उल्लंघन नहीं किया है तथा प्रेम प्रसंग में आलंकारिक भाषा का प्रयोग करके पाठक की मानसिकता का भी ध्यान रखा है। अतः उपन्यासिक कृति के माध्यम से लेखक भारतीय सामाजिक व्यवस्था में व्याप्त अंधकार को मिटाकर आम जन मानस के लिए एक सुखद सबेरा लाने में सफल रहा है।”²

5.1 आत्मकथात्मक शैली

अजय नावरिया के ‘उधर के लोग’ उपन्यास आत्मकथात्मक शैली में लिखा गया है। इस शैली को उपन्यास में देख सकते हैं, जैसे उपन्यास में लेखक नायक बनकर अपने बारे कहते हैं- “मैं, समझाना यह भी चाहता था कि जिन्दगी में हर आनेवाला पल, एक नई शुरुआत के लिए पूरी जिन्दगी से छोटा नहीं होता है। यह भी कि यह दुनिया, सिर्फ उन दस-बीस स्वार्थी और हिंसक आदिमियों या औरतों से नहीं बनी है, जिनकी वजह से, उसने, यहाँ तक की यात्रा तय की है। वे लोग, इस दुनिया के एक हिस्सा भर हैं...पथरीले और

¹ हंस, सं.राजेंद्र यादव, फरवरी 2010 पृष्ठ सं.-74

² अपेक्षा, संपा. तेजसिंह, फरवरी-जून-2010, पृष्ठ सं.-86

नुकीले ...इसके उलटे जैसे तुम, तुम्हारी माँ और मेरे पिता, इस दुनिया के रूपहले और कोमल हिस्से हैं। इसे, बस दुनिया की सम्पूर्णता के रूप में समझे।”¹

5.2 वर्णनात्मक शैली

उपन्यासों में जयप्रकाश कर्दम के ‘छप्पर’ की सामान्य भाषा में वर्णनात्मक शैली प्रयुक्त हुई है। जयप्रकाश कर्दम के ‘छप्पर’ उपन्यास के घटनाक्रम से पात्रों के विकास की गति के वर्णन में तीव्रता आई। लेकिन पात्र चित्रण वातावरण परिस्थितियों के वर्णन में सहजता और स्वाभाविकता है। जैसे सुक्खा रमिया से कहता है- “ऐसी बात नहीं है रमिया! मैं भी एक इंसान हूँ, तुम्हारी तरह मेरा भी मन करता है कि घर बहू आए, पोती-पोते हो और उनकी किलकारियों से घर चहक जाए।”² उपरोक्त उद्धरण से मालूम होता है कि सुक्खा के मन में रमिया बहू के रूप में रहती है।

अजय नावरिया का ‘उधर के लोग’ उपन्यास में वर्णनात्मक शैली का प्रयोग किया गया है। निम्न लिखित उद्धरण से स्पष्ट होता है। “उसके भूरे, चमकीले बाल खुले थे और फैलकर गालों पर गिरे हुए थे। शैम्पू किए, रेशमी बाल, बार-बार उसकी आँखों पर गिरकर फैल जाते थे, जिन्हें वह बार-बार उँगलियों से उठाकर, कान के पीछे दबा लेती थी। कुछ देर बाद, धीरे-धीरे सरककर, बाल वहीं आ जाते थे और वह, उन्हें, फिर उठाकर पीछे कर लेती थी। इससे मुझे झँजलाहट हो रही थी, पर उसके चेहरे पर वही मोहक मासूमियत फैली हुई थी।”³ उपर्युक्त उपन्यास के कुछ अंश वर्णनात्मक शैली की प्रस्तुति है।

सुशीला टाकभौरे ‘मुक्ति पर्व’ उपन्यास की भाषा और शिल्प के बारे में लिखती हैं कि “उपन्यास में अधिकांश रूप में विवरण शैली को अपनाया गया है। उपन्यास की कथा

¹ उधर के लोग, अजय नावरिया, पृष्ठ सं.-5

² छप्पर, जयप्रकाश कर्दम, पृष्ठ सं.-59

³ उधर के लोग, अजय नावरिया, पृष्ठ सं.-6

उपन्यासकार द्वारा दिये विवरण के अनुसार चलती है। पात्रों के बीच वार्तालाप सहज और स्वाभाविक है। कहीं-कहीं वार्तालाप अनावश्यक रूप से नियोजित और विस्तृत है। उपन्यास का उद्देश्य देश की आजादी के साथ दलितों के मुक्तिपर्व को सार्थक रूप में दिखाता है। देश की आजादी का दलितों का दलितों की मुक्ति से कोई सम्बन्ध नहीं है। आजादी के बाद पहली बार किसी दलित का शिक्षक बनना भी दलितों का मुक्तिपर्व है। ...उपन्यास के शिल्प और विधान के अनुरूप इसे बांधा गया है।”¹

मोहनदास नैमिशराय के ‘आज बाज़ार बन्द है’ उपन्यास की शैली के बारे में वेद प्रकाश लिखते हैं कि “उपन्यास में वेश्याओं की गरीबी, लाचारी और अभावों का तो जबर्दस्त चित्रण हुआ ही है, पुलिसवालों और समाज के ठेकेदारों की अमानवीयता और क्रूरता का भी सशक्त चित्रण हुआ है। भीतर कमरे में दो, तीन औरतें लापरवाही से बैठी थीं। गर्मी के कारण एक ने दोनों जांघों तक पेटीकोट खिसकाया हुआ था। दूसरी जैसे ब्लाउज के हुक लगवाना ही भूल गई थी। मुँह में पान, सुर्ख होठ, आंखों में काजल, उनके बीच भरे बदन की औरत। जिसकी छातियाँ खुली हुईं और बाल लापरवाही से बिखरे थे। किसी शायर की ग़ज़ल जैसी, उसकी आँखों में रहस्यपूर्ण मुस्कान थी। तीसरी ने खाली स्कर्ट पहना हुआ था और वक्षस्थल पर लापरवाही से गीला तोलिया रखा हुआ था। चौथी वेश्या किसी गृहणी की तरह सलिके से पूरे कपड़े पहन सोई हुई थी।”²

5.3 पत्रात्मक शैली

डॉ.धर्मवीर के ‘पहला खत’ उपन्यास पत्रात्मक शैली में लिखा गया है। इस उपन्यास यात्रात्मक शैली और पत्रात्मक शैली में लिखा हुआ उपन्यास है। उतर भारत से लेकर दक्षिण केरल के त्रिवेन्द्रम तक प्रकृति का वर्णन करते हुए, यात्रात्मक शैली में लिखा गया

¹ दलित साहित्य समग्र परिदृश्य, संपा. डॉ.मनोहर भंडारे, पृष्ठ सं.-218-219

² अपेक्षा, संपा. तेजसिंह, फरवरी-जून-2010, पृष्ठ सं.-58

है। इस उपन्यास के शिल्प के बारे में रमेश कुमार लिखते हैं कि “‘पहला खत’ में यदि रचनात्मक शक्ति होती तो वह किसी भी शिल्प में उपन्यास हो सकता था, उसके लिए लेखक को यह उल्लेख न करना पड़ता कि उसने हिन्दी में ऐसे उपन्यास पढ़े हैं, जो केवल खतों के माध्यम से पूरा किए गए हैं। यदि इससे पहले हिन्दी में पत्र शैली में उपन्यास न भी लिखे गए होते तो भी पहला खत उपन्यास हो सकता था। कोई भी अच्छा लेखक किसी भी विधा के सभी परंपरागत रूपों को तोड़कर उस विधा का एकदम नया रूप सामने ला सकता है। दलित साहित्य ने भी यही किया है। भाषा एवं शिल्प से लेकर कथ्य के सभी स्तरों तक दलित साहित्य ने साहित्य की सभी परंपरा एवं रुढ़ियों को तोड़कर रख दिया है।”¹ उपर्युक्त कथन से पता चलता है कि लेखक ने उपन्यास को पत्रात्मक शैली में अपनाया है। इस उपन्यास का अध्ययन करते समय मुझे भी लगा की यात्रा वृत्तांत में पत्र शैली में पढ़ रहा हूँ। डॉ. धर्मवीर ने दलित साहित्य को एक नई शैली को जन्म दिया है।

डॉ.विजयी के ‘सैनिक का खून’ उपन्यास में कमला अपने प्रेमी कवीन्द्र को पत्र लिखती है।

“प्रिय कवीन्द्र –

शोक, संतप्त हृदय से पत्र लिख रही हूँ, बड़ी मुश्किल से धैर्य बँधाया है। शायद तुम्हें विदित नहीं कि 21 मार्च को मेरे पिता जी का देहावसान हो गया। मैं काफी परेशान रही, तुम परेशान न होना। फिर रोने से कोई समस्या हल नहीं होती, हमारा कर्तव्य यही है कि उनके बताये मार्ग पर चले, जिससे उनकी आत्मा स्वर्ग में भी इठलाती रहे और उसकी मधुर कल्पना हमारा उत्साहवर्धन करे।

¹ अपेक्षा, संपा. जेतसिंह, अंक 30-31 पृष्ठ सं.-62

प्रियवर, आपने जो लिखा था कि मैं तुम्हारे बिना एक पल भी नहीं रह सकता। ठीक है, मेरा और तुम्हारा प्रेम है। प्रेम का नाम पवित्र है, इसका संबंध तो जन्म जन्मान्तर तक चलता है। बाहरी सौन्दर्य एवं माया मोह को यदि पीछे छोड़ दिया जाये तो सात्विक आनन्द की अनुभूति होती है, अन्यथा प्रेम नाम हमारे विकास के मार्ग में बाधा बन जाता है।

आपकी शुभचिन्तिका
कमला”¹

उपर्युक्त उद्धरण से स्पष्ट होता है कि उपन्यास में पत्रात्मक शैली में लिखा है।

मोहनदास नैमिशराय के ‘महानायक बाबा साहेब डॉ.अम्बेडकर’ उपन्यास में भाऊराव को डॉ.अम्बेडकर पत्र लिखते हैं कि-

“प्रिय भाऊराव,

आपका दिनांक 4-9-1946 का पत्र प्राप्त हुआ। मेरे पेट में कुछ गड़बड़ी पैदा होने की वजह से मुझे मेरे सभी कार्यक्रमों में परिवर्तन करना पड़ा। अब तबियत ठीक है। दिसम्बर तक मैं बंबई नहीं आ सकूँगा। दशहरे के सीमोल्लंघन के दिन मैंने बौद्ध धम्म की दीक्षा लेना तय किया है। मैं नवम्बर में काठमाण्डू में होनेवाली विश्व बौद्ध परिषद में जा रहा हूँ। इसलिए अब राजनीतिक काम करने के लिए मेरे पास समय नहीं है।

मुझे औरंगाबाद जाना है, लेकिन उधर मैं कब जा सकूँगा, इसके बारे में अभी कुछ तय नहीं है। उस संबंध में पूर्व सूचना आपको दूँगा ही।

दिल्ली में शेड्यूल्ड कास्ट्स फेडरेशन के कार्यकारी मंडल की बैठक लेने में कौन-सी कठिनाई है? यदि आप सभी को पसन्द हों तो आप इस बैठक को आसानी से दिल्ली से करवा सकते हैं। जिसकी वजह से मैं सफर की झंझट से बच सकूँगा। सितंबर के पहले सप्ताह में कार्यकारी मंडल की बैठक का आयोजन कीजिए। इस तरह आप मि.खोबरागड़े को सूचना दिजिए।

¹ सैनिक का खून, डॉ.विजयी, पृष्ठ सं.-17-30

आपका
बी.आर.अम्बेडकर”¹

उपर्युक्त उद्धरण से स्पष्ट होता है कि पत्रात्मक शैली को देख सकते हैं।

5.4 व्यंग्यात्मक शैली

मोहनदास नैमिशराय के ‘मुक्ति पर्व’ उपन्यास में अजय शर्मा प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण होता है। दलित जाति का सुनीत द्वितीय श्रेणी में उत्तीर्ण होता है। जो ब्राह्मण अजय शर्मा सह नहीं पाता है। तब सुनीत का मज़ाक उड़ाते हुए सहपाठी अजय शर्मा व्यंग्य से कहता है कि “अरे भइया, अब तो तेली-तमोली और ढेढ़-चमार के बच्चे भी पढ़ने लगे हैं।”²

5.5 अंग्रेजी शब्द

मोहनदास नैमिशराय के ‘ज़ख्म हमारे’ उपन्यास में भाषा की अपनी विशिष्ट भूमिका है। इस उपन्यास में भाषा केवल संप्रेषण का माध्यम नहीं है बल्कि उसमें भाषिक संवेदना और परिवेश के जीवंत चित्र उभरते हैं। उपन्यास के अधिकांश पात्र उच्च मध्यवर्गीय अथवा शहर से संबंधित होने से तथा विदेशीपन के प्रभाव के कारण उनकी भाषा में अंग्रेजी भाषा-शैली का प्रयोग देखा जा सकता है। अभिजात्य पात्रों द्वारा निजी परिवेश को वाणी देने के लिए तथा पात्रों की मानसिक आंतरिकता को व्यक्त करने के लिए अंग्रेजी का बहुत ज्यादा उपयोग किया गया है। यहाँ भाषा कथा की बारीकी और संवेदना गहरे स्तरों को व्यक्त करने में अत्यंत सक्षम बन गयी है। राजू परमार के क्लासमेट सोफिया जब दोनों कॉफी हाउस में मिलते हैं। राजू परमार से सोफिया बोलने लगती है कि “हैव ए कप ऑफ टी...एनीथिंग विद टी....राजू परमार बोलने लगता है नो सोफिया, इट इज सफीशिअंट।”³

¹ महानायक बाबा साहेब डॉ.अम्बेडकर, मोहनदास नैमिशराय, पृष्ठ सं.-280-281

² मुक्ति पर्व, मोहनदास नैमिशराय, पृष्ठ सं.-95

³ ज़ख्म हमारे, मोहनदास नैमिशराय, पृष्ठ सं.-104

उपर्युक्त कथन से पता चलता है कि आम बोलचाल की भाषा में भी अंग्रेजी के शब्द दिखाई पड़ते हैं।

अजय नावरिया के ‘उधर के लोग’ उपन्यास में अंग्रेजी का प्रभाव है। नायक होटल के बेरर से कहता है- “वन स्ट्रॉंग एंड वन लॉगर बीयर...एंड सम फिंगर चिप्स...सम नट्स।”¹

“गिफ्ट फॉर यू फ्रॉम योर फ्रेंड नो....नो..प्लीज...बिहेब योअरसेल्फ...।”² उपरोक्त उद्धरण से स्पष्ट है कि उपन्यास में अंग्रेजी का प्रयोग हुआ है।

जयप्रकाश कर्दम के ‘करुणा’ उपन्यास में रमेश के जेल जाने के बाद उसके छोटे भाई अखिल को घर का भार संभालना पड़ा। इसलिए किताब और अन्य सामान सस्ते दामों पर बेच कर फल बेचना शुरू करता है। “गाड़ी कार वाले लोगों को वह सर और औरतों को मेम साहब सम्बोधित करता। यदि अब भी कोई फल खरीदने में आनाकानी करता तो वह कहता, प्लीज गिव मी ए चान्स टू सर्व यू। एक बार आजमा कर तो देखो।”³ अखिल फल बेचते समय अंग्रेजी भाषा का प्रयोग करता है।

रूपनारायण सोनकर के ‘गटर का आदमी’ उपन्यास में सौरभ सेंट पीटर कान्वेंट थॉमस स्कूल के प्रिंसिपल वैलिंगटन के पास गरीब बच्चों को ले जाता है। वह प्रिंसिपल से अंग्रेजी में बात करता है, जैसे

“Sir, I am Saurabh

Yes why have you come here with these children (beggar child)

¹ उधर के लोग, अजय नावरिया, पृष्ठ सं.-8

² वही. पृष्ठ सं.-11

³ करुणा, जयप्रकाश कर्दम, पृष्ठ,-42

Sir, these aren't beggars. They are the pillars of our nation.

This school is not for such dirty boys.

What do you want ?

I want that you please permit these children to take admission in your school.”¹

लेखक ने संदर्भानुसार पात्रों के माध्यम से अंग्रेजी का उपयोग करने प्रयास किया है।

मोहनदास नैमिशराय के ज़ख्म हमारे उपन्यास में राजू परमार और सोफिया की बातचीत में अंग्रेजी का प्रयोग हुआ है। “हैव ए कप ऑफ टी।...एनीथिंग वद टी। नो सोफिया, इट इज सफीशिअंट”²

रुपनाराण सोनकर के ‘डंक’ उपन्यास में जसविन्दर खुराना का जेठ बलात्कार करता है। अमेरिकन पुलिस अंग्रेजी में जसविन्दर खुराना से कहते हैं कि

Your family members have raped you,

O, I see. It is a very serious matter. Indian have became so cruel towards ladies, please tell us what have happened with you

रोते हुए जलविन्दर खुराना ने कहा- Sir, all our family members including all the ladies are inhuman with me. All the male family members have raped me. I want to go to Indian, please help me. Don't weep dear lady.

¹ गटर का आदमी, रुपनारायण सोनकर, पृष्ठ सं.-24

² ज़ख्म हमारे, मोहनदास नैमिशराय, पृष्ठ सं.-104

I'll help you. The police of America will try to send you back India as soon as possible. Some formalities you have to full fill.

उपर्युक्त उद्धरण से स्पष्ट होता है कि प्रदेश और संदर्भ के साथ अंग्रेजी का प्रयोग किया है।

5.6 दलित पीड़ा की अभिव्यक्ति

दलित साहित्य में अंतर्निहित पीड़ा एवं चेतना को दलित स्वयं से जुड़ा हुआ पाते हैं। उन्हें अपनत्व भाव महसूस होता है। यह तभी संभव है जब रचना में अभिव्यक्त पीड़ा प्रामाणिक हो। भाषा के स्तर पर भी दलित साहित्य की अभिव्यंजना ज्यादा सजीव है। क्योंकि एक दलित की पीड़ा जिस सघनता से दूसरा दलित अनुभव कर सकता है, अन्य नहीं। इसलिए जब यह कहा जाता है कि एक दलित ही दलित की पीड़ा अभिव्यक्ति कर सकता है, तो कुछ भी गलत नहीं है। अब तक लिखा गया साहित्य चाहे वह दलित ने लिखा हो या गैर दलित ने, इसका प्रमाण है। जिस दुःखद सच्चाई को वहन करते हुए दलित अपना जीवन गुजार देता है, उसे समझने के लिए सिर्फ सहानुभूति ही काफी नहीं बल्कि उन स्थितियों में बदलाव के लिए छटपटाहट चाहिए जिसे दलित जानता है। लेकिन बदलाव का अस्त्र नहीं बन सकता। ऐसा क्षण आते ही उसकी प्राथमिकताएँ बदल जाती हैं। कभी-कभी यह संवेदना एक साजिश का अंग भी होती है वर्चस्व कायम रखने की साजिश। 'ज़ख्म हमारे' उपन्यास से लेखक जीवन के मानवीय मूल्यों को स्थापित करना चाहते हैं। मोहनदास नैमिशराय ने अपने उपन्यास में दलितों की दर्दनाक पीड़ा को वाणी दी है। शुरुआत में दंगों के दौरान मुसलमानों के साथ-साथ दलितों का भी कत्ल हुआ है जिसकी अभिव्यक्ति 'ज़ख्म हमारे' में बयां होती है। उनकी कैसी अभिव्यक्ति हो सकती यह बया करना भी मुश्किल है।

दलित साहित्य की अभिव्यक्ति जीवन से जुड़ी है। अभी तक का साहित्य इस अभिव्यक्ति को बया नहीं कर पाया। उसको हमेशा हाशिए पर रखने की कोशिश की गई। यहाँ तक कि मार्क्सवादी प्रगतिशील कहनेवाले भी इस वेदना, पीड़ा, दुःख को अभिव्यक्त नहीं कर पाये। हमारे देश का समाज जाति, धर्म, नस्ल से पीड़ित, अपमानित, शोषित है। यह हमारे सामने बहुत बड़ी समस्या है। इतनी भयानक समस्या है की इसकी ओर ध्यान देकर किसी ने भी इसका विरोध नहीं किया। इस समस्या में दलित जीवन को हमेशा बनाये रखने की कोशिश जरूर की गई और ऐसी परिस्थिति का निर्माण किया गया। यह समस्या दलितों के जीवन का हिस्सा बना दी गयी। बाद में इस समस्या का पोषण करके उसके व्यापक बनाने का कार्य मनु ने मनुस्मृति ग्रंथ के माध्यम से किया है। इस व्यवस्था को बढ़ावा देखकर उसको कानून का रूप मनु ने दिया है।

5.7 बोल-चाल की भाषा

उमराव सिंह जाटव के ‘थमेगा नहीं विद्रोह’ उपन्यास में दरियापुर गाँव तीन बड़े भागों में बँटा हुआ है। गाँव में अधिक जन संख्या जाटव और गूजरों की है। तीन तरह की बोलियाँ बोली जाती है। जैसे - “उदाहरण के लिए ‘कहाँ’ जैसे शब्द को जाटव उच्चारित करते हैं ‘कहाँ’ और गूजर उच्चारित कहते हैं ‘कौंहों’ कौन को कूण, डरौ को डर् यौ, पानी को पौणी, इत्यादि उच्चारण करते हैं। बेहद साधारण से वाक्य ‘कहाँ जा रहे हो’ को जाटव उच्चारित करते हैं ‘कहाँ जा रहयो है’ और गूजर उच्चारित कहते हैं ‘रै, कौंहों जा रहयौ है’ इस ‘रै’ में उनकी सारी उद्दंडता छिपी है इसलिए हर दूसरे-तीसरे वाक्य में उसे आवश्यक अनावश्यक रूप से जोड़ दिया जाता है”¹ उपर्युक्त उद्धरण से पता चलता है कि गाँव का पूरा उत्तर, पूरा पूर्व और आधे पश्चिम भाग में गूजर रहते हैं। दक्षिण और आधे पश्चिम में जाटव रहते हैं।

¹ थमेगा नहीं विद्रोह, उमराव सिंह जाटव, पृष्ठ सं.-23

“अरी भैना, वा बास मारते सौनपाल में खाला को पता नहीं कौन सौ खजानौ मिल गयौ, पर कहावत भी तो है कि ‘दिल लगे पीछे ना सूझै’ जभी तो कहें कि जिस सौनपाल की लोथ तो हाथ लगाने में सारा मुहल्ला भय खा रहा था उसी से अकेली बैयरबानी खाला जाकै चिपट गई, भला क्याँ ?”¹

उमराव सिंह जाटव के ‘थमेगा नहीं विद्रोह’ उपन्यास की भाषा शैली के बारे में डॉ. अजमेर सिंह काजल लिखते हैं कि “भाषा शैली की दृष्टि से उपन्यास एक सफल रचना है। सत्तर परिच्छेदों और तीन सौ पृष्ठों की वृहद कृति होने के बावजूद यह पाठकों को बाँधे रखने में सफल रहती है। रचना को ग्रहण करने की दृष्टि से उपन्यास की भाषा पाठक के लिए कोई समस्या नहीं बनती बल्कि उसका कथानक आगे क्या होगा, की उत्कंठा जगाता है। लेखक ने आवश्यकतानुसार मुहावरें, लोकोक्तियों, स्थानीय, उर्दू व अंग्रेजी के शब्दों का प्रयोग करके भाषागत माधुर्य पैदा किया है परिच्छेदों के प्रारंभ में की गई टिप्पणी, कथन और दोहे तथा संस्कृति के श्लोक रचनाकार के विविध आयामी व्यक्तित्व को दर्शाते हैं”²

रघुवीर सिंह के ‘आक्रोश’ उपन्यास में उमा से उसकी माँ कहती है कि “बेटी अब बहुत पढ़ लइयौ, घर के काम काज कू तौ इतनी पढ़ाई बहौत है। अब हम नाय जान दे तोय स्कूल, अब तौ हमें तेरे हात पीरे करने की फिकिर है।.... कुल्टा, पढ़ाकै का अपने घर की नाक कटवा देंगे। तेरे तो अब ही ते पर जम आये। लड़के के संग घूमेगी। बूढ़े बूढ़े न पढ़ावैगी। शरम ना लगै। पागल हो गई है। जा चल अन्दर बैठ पढ़ लियी बहुत।”³

¹ थमेगा नहीं विद्रोह, उमराव सिंह जाटव, पृष्ठ सं.-45-46

² अपेक्षा, संपा. तेजसिंह, जनवरी-जून-2010, पृष्ठ सं.-54

³ आक्रोश, रघुवीर सिंह, पृष्ठ सं.-148-149

‘मुक्ति पर्व’ उपन्यास में भंगी जाति का करतारा का बेटा उछाल सिंह स्कूल दखिला के लिए मास्टर पाण्डेय से गाँव की बोली में कहता है कि “थारे छोरा कू दाखला चइय्यै। करतारा की हिम्मत बढ़ी, हाँजी हाँ, म्हारे छोरा कू दाखला चइय्यै।”¹

‘सूअरदान’ उपन्यास में दलित लड़की सुनयना एस.डी.एम. से कहती है कि “सत्यनारायण त्रिपाठी बहुत जालिम मनई है। गरीबन पर बहुत जुलम ढावत है। अइसन करिकै वह बहुत खुश हवात है। साहिब मैं अइसन नीच मनई से छुटकारा चाहता रहवे। यह झूठ-मूठ जलय के जौन नौटंकी करत रहय न। मैं सुन लीन तेउ। पानी के डिब्बा की जगह मिट्टी ते तेल का डिब्बा मैं रख दिया रहयः। त्रिपाठिवा ने पानी का डिब्बा समझ कै मिट्टी का तेल वाला डिब्बा का ढक्कन खोल कै अपने ऊपर उड़ैल लीन्हैस। माचिस की डिबिया से तीली निकाल कै जला लीन्हैस। अउर अपने ऊपर आग लगा लीन्हैस। मोर आत्मा जुड़ा गई। वहकी कैद से म्वहका छुटकरा मिल गवा।” उपरोक्त उद्धरण से स्पष्ट होता है कि सुनयना की गाँव की बोली को समझ सकते हैं।

5.8 मुहावरे

मुहावरे का प्रयोग निश्चित समय में किया जाता है। जो शब्दों में अर्थ न रहकर एक रूढ़ अर्थ होता है। एक विशेष अर्थ अभिव्यक्त करता है। मुहावरे का प्रयोग समाज में स्वाभाविक अभिव्यक्ति में होता है। मुहावरे का संबंध साहित्य से कम और भाषा से अधिक होता है। यह भाषा के सामर्थ्य का प्रतीक के रूप में होता है। इन मुहावरों का प्रयोग हिन्दी दलित उपन्यासों में संदर्भ के अनुसार प्रयोग किया गया है।

रघुवीर सिंह ने ‘आक्रोश’ उपन्यास में मुहावरे का खूब प्रयोग किया है। गाँव के प्रधान रामदीन नेता से कहता है कि “वोट दिया को ही पड़ेगी आप चिन्ता न करें। मेरे बात आप

¹ मुक्ति पर्व, मोहनदास नैमिशराय, पृष्ठ सं.-96

‘पत्थर की लकीर मानो’। पूरी बस्ती का वोट मेरे कहे अनुसार ही पड़ेगा।”¹ उपर्युक्त उद्धरण से पता चलता है कि गाँव के प्रधान जी रामदीन बड़े वाक पटु थे।

जयप्रकाश कर्दम के ‘छप्पर’ उपन्यास में शिक्षा के बारे में सुकखा रमिया से कहता है कि “मैं गंवार आदमी क्या जानूँ पढ़ाई-लिखाई की बात। जैसे तू कुछ नहीं जानती वैसे ही मेरे लिए भी ‘काला अक्षर भैंस बराबर’ है।”² उपर्युक्त उद्धरण से पता चलता है कि लेखक ने उपन्यास में संदर्भ के अनुसार मुहावरे का प्रयोग किया है।

5.9 लोकोक्तियाँ

लोकोक्ति शब्द से स्पष्ट होता है कि लोक+उक्ति का अर्थ है लोक में प्रचलित उक्ति। उक्ति समाज में सदैव प्रचलित होती है। लोकोक्तियाँ भूतकाल के अनुभव से होता है। समाज में लोकोक्तियों की स्वीकृति होती है। उसके उदभव को किसी काल या स्थान से जोड़ नहीं सकते हैं। लोकोक्तियाँ अपने आप में पूर्ण वाक्य होता है। निम्न लिखित लोकोक्तियों को उपन्यासों में देख सकते हैं।

‘उधर के लोग’ उपन्यास में मास्टर अपनी पहली पत्नी वंदना के आत्महत्या करने के बाद दूसरी शादी संगीता के साथ करता है। संगीता के घर छोड़कर जाने पर उसकी माँ कहती है “तू घबरा मत तेरा मन सच्चा है, मैं जानती हूँ। संगीता को दुनिया की कोई ताकत, दूर नहीं ले जा सकती। वह मेरे सिर में हाथ फेरती रही। ‘मन चंगा तो कठौती में गंगा’। वो भी आ जाएगी, देर-सबेर।”³ उपरोक्त संदर्भ में लोकोक्ति का प्रयोग दिखाई देता है।

¹ आक्रोश, रघुवीर सिंह, पृष्ठ सं.-77

² छप्पर, जयप्रकाश कर्दम, पृष्ठ सं.-8

³ उधर के लोग, अजय नावरिया, पृष्ठ सं.-71

डी.पी.वरुण के ‘फूल बने अंगारे’ उपन्यास में “ठाकुर साहब ‘भूख में किवाड़ पापड़ की’ लोकोक्ति को सच करते हुये जूठन खा जाते हैं।”¹ पूरनपुर गाँव के ठाकुर अली मर्द सिंह अदालत के काम के लिए शहर जाता है लेकिन वहाँ पर काम होने में देर रात हो जाती है। सिपाही ठाकुर को चोर समझकर जेल में डालते हैं। अतः इस उपन्यास में भी लोकोक्तियों का प्रयोग हुआ है।

‘जस तस भई सबेर’ उपन्यास में संदर्भ के साथ कहावत का प्रयोग किया है।- “संयम और प्रेम की संवेदनशीलता उसमें ‘सोने पर सुहागा’ वाली कहावत चरितार्थ होती है। निश्चय ही इसी कारण हमारा पारस्परिक भावनापरक परन्तु वासनारहित नैसर्गिक झुकाव प्रगाढ़ प्रेम के रूप में साकार हुआ है।”²

उपरोक्त सभी उपन्यासों आत्मकथात्मक शैली, वर्णनात्मक शैली, पत्रात्मक शैली, व्यंग्यात्मक शैली, देशी बोली, अंग्रेजी शब्दों का प्रयोग, लोकोक्ति, मुहावरे आदि का सफल प्रयोग हुआ है। और इन उपन्यासोंओं में दलित समाज के प्रचलित प्रचुर मात्रा उभरकर सामने आये हैं।

¹ फूल बने अंगारे, डी.पी.वरुण, पृष्ठ सं.-70

² जस तस भई सबेर, सत्यप्रकाश, पृष्ठ सं.- 45

उपसंहार

पश्चिम में भले ही उपन्यास का जन्म मध्यवर्ग के उदय के साथ हुआ हो, लेकिन हिन्दी साहित्य में भारतेन्दु युग से उपन्यास का आरंभ होता है। उपन्यास का उदय प्रत्यक्षतः सामाजिक प्रतिरोध के आख्यान के रूप में और अप्रत्यक्षतः अंग्रेजी शासन के विरोध में हुआ। उपन्यास मानव जीवन का चित्रण करने वाली वह सशक्त विधा है जो मनुष्य जीवन अनुभवों और कल्पनाओं को भी एक रूप प्रदान करता है। उपन्यास साहित्य की यथार्थ और काल्पनिक विधा है। चूँकि मानव जीवन का परंपरागत प्रवाह ऐतिहासिक और आधुनिक काल में स्वभावतः समकालीन परिस्थितियों के अंतर्गत नवीन दिशा और क्षेत्र ग्रहण करता है। इसलिए समकालीन उपन्यासकार अनेक समस्याओं को लेकर रचनाएँ कर रहे हैं। परिणामतः हमारे समय में उपन्यास सर्वाधिक लोकप्रिय साहित्य विधा के रूप में प्रतिष्ठित है।

उपन्यास विधा में मानव जीवन की संपूर्ण अभिव्यक्ति जितनी संभव हो सकती है उतनी अन्य किसी साहित्य विधा में नहीं हो सकती क्योंकि उपन्यास में लेखन कार्य विस्तार से होता है और लेखक समाज के विविध क्षेत्रों तथा वर्गों के पात्रों व उनके साथ घटित होनेवाली स्थितियों के माध्यम से समाज, संस्कृति और सत्ता के सुंदर रूप से रचना करता है।

साहित्य और समाज का अविच्छिन्न सम्बन्ध है। ये दोनों एक दूसरे पर आश्रित रहते हैं। समाज यदि शरीर है तो साहित्य उसकी आत्मा है। समाज और जीवन का यथार्थ चित्रण बड़ी सूक्ष्मता और सहजता से साहित्य में अभिव्यक्त किया जाता है। साहित्य समकालीन परिवेश और परिस्थितियों का यथार्थ प्रतिबिंब प्रस्तुत करता है।

हिन्दी साहित्य में दलित साहित्य के प्रादुर्भाव से पहले दलित चेतना नाम की प्रक्रिया अवश्य मौजूद थी, पर उसमें दलित विमर्श की जो निश्चित रूप है वह भारतीय नवजागरण की चेतना से हुई है। इस अवधारणा के परिप्रेक्ष्य में दलित विमर्श की प्रक्रिया को बीसवीं सदी के हिन्दी उपन्यासों के संदर्भ में उद्घाटित करने की कोशिश की जाएगी कि किस प्रकार हिन्दी के प्रारंभिक उपन्यासकारों से लेकर इस सदी के अंतिम दशक तक के उपन्यासकारों ने दलित समाज की सामाजिक, आर्थिक समस्याओं पर अपने ढंग से विचार करते हुए उनका समाधान खोजने की कोशिश की। भारतीय नवजागरण के व्यापक प्रभाव तथा तत्कालीन दबावों के चलते कुछ सवर्ण साहित्यकारों ने दलितों के प्रति अपनी चिंता प्रकट करते हुए दलितों की सामाजिक, सांस्कृतिक और सत्ता के सवाल पर अपना ध्यान केंद्रित किया है। इस तरह हिन्दी दलित उपन्यासों की प्रक्रिया शुरू हुई।

आज के दलित चिंतक डॉ. बाबासाहेब अम्बेडकर को प्रेणास्रोत मानकर लेखन कार्य संभाले हैं। डॉ. अम्बेडकर की क्रांतिकारी विचारधारा ने दलितों, बहुजनों के जीवन में स्वतंत्रता, समता, भाईचारा एवं सामाजिक न्याय का अविर्भाव करने से उनके समाज के उत्थान के लिए विज्ञानवादी साहित्य निर्मित करने की प्रेरणा मिली। इससे डॉ. अम्बेडकर के महापरिनिर्वाण के बाद की स्थितियों ने एक स्फोटक रूप लिया और साहित्यिक क्षेत्र में क्रांतिकारी विचारों से भारतीय परंपरागत आभिजात्य साहित्य की अवधारणा को सफलतापूर्वक टक्कर दी।

दलित उपन्यास की निर्मिति के लिए पृष्ठभूमि का निर्माण डॉ. अम्बेडकर आंदोलन की देन है। डॉ. अम्बेडकर का जीवन एवं संघर्ष समाज के उत्थान के लिए था। स्वतंत्रता, समानता, बंधुता एवं सामाजिक न्याय की प्राप्ति के लिए था। दलित, पीड़ित, शोषित बहुजनों का जीवन सुखकर हो, सम्मानित स्तर पर वे आए एवं दुनिया में उन्हें प्रतिष्ठित जीवन प्राप्त हो तथा उनका अन्न, वस्त्र, निवास एवं स्वास्थ्य की आवश्यकताएं पूर्ण करते

हुए आने वाली सभी धार्मिक सामाजिक बाधाएँ दूर हों, उसके लिए था। जातिवाद, वर्णवाद, वर्गवाद की सामंती व्यवस्था ने सदियों से जिन्हें पशु से भी बदतर जीवन जीने के लिए विवश किया उनके विद्रोह को स्वाभिमान के संघर्ष की ऊर्जा प्रदान कर डॉ.बाबासाहेब अम्बेडकर ने अनेक आंदोलनों से गौरवपूर्ण ऐतिहासिक संघर्ष को पिरोकर सामाजिक उत्थान के कगार पर लाकर खड़ा किया। महाड़ का संग्राम, कालाराम मंदिर सत्याग्रह, पूणा पैक्ट, दलित परिषद तथा साहित्य लेखन, पत्रकारिता द्वारा (मूकनायक, बहिष्कृत भारत जनता) और हिन्दू धर्म त्यागकर बुद्ध के धम्म का स्वीकार करना उनके जीवन का बड़ा ही ऊँचा मुकाम था। जिसने तमाम दलितों, शोषित पिड़ितों को इस देश के संविधानिक अधिकारों के साथ मन के विकारों के सर्वनाश का, मानसिक उत्थान, जीवन की सच्चाई से रू-ब-रू होकर स्वयं के साथ ही समाज और देश के सर्वांगीण विकास के लिए अपना योगदान दिया।

उपन्यास लेखन का केंद्र बिंदू डॉ. अम्बेडकर के विचारों का समाजोत्थान रहा है। डॉ. अम्बेडकर के अनुसार समाज का निर्माण व्यक्ति से नहीं बल्कि वर्ग से होता है। वह इकईयों में बंटा हुआ वर्ग है जो हर क्षेत्र में विद्यमान है। यह उस वर्ग का हिस्सा है यानी सामाजिक व्यवस्था के अंतर्गत आने वाली सभी तरह के घटकों का समाहार ही समाज के निर्माण का आधार है। हिन्दी दलित उपन्यासों में अन्याय के विरुद्ध विद्रोह की बुलंद आवाज उठी है। धर्म के कर्मकांड, रूढ़िवाद, अंधश्रद्धाओं के खिलाफ धम्म-की नीतिमान वैज्ञानिक सोच व शिक्षा से मनुष्य का मनुष्य से भाईचारे का नाता प्रस्थापित करने की मूलगामी विचारधारा का प्रयास रहा है। और यह निरंतर जारी रहे इसके लिए लेखक, बुद्धिजीवी व चिंतक कार्यरत रहे हैं।

भारतीय समाज में व्यक्ति का सम्मान और अपमान उसकी योग्यता, दक्षता, गुणों, कर्मों और कार्यशैली के आधार पर नहीं बल्कि उसकी सामाजिक पहचान के आधार पर

होने से अधिकांश समाज किसी न किसी रूप में दासता व अपमान का शिकार है। समाज में कमजोर स्थिति होने के बावजूद दलित समाज शिक्षा, रोजगार, अधिकार, न्याय और आरक्षण के जरिए बनी पहचानों को न्यायसंगत व समतामूलक बनाने के लिए संघर्षपथ पर आता है। उनकी लड़ाई जिनसे है वे परंपरागत संपन्न और तथाकथित सम्मानित लोग हैं और जो संघर्ष कर रहे हैं परंपरागत विपन्न और तथाकथित अपमानित लोग हैं। लेकिन शिक्षा के द्वारा वह अपने संघर्ष को आज भी आगे बढ़ाने में तत्पर हैं।

भारतीय समाज में सवर्णों ने दलितों का सदियों से शोषण किया है। यह परंपरा आज भी जारी है। अस्पृश्यता को दलित उपन्यासकारों ने अपने उपन्यासों के माध्यम से विरोध करने की भरपूर कोशिश की है। उनके उपन्यासों में छुआछूत के विविध रूपों को हम देख सकते हैं। भारत के हर एक गाँव में सवर्ण संस्कृति की छाप दिखाई देती है। उच्च वर्ग के लोग समानता की परिभाषा तो देते हैं, लेकिन भीतर से कहीं-न-कहीं दलितों के प्रति हीन भावना दिखाई देती है। सनातनी धर्मावलंबी धर्म के नाम पर दलित, पीड़ित लोगों को शोषण करते हैं। जैसे ‘जस तस भई सबेर’ उपन्यास में पंडित हरसन्ना भगत दलित हंसा का शोषण करने के संदर्भ को हम देख सकते हैं।

जाति व्यवस्था के कारण दलितों को अनेक मुश्किलों का सामना करना पड़ता है। इसका उदाहरण जयप्रकाश कर्दम का ‘छप्पर’, मोहनदास नैमिशराय का ‘मुक्ति पर्व’ और रघुवीर सिंह का ‘आक्रोश’ उपन्यासों में हम देख सकते हैं। हमारे देश में युवक कड़ी मेहनत कर उच्च शिक्षा प्राप्त कर नौकरी तो पा लेते हैं परंतु वे कार्यलयों में भी स्वतंत्र जीवन नहीं बिता सकते, क्योंकि उनके पीछे जाति के नाम का ठप्पा लगा रहता है। इसका उदाहरण रघुवीर सिंह के ‘आक्रोश’ उपन्यास में बालदीन पात्र के माध्यम से हम देख सकते हैं।

भारत गाँवों का देश है। गाँव में अंधविश्वास कोने-कोने में भरा हुआ है। इसका दुष्परिणाम आज दलित समाज भोग रहा है। डी.पी.वरुण का ‘रक्त का रिश्ता’ उपन्यास में

धामपुर गाँव के गंगू चौधरी पुत्र संतान के लिए भगवान का कृपा पात्र मानता है। लेकिन डॉ.सुषमा गंगू चौधरी की पत्नी रमा को समझाती है कि संतान के लिए भगवान नहीं दाम्पत्य जीवन की जरूरत है। इसलिए दलितों के लिए शिक्षित होना जरूरी है। शिक्षा व्यक्ति को अपने जीवन शैली के प्रति सचेत करती है और जीवन-संघर्ष में उसे मजबूती प्रदान करती है। डॉ.अम्बेडकर ने उच्च शिक्षा ग्रहण नहीं की होती तो वह दलितों की इतनी लंबी और कठिन लड़ाई नहीं लड़ सकते थे, न उनके अधिकारों को संवैधानिक संरक्षण प्रदान करा सकते थे। इसलिए वे चाहते थे कि दलित लोग उनकी तरह उच्च शिक्षा प्राप्त करें।

समाज में दलितों द्वारा शोषण और अन्याय के खिलाफ आवाज उठाने पर उनके साथ मार-पीट करना, उनको प्रताड़ित करना बहुत सामान्य बात है। रघुवीर सिंह का ‘आक्रोश’ उपन्यास में भोयपुर गाँव के चमार जाति के लोग सब संगठित हो कर बेगारी का काम करना छोड़ने का निर्णय लेते हैं। लेकिन गाँव के ठाकुर सबक सिखाने के लिए तरह-तरह की योजना बना कर चमार बस्ती को आग लगवाते हैं। बाद में मजबूरन कुछ चमार जाति के लोग गाँव छोड़कर दूसरे गाँव चले जाते हैं। इस तरह की घटना को हम डी.पी.वरूण का ‘फूल बने अंगारे’ उपन्यास में भी हम देख सकते हैं।

भारत में दलित समाज सदियों से शोषण का शिकार रहा है और उनके शोषण का कोई एक रूप नहीं रहा है। शिक्षित नहीं होने के कारण दलितों को बेवकूफ बनाकर उनका शोषण किया जा रहा है। समाज में मनुष्य को जीवित रहने के लिए सबसे ज्यादा जरूरत अन्न और जल की है। यह केवल मनुष्य को ही नहीं बल्कि पशु पक्षियों को भी जरूरत है। लेकिन दलितों के संदर्भ में देखा जाये तो इस अन्न और पानी के लिए उन्हें कितना तड़पना पड़ता है। उदाहरण तौर पर मोहनदास नैमिशराय का ‘मुक्ति पर्व’ उपन्यास में सुनीत दलित जाति से होने के कारण स्कूल में अच्छा मानकर पानी पीने से भी उसको दूर रखा जाता है।

और नन्दलाल भारती के 'अमानत' उपन्यास में सच्चिदानन्द की बेरोजगारी और गरीबी के कारण उसके परिवार को पेट भरने के लिए दो जून की रोटी भी मिल नहीं पाती है।

भारत में दलितों का सदियों से लेकर आज तक धर्म और संस्कृति के नाम पर शोषण हो रहा है। जैसे सत्यप्रकाश का 'जस तस भई सबेर' उपन्यास में हंसा से हरसन्ना भगत कहता है तुम्हारे लिए लक्ष्मी देवी से बात करूंगा कह कर शोषण करता है। मोहनदास नैमिशराय के 'मुक्ति पर्व' उपन्यास में नामकरण को लेकर पण्डित केशव प्रसाद से बचने के लिए बंसी बेटे का नाम स्वयं रखता है।

आरक्षण का नाम सुनकर सवर्णों के मन में तूफान उठता है। हजारों वर्षों से पूरे देश की सुविधाएँ उन्होंने लूटीं, उसका उन्हें जरा भी ख्याल नहीं रहता है। लेकिन कुछ राहत दी गई तो उसके लिए जलन होती है। आज भी दलितों को कई जगह अयोग्य ठहराकर उसके हिस्से का काम सवर्ण चालाकी से कर रहे हैं। आज भी ठीक से दलितों का कोटा भरा नहीं जाता है। कुछ करण बताकर उसे वैसा ही रखते हैं और हो सके तो उतनी कोशिश कर अपने लोगों को अर्ध समय के तौर पर लगाया जाता है, जब तक चलेगा तब तक चलाया जाता है। रूपनाराण सोनकर के 'सूअरदान' उपन्यास में गाँव प्रधान का पद आरक्षण के मुताबिक एस.सी. के लिए रिजर्व होने पर भी सत्यनारायण त्रिपाठी उसको छोड़ना नहीं चाहता है। अधिकार में रहने के लिए योजना बना लेता है।

भारतीय समाज व्यवस्था में महिलाओं की स्थिति इतनी दुःखमय है कि उनको जीवन भर कष्ट ही उठाने पड़ते हैं। जिसमें दलित महिलाओं को दोहरे संताप और अन्याय सहने पड़ते हैं। महिलाओं के शोषण को आज भी सरेआम देखा जाता है। हरिजन, गिरिजन जाति में जन्म लेने के कारण वे अधिकतर सवर्ण पुरुषों के मारपीट का शिकार बनती हैं, साथ ही दुराचार, बलात्कार, सवर्ण पुरुषों की हवस का शिकार भी बनती हैं। चाहे खेत खलिहानों

में वह मजदूरी करे या अन्य कोई काम करे, गाँव के स्वर्ण समाज की नज़र दलित युवतियों पर ही होती है। वे दलित महिलाओं को भोग की वस्तु मात्र समझते हैं।

उपरोक्त बताई गई दलित महिलाओं के शोषण के विविध रूप जैसे अत्याचार और शोषण को लेकर दलित उपन्यासकारों ने दलित महिलाओं के पक्ष में कलम चलाई है। देवीदयाल सेन का 'मानव की परख', प्रेम कपाड़िया का 'मिट्टी की सौगंध', सत्यप्रकाश का 'जस तस भई सबेर', मोहनदास नैमिशराय के 'आज बाज़ार बन्द है' और 'क्या मुझे खरीदोगे' इत्यादि उपन्यासों को हम देख सकते हैं। भारतीय पुलिस व्यवस्था सदियों से सवर्णों का ही साथ देती आ रही है। दलितों पर होनेवाले अत्याचार को रोकने के लिए कोई ठोस कदम उठाने आगे नहीं बढ़ती। समाज में जब दलितों पर सवर्णों के द्वारा अन्याय-अत्याचार होते हैं, तब यह व्यवस्था ठाकुर, जमींदार आदि का साथ देती है। सत्यप्रकाश के 'जस सत भई सबेर' उपन्यास में पुलिस व्यवस्था की वास्तविकता को हम देख सकते हैं।

भारतीय दलित धार्मिक कट्टरता को न मानकर सत्य पर विश्वास करते हैं। वे कबीर, रैदास, फुले, डॉ.अम्बेडकर की विचारधारा से प्रभावित हैं। हिन्दूवादी संगठनों का मुख्य उद्देश्य है कि दलित हिन्दू धर्म में उच्च कहलाने वाले जातियाँ (ब्राह्मण, बनिया, ठाकुर, रेड्डी, नायडू, गौड) से कमजोर रहे और परंपरा से आ रही रीति-रिवाज को अपनाये, उनके विरुद्ध कोई कार्य न करें, इसके लिए वे सदैव सतर्क रहते हैं।

वैकल्पिक व्यवस्था और नई समाज व्यवस्था का निर्माण करने के लिए जिस तरह महत्मा ज्योतिबा फुले, डॉ.अम्बेडकर, कांशीराम, मायावती आदि ने जो संघर्ष किया है उसी संघर्ष को आज के दलित लेखक आगे की ओर बढ़ा रहे हैं। समाज में सबसे निम्न वर्ग दलितों का ही माना गया और उनका दर्जा निम्न होने के कारण उन्हें अधिकार से वंचित किया गया है। इस श्रेणी में दलित सबसे निम्न है। ऐसी साजिश भी की गई कि वह

चाहकर भी ऊपर न आ सके। इससे दलित लोगों को नाना प्रकार की यातनाएँ भोगनी पड़ती है। जन्म से कोई कनिष्ठ या अपवित्र नहीं होता लेकिन जाति प्रथा ने जन्माधारित श्रेष्ठता को एकमात्र मानदंड बनाकर ब्राह्मण को श्रेष्ठ और शूद्र को श्रेष्ठता से वंचित कर दिया है। इसी के फलस्वरूप आज दलित समाज में जागृति आयी। पूरे देश में आज पढ़ाई पर ध्यान दिया जा रहा है। दलित पुरुषों के साथ दलित महिलाओं में भी चेतना आ रही है। पढ़ी-लिखी दलित महिलाएँ अब नयी दुनिया की ओर कदम रख रही हैं। वे स्वतंत्र जीवन जीने के प्रयास में हैं। कावेरी का 'मिस रमिया' उपन्यास में रमिया अध्यापिका बनकर अपने समाज को सुधारने की कोशिश करती है।

भारतीय संस्कृति के पोषकों द्वारा आज जो भी लिखा जा रहा है वह शास्त्रीय मिथकों पर आधारित है। इनके साहित्य का सौन्दर्य शास्त्र देश की परिस्थितियों और यथार्थ के मानदंडों अथवा कसौटियों को कबूल ही नहीं करता वरन् उसे जान बूझकर अनदेखा करता है। सदियों से अर्जित जाति-अहम, विशिष्टता बोध इन्हें आज भी मनु को अपना आदर्श पुरुष मानने को बाध्य करता है। लेकिन अब दलित लोग जो कूड़ा करकट माने जाते थे, अशुभ और अस्पृश्य थे, लिखना-पढ़ना सीख गए हैं और उन्होंने अभिव्यक्ति की वह शक्ति हासिल कर ली है जो मनुष्य को जानवर से अलग करती है। अब दलितों में सोचने और लिखने की शक्ति आ गयी है। वे अपने पीड़ा को व्यक्त करने और न्याय मांगने लगे हैं।

हिन्दी दलित उपन्यासकारों पर सरसरी नज़र डालने पर हम यह समझ सकते हैं कि देश की उन्नति, देश के विकास के लिए हमें सबसे पहले जाति व्यवस्था को मिटाना चाहिए। साहित्य समाज का दर्पण है और इसी के बल पर दलित उपन्यासकारों ने दलितों की यथार्थ स्थिति का वर्णन करते हुए समाज के सच्चे दर्पण को हमारे सामने रखा है। और अबतक साहित्य में कभी देखा ही नहीं गया था।

दलित साहित्यकारों ने अपनी रचनाओं के माध्यम से पहली बार दलित साहित्य के अतर्गत कविता, कहानी, उपन्यास, नाटक और आत्मकथा जैसी कई विधाओं का सूत्रपात किया है। सभी ने दलित समाज की दशा का खुलकर चित्रण किया है। लेकिन जिस विधा ने हिन्दी साहित्य को सबसे ज्यादा प्रभावित किया और लोगों का ध्यान दलित साहित्य की तरफ आकर्षित किया है। वह विधा है उपन्यास। भारतीय समाज व्यवस्था में एक ऐसा भी समाज है जो सदियों से ब्राह्मणवादी व्यवस्था का शिकार रहा है। जिसके साथ सवर्ण समाज ने जानवर से भी बदतर व्यवहार किया है। जिन्हें हमेशा गुलाम बनने को मजबूर किया गया। धर्म, ईश्वर, पुनर्जन्म और पाप-पुण्य के नाम पर हमेशा इनका शोषण किया गया। दलित उपन्यासों में दलित परिवार और समाज के ग्रामीण और शहरी दोनों रूप देखने को मिलते हैं। लेकिन शहर की तुलना में गाँव का ही चित्रण अधिक है।

हिन्दी दलित उपन्यासों में हम देखते हैं कि भारतीय समाज जाति व्यवस्था में विभाजित है। वह जाति-उपजातियों में विभक्त है। दलित समाज अशिक्षित होने के कारण हजारों सालों से शोषित हुआ है। दलितों को शोषित करने के लिए ब्राह्मणों ने बड़ी ही चतुराई से दलितों को शिक्षा से वंचित किया। इसलिए दलितों को गुलाम बनकर रहना पड़ा। अब धीरे-धीरे शिक्षित हो रहे हैं। अपने अनुभवों को उपन्यास के माध्यम से सामने ला रहे हैं। इन उपन्यासों में दलितों की सामाजिक, सांस्कृतिक, राजनीतिक सत्ता, आर्थिक, धार्मिक और शैक्षणिक स्थिति का चित्रण किया गया है। पुरानी पीढ़ी ने अपने बच्चों को गाँव से शहर भेजकर पढ़ाना शुरू किया है। जैसे 'छप्पर' उपन्यास में चंदन, 'मुक्ति पर्व' में सुनीत, 'फूल बने अंगारे' में गबरू, 'रक्त का रिश्ता' में अजय, 'नीला आकाश' में नीलिमा और आकाश, 'जस तस भई सबेर' में शिवदास, 'आक्रोश' में बालदीन, 'अमानत' में सच्चिदानन्द और 'चाँद की हँसुली' उपन्यास में राजू इत्यादि उपन्यासों में शिक्षा को महत्व दिया गया है। यह लोग पढ़ाई होने के बाद अपने समाज के विकास के लिए संघर्ष करते हैं।

वर्णवादी-जातिवादी सवर्णों द्वारा दलित स्त्रियाँ व्यभिचार और बलात्कार का दंश भोगती हैं। जैसे 'मानव की परख' उपन्यास में रानी, 'कमलकान्त आई.ए.एस.' उपन्यास में चमेली, 'छप्पर' उपन्यास में कमला, 'जत तस भई सबेर' उपन्यास में धुसिया, 'मिट्टी की सौगन्ध' उपन्यास में शीला आदि बलात्कार का शिकार बनती हैं।

भारतीय समाज में कई जाति-उपजातियाँ मौजूद हैं। लेकिन इन उपन्यासों में कुछ ही दलित जाति-उपजातियों के सामाजिक, सांस्कृतिक और राजनीतिक घटनाओं का चित्रण हुआ है। जैसे महार, चमार, भंगी, नड, खटिक, जाटव इत्यादि। इसलिए उपन्यासों को संपूर्ण दलित जातियों का प्रतिनिधित्व तो नहीं कहा जा सकता है क्योंकि इन उपन्यासों में यह संकेत मिलता है कि अन्य दलित जातियों की स्थिति भी लगभग इन्हीं दलित जातियों के समान है। अन्य उपजातियों का आवश्यकता अनुसार प्रयोग हुआ है लेकिन पूर्णतः ये नहीं। साथ ही इन उपन्यासों में हिन्दू सवर्ण और मुस्लिम समुदायों के पारिवारिक और सामाजिक जीवन की स्थितियों का चित्रण मिलता है। इन उपन्यासों में भौगोलिक क्षेत्र दिल्ली, देहरादून, कलकत्ता, मथुरा, अयोध्या और झाँसी आदि दिखाये गये हैं।

सभी दलित उपन्यासों में अभिव्यक्त सामाजिक, सांस्कृतिक और राजनीतिक स्थिति के अच्छे और बुरे का स्वरूप दिखाई देता है। भारतीय समाज प्रधानता हिन्दू धर्म पर आधारित होने के कारण वह वर्ण व्यवस्था और उसके अंतर्गत जाति-उपजाति व्यवस्था पर टिका हुआ है। वर्ण व्यवस्था के अंतर्गत सबसे ऊपर क्रमशः ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र इन चार वर्णों में विभक्त हैं। इसके अलावा एक पंचम वर्ग भी है, जिसको अंत्यज या अस्पृश्य कहा जाता है। आज के समय में इन्हीं को दलित कहा जाता है। फिर इन दलितों में भी जाति-उपजाति का स्वरूप दिखाई देता है। इन चारों वर्णों की प्रत्येक श्रेणी में कई जातियों-उपजातियों का समूह है। इन समूहों का व्यवहार एक दूसरे के साथ भिन्न-भिन्न है। जैसे आंध्र प्रदेश में मादिगा(चमार) और माला। जो दलित इस समाज

व्यवस्था में सबसे निचले पायदान पर आते हैं। सदियों से दलित समाज वर्ण व्यवस्था के अन्तर्गत शोषित, उत्पीड़ित और उपेक्षित रहा है। जिस का स्वरूप आज भी हिन्दू समाज में देखा जा सकता है। वैदिक काल से लेकर आधुनिक काल तक दलितों की स्थिति में सामाजिक, सांस्कृतिक और राजनीतिक स्तर पर बदलाव तो हुआ है, जिसका श्रेय कबीर, रैदास, पेरियार, फुले और संविधान निर्माता डॉ.बी.आर. अम्बेडकर को जाता है। लेकिन सामाजिक स्तर पर भेदभाव, छुआछूत आज भी पूरी तरह खत्म नहीं हुआ है। जैसे आंध्र प्रदेश के अनंतपुर जिला अमरपुर, कर्नाटक के तुमकुर जिला इरकसंद्र गाँव, गुजरात का उनाकांड को देख सकते हैं।

संस्कृति से मानव-समाज की उस स्थिति का बोध होता है जिससे उसे सुधरा हुआ, उँचा, सभ्य आदि विशेषणों से आभूषित किया जा सकता है। सांस्कृतिक परिवेश का होना हर समाज व वर्ग के लिए अनिवार्य इसलिए होता है क्योंकि उसकी पहचान उसी से होती है। भारतीय समाज व्यवस्था भिन्न-भिन्न संस्कृतियों का समावेश है जिसके चलते संस्कृति की विभिन्नता का आभास होने लगता है। वैसे ही दलित समाज की भी एक अलग एवं प्राचीन संस्कृति है जिसका महत्व अपने आप में विशिष्ट है। दलित चूँकि एक प्राचीन सांस्कृतिक परिवेश से जुड़ी हुई वह इकाई है, जिनकी पहचान सिर्फ दास या सेवक के रूप में है। लेकिन उनकी जो संस्कृति है, वह अन्य उच्च वर्गों की संस्कृतियों से भिन्न है। उनके रीति-रिवाज, खान-पान, वेश-भूषा, रहन-सहन अन्य से अलग हैं। लेकिन यह भी देखा जा सकता है कि इनकी संस्कृति में भी ब्राह्मणवादी संस्कृति के वर्चस्व का प्रभाव है। क्योंकि वह ब्राह्मणवादी मानसिकता का शिकार होता आया है। लेकिन आज के संदर्भ में दलित साहित्य के लेखकों ने अपने उपन्यासों के माध्यम से उनकी पूर्व एवं प्रतिष्ठित संस्कृति को बनाये रखने की भरपूर प्रयास कर रहे हैं। उपन्यास के माध्यम से रचनाकार उन सभी अनछुए विषयों को स्पर्श करता है। जिनके समाज में रहते हुए भी अनदेखा कर दिया जाता है। आज दलित समाज में जिस चेतना की बहस हो रही है, उसकी प्रेरणा डॉ.बी.आर.

अम्बेडकर द्वारा ही मिली है। उन्होंने कहा था कि दलित समाज का उद्धार करना हो तो पहले उन्हें सामाजिक न्याय के साथ राजनीतिक सत्ता को हासिल करनी होगी। तभी यह समाज गौरवपूर्ण जीवन जीने की आशा कर सकता है।

मार्क्स, अम्बेडकर जैसे साम्यवादी और समाजवादी चिंतकों ने राष्ट्र या समाज में सत्ता की स्थापना एवं वर्चस्ववादी शक्तियों का उस पर कब्जे को लेकर काफी चिंतित हुए थे। वे चाहते थे कि सत्ता किसी एक वर्ग या विशेष जाति के हाथों में न होकर देश व समाज के उन सभी वर्गों व जातियों के हाथ में होनी चाहिए जिनका सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक एवं आर्थिक विकास न हुआ हो। ऐसे समाज के लिए राजनीतिक सत्ता का होना आवश्यक ही नहीं बल्कि अनिवार्य भी है। लेकिन सदियों से लेकर आज तक भी सत्ता उन्हीं वर्गों में स्थित है, जिन्होंने सत्ता हस्तांतरण के विरोध में खड़े हैं।

हिन्दी दलित उपन्यासों में हम अक्सर देख सकते हैं कि समाज, संस्कृति, सत्ता के सवाल को उठाया जाता है। प्रत्येक जाति का समाज अपनी सामाजिक स्थिति को बेहतर बनाना चाहता है। वह सामाजिक स्थिति के बेहतर के लिए दलित समाज को अगर आगे बढ़ना हो तो उस के लिए सत्ता का होना आवश्यक हो जाता है क्योंकि भारतीय व्यवस्था में सत्ता का ही प्रमुख स्थान होता है। और सभी कार्य इसी सत्ता के चलते संपन्न किये जाते हैं। दलित उपन्यासों के माध्यम से उन सभी दलित समाजों को जागृत किया जा रहा है जिनकी सामाजिक स्थिति में सुधार के लिए सत्ता की आवश्यकता है। दलित समाज के लिए सत्ता की आवश्यकता को विशेष स्थान दिया जा रहा है।

डॉ.अम्बेडकर के अथक प्रयत्नों के कारण आज दलित समाज आरक्षण का लाभ उठा पा रहा है। आरक्षण सिर्फ जाति आधारित नहीं बनाया गया। यह सामाजिक, सांस्कृतिक, आर्थिक एवं राजनीतिक स्थिति के आधार पर उसमें उन्हें समान अधिकार व

भागिदारी दिलाने के उद्देश्य से बनाया गया है। जिसका उदाहरण हमें मोहनदास नैमिशराय का उपन्यास 'महानायक बाबा साहेब अम्बेडकर' में मिलता है।

भाषा एक संप्रेषण का माध्यम ही नहीं करता बल्कि वह अपने मनोभावों का धुरी भी। हिंदी दलित उपन्यासों की भाषा मुख्यधारा की भाषा से भिन्न इस लिए नजर आता है क्योंकि वह संस्कृत निष्ठ भाषा का उपयोग नहीं होता। इन उपन्यासों प्रयुक्त भाषा की विशेषता यह है कि वह देशज, अंत्यज और सामान्य लोक भाषा प्रयोग अधिक मिलता है। दलित समाज की भाषा या बोली अधिक तर सामान्य सी होती है। क्योंकि वह सदियों से शिक्षा से वंचित रहे हैं। जिसके फलस्वरूप वह अपने परिवेश और अपने सामाजिक बोल चाल की भाषा का अधिक उपयोग करते दिखाई पड़ता है। आज दलित साहित्य ने कुछ अपने मानदंड निर्धारित कर उसके अनुरूप लिखने की कोशिश में है। जिसके द्वारा उसका शिल्प भी बदलता दिखाई देता है। आज भाषा के स्तर पर दलित लेखक पहले से अधिक सतर्क दिखाई देते हैं। वह हिंदी के सथ-साथ क्षेत्रिय बोलियों का भी इस्तेमाल कर रहे हैं। उर्दू-फारसी, अंग्रेजी आदि शब्दों का भी उपयोग संदर्भानुसार करने में सक्षम दिखाई पड़ते हैं। दलित लेखक अपनी रचनाओं में विभिन्न शैलियों का भी प्रयोग कर रहे हैं। जैसे- आत्मकथात्मक शैली, वर्णनात्मक शैली, पत्रात्मक शैली और व्यंग्यात्मक शैली आदि। दलित उपन्यासों में इन शैलियों के अतिरिक्त प्रचलित लोकोक्तियों, मुहावरों का भी प्रयोग पात्रों के साध्यम से संदर्भानुसार किया गया है।

इस शोध प्रबंध में समाज, संस्कृति और राजनीति के बारे में संक्षिप्त परिचय दिया गया है। समाज और साहित्य के संबंधों को दर्शाया गया है क्योंकि विषय के अनुरूप उसकी जानकारी जरूर होनी चाहिए। जब तक समाज का ज्ञान नहीं होगा तब तक संपूर्ण विषय को समझना कठिन हो सकता है अतः सामाजिक पक्षों को समझना आवश्यक है।

सन्दर्भ-ग्रंथ सूची

1. आधार ग्रंथ

	उपन्यास	लेखक	संस्करण	प्रकाशन
1	अमानत	नन्दलाल भारती	2007	इण्डियन सोसाइटी ऑफ आथर्स(इंसा), रजि कार्यालय, बी-490, सेक्टर 19, नोएडा 201301.(उ.प्र)
2	आज बाज़र बन्द है	मोहनदास नैमिशराय	2004	वाणी प्रकाशन, 21-ए, दरियागंज, नयी दिल्ली- 110002
3	आक्रोश	रघुवीर सिंह	2004	साहित्य संस्थान, ई- 10/660, उत्तरांचल कालोनी, लोनी बॉर्डर, गाजियाबाद-201102
4	उधर के लोग	अजय नावरिया	2008	राजकमल प्रकाशन प्र.लि. 1-बी, नेताजी सुभाष मार्ग, नई दिल्ली- 110002
5	कड़वी यादें	ओम प्रकाश गौतम	1988	आशु पाकेट बुक्स, ए- 137, श्याम पार्क एक्सटेन्शन, साहिबाबाद- 201005
6	करुणा	जयप्रकाश कर्दम	1986-	कंचन प्रकाशन, 30/64,

			2007	गली नं-8, विश्वास नगर, शाहदरा, दिल्ली-32
7	कमलकान्त, आई.ए.एस.	प्रियदर्शी	2003	नीलाभ प्रकाशन, 5- खुसरो बाग रोड, इलाहाबाद-211001
8	क्या मुझे खरीदोगे	मोहनदास नैमिशराय	2005	श्री.नटराज प्रकाशन, ए-507/12, करतार नगर, बाबा श्यामरिरी मार्ग साउथ गांडी एक्सटेंशन, दिल्ली-110053
9	गटर का आदमी	रुपनारायण सोनकर	2015	अनिरुद्ध बुक्स 19, टैगोर मार्ग, केवल पार्क, आजादपुर, दिल्ली- 110033
10	चाँदी की हँसुली	नन्दलाल भारती	2011	मनोरमा साहित्य सेवा आजाददीप 15-एम, वीणा नगर, इंदौर- 452010
11	छप्पर	जयप्रकाश कर्दम	1994- 2007	राहुल प्रकाशन 30/64, गली न.8, विश्वास नगर शाहदरा, दिल्ली-110032
12	जस तस भई सबेर	सत्यप्रकाश	1998	कामना प्रकाशन सी-19, डी.डी.ए (L.I.G)फ्लैट्स ईस्ट

				ऑफ लोनी रोड, दिल्ली-110093
13	ज़ख्म हमारे	मोहनदास नैमिशराय	2011	वाणी प्रकाशन, 4695, 21-ए, दरियागंज, नयी दिल्ली-110002
14	डंक	रुपनारायण सोनकर	2009	अनुरुद्ध बुक्स, 19, टैगोर मार्ग, केवल पार्क, आजादपुर, दिल्ली- 110033
15	थमेगा नहीं विद्रोह	उमराव सिंह जाटव	2008	वाणी प्रकाशन, 4695, 21-ए, दरियागंज, नयी दिल्ली-110002
16	नीला आकाश	सुशीला टाकभौरे	2013	श्री.आर.बी.सिंह विश्वभारती प्रकाशन, धनवटे चेम्बर्स, सीताबडी, नागपुर-440012
17	पहला खत	धर्मवीर	1991	समता प्रकाशन, 30/64, गली नं.8, विश्वास नगर, शाहदरा, दिल्ली-110032
18	फूल बने अंगारे	डी.पी.वरुण	2002	ह्यूमन सर्विस इण्डिया चैरिटेबल ट्रस्ट ऑफ, सिद्धार्थ हाउस, एल.डी.ए.कोलोनी, कानपुर रोड, लखनऊ
19	भगोड़ू पुजारिन	डॉ.रामस्वरूप	2012	रामस्वरूप संखवार, पोस्ट

		संखवार		व टाउन, झीझक, कानपुर देहात
20	मानव की परख	देवीदयाल सेन	1954	रामलाल पुरी, आत्माराम एण्ड संस प्रकाशन, काश्मीरी गेट, दिल्ली-3
21	महानायक बाबा साहेब डॉ.आम्बेडकर	मोहनदास नैमिशराय	2012	धम्म ज्योति चैरिटेबलट्रस्ट, गली नं.6 डी-ब्लॉक, हर्ष विहार, दिल्ली-110093
22	मिट्टी की सौगंध	प्रेम कपाड़िया	1995	भारतीय सामाजिक संस्थान, 10- इस्टीट्यूशनल एरिया लोदी रोड, नई दिल्ली- 110003
23	मिस रमिया	कवेरी	2007	आकाश पब्लिशर्स एण्ड डिस्ट्रीब्यूटर्स, ई-10/663, उत्तरांचल कालोनी, लोनी बॉर्डर, गाजियाबाद- 201102
24	मुक्ति पर्व	मोहनदास नैमिशराय	2011	अनुराग प्रकाशन, 4760-61, द्वितीय तल, 23, अंसारी रोड दरियागंज, नई दिल्ली- 110002
25	रक्त का रिश्ता	डी.पी.वरुण	2002	ह्यूमन सर्विस चैरिटेबल

				ट्रस्ट ऑफ इण्डिया
26	वीरांगना झलकारी बाई	मोहनदास नैमिशराय	2005- 2011	राधाकृष्ण प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड, 7/31, अंसारी रोड, दरियागंज, नई दिल्ली- 110002
27	सूअरदान	रुपनारायण सोनकर	2013	सम्यक प्रकाशन 32/3, पश्चिमपुरी, नई दिल्ली-110063
28	सैनिक का खून	डॉ.विजयी	2000	आकांक्षा प्रकाशन डी-150, न्यू सीलमपुर, दिल्ली-110053
29	हिडिम्ब	एस.आर.हरनोट	2011	आधार प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड, एस.सी.एफ.267, सेक्ट- 16, पंचकूला-134113

2. सहायक-ग्रंथ

क्र.सं	पुस्तक	लेखक	संस्करण	प्रकाशन
1	अम्बेडकरवादी	संपा.तेजसिंह	सं.2008	स्वराज

	विचारधारा और समाज			प्रकाशन, दिल्ली
2	अम्बेडकरवादी साहित्य की अवधारणा	तेज सिंह	2012	प्रकाशक लोकमित्र, दिल्ली
3	अम्बेडकरवादी स्त्री-चिंतन	संपा.-तेज सिंह	2011	स्वराज प्रकाशन, नई दिल्ली
4	आधुनिक भारत में सामाजिक परिवर्तन	एम. एन. श्रीनिवास	2011	राजकमल प्रकाशन प्रा. लि., नई दिल्ली
5	आधुनिक साहित्य में दलित विमर्श	देवेन्द्र चौबे	2009	ओरियंट ब्लैकस्वान प्रा. लि., नई दिल्ली
6	ग्रामीण समाजशास्त्र	वीरेन्द्र प्रकाश शर्मा	1999	पंचशील प्रकाशन, जयपुर
7	ग्रामीण सामाजिक संरचना और परिवर्तन	डॉ. सुधीर कुमार राय	2006	नीलकमल प्रकाशन, गोरखपुर (यू.पी.)
8	डॉ. अम्बेडकर के भाषण	संपा. एस.एस गौतम	2009	गौतम बुक सेण्टर, दिल्ली
9	डॉ. बाबासाहेब आम्बेडकर	डॉ. सूर्यनारायण रणसुभे	2012	राधाकृष्ण प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड, नई दिल्ली
10	डॉ. अम्बेडकर के भाषण	भगवान दास	2010	गौतम बुक सेन्टर, नई दिल्ली
11	दलित साहित्य की अवधारणा	कंवल भारती	2006	बोधिसत्त्व प्रकाशन, रामपुर
12	दलित दृष्टि – गेल ओमवेट	अनु.- रमणिका गुप्ता एवं अकिल कैस	2011	वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली
13	दलित और प्रजातान्त्रिक क्रान्ति	गेल ओमवेट (अनु.- नरेश भार्गव)	2009	रावत पब्लिकेशन, जयपुर

14	दलित समाज और संस्कृति	तेजसिंह	2011	आधार प्रकाशन प्रा.लि., पंचकूला (हरियाणा)
15	दलित दर्शन	संपा.रमणिका गुप्ता,ज्ञान सिंह बल	2009	नेहा प्रकाशन, दिल्ली
16	दलित राजनीतिक और नेता	एस.एम.गौतम	2015	सिद्धार्थ बुक्स, दिल्ली
17	दलित नारी : एक विमर्श	संपादन ज्ञानेन्द्र रावत	2014	सम्यक प्रकाशन, नई दिल्ली
18	दलित साहित्य का समाजशास्त्र	हरिनारायण ठाकुर	2010	भारतीय ज्ञानपीठ, नयी दिल्ली
19	दलित साहित्य का सौन्दर्यशास्त्र	ओमप्रकाश वाल्मीकि	2011	राधाकृष्ण प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड, नई दिल्ली
20	दलित विमर्श की भूमिका	कँवल भारती	2007	इतिहासबोध प्रकाशन, इलाहाबाद
21	दलित साहित्य का स्त्रीवादी स्वर	डॉ. विमल थोरात	2010	अनामिका पब्लिशर्स एंड डिस्ट्रीब्यूटर्स (प्रा.) लि., नई दिल्ली
22	दलित साहित्य के प्रतिमान	डॉ. एन. सिंह	2012	वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली
23	दलितों का इतिहास(अतीत एवं वर्तमान के आईने में)	डॉ. मुकेश भूषण	2010	राधा पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली
24	दलित चेतना : साहित्यिक एवं	डॉ. रमणिका गुप्ता	2011	शिल्पायन प्रकाशन, नई दिल्ली

	सामाजिक सरोकार			
25	दलित साहित्य समग्र परिदृश्य	सं.- डॉ. मनोहर भंडारे	2013	स्वराज प्रकाशन, नई दिल्ली
26	दलित साहित्य चिंतन के विविध आयाम	डॉ. एन. सिंह	2009	हिन्दी बुक सेन्टर, नईदिल्ली
27	दलित मुक्ति आन्दोलन सीमाएं और संभावनाएं	डॉ. सुभाष चन्द्र	2010	आधार प्रकाशन प्रा. लि., पंचकूला (हरियाणा)
28	दलित विमर्श के विविध आयाम	डॉ.वीरेन्द्र सिंह यादव	2010	राधा पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली
29	दलित वैचारिकी की दिशाएं	संपा.- बट्टी नारायण	2008	राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली
30	दलित साहित्य एक मूल्यांकन	प्रो. चमनलाल	2009	राजपाल एण्ड सन्ज, दिल्ली
31	दलित साहित्य : बुनियादी सरोकार	डॉ. कृष्णदत्त पालीवाल	2009	वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली
32	दलित हस्तक्षेप (रमणिका गुप्ता)	संपा.-ओमप्रकाश वाल्मीकि	2008	अक्षर शिल्पी, दिल्ली
33	धर्म बनाम अंधविश्वास	मुद्राराक्षस	2011	गौतम बुक सेन्टर, दिल्ली
34	नातेदारी एवं विवाह	रॉबिन फॉक्स (अनु.- डॉ. रामकृष्ण वाजपेयी)	1992	हिंदी माध्यम कार्यान्वय निदेशालय, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली

35	परिवार में सौहार्द्र	क्षमा गोस्वामी	2005	ज्ञान भारती प्रकाशक, दिल्ली
36	प्रसार एवं ग्राम	डॉ. ओमप्रकाश दाहमा	1967	रामप्रसाद एण्ड संस, आगरा
37	प्राचीन भारत का इतिहास	डॉ. अमर कान्त सिंह	2012	मेखला प्रकाशन, दिल्ली
38	प्राचीन भारतीय धर्म : उद्भव एवं स्वरूप	डॉ. आनन्द सिंह	2010	हिंदी माध्यम कार्यान्वय निदेशालय, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली
39	प्राचीन भारत का परिचय	रामशरण शर्मा	2009	ओरियंट ब्लैकस्वान प्रा. लि., नई दिल्ली
40	पेरियार ई.वी. रामास्वामी नायकर जीवन-दर्शन	अजय कुमार	2009	गौतम बुक सेन्टर, दिल्ली
41	बाबासाहेब डॉ. अम्बेडकर सम्पूर्ण वाङ्मय (खंड-1 से 21 तक)	प्रकाशन-डॉ. अम्बेडकर प्रतिष्ठान	अक्टूबर 2013	सामाजिक न्याय और अधिकारिता मंत्रालय, भारत सरकार, नई दिल्ली
42	बीसवीं सदी में दलित समाज	रामविलास भारती	2010	अनामिका पब्लिशर्स एंड डिस्ट्रीब्यूटर्स प्रा. लि., नई दिल्ली
43	भारत में समाज	डॉ. अभिषेक शर्मा	2012	डी. पी. एस. पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली

44	भारत में परिवार, विवाह और नातेदारी	शोभिता जैन	2010	रावत पब्लिकेशन्स, जयपुर
45	भारत की सामाजिक समस्याएँ	प्रकाश नारायण नाटाणी, प्रज्ञा शर्मा	2000	पोइंटर पब्लिशर्स, जयपुर
46	भारत की सांस्कृतिक विरासत	डॉ. दिनेश मांडोत	2010	अंकित पब्लिकेशन्स, जयपुर
47	भारत की प्रारम्भिक संस्कृतियाँ एवं सभ्यताएँ	डॉ. हरिनारायण दुबे	2003	शारदा पुस्तक भवन, इलाहाबाद
48	भारतीय इतिहास	अबदुस्सलाम	2013	डी. पी. एस. पब्लिकेशन, नई दिल्ली
49	भारतीय ग्रामी-समाजशास्त्र	ए. आर. देसाई (अनु.- हरिकृष्ण रावत)	1997	रावत पब्लिकेशन्स, जयपुर
50	भारतीय सामाजिक-व्यवस्था	राम आहूजा	2015	रावत पब्लिकेशन्स, जयपुर
51	भारतीय समाज एवं विचारधाराएँ	डी.आर. जाटव	1997	नेशनल पब्लिशिंग हाउस, जयपुर
52	भारतीय समाज : संरचना और परिवर्तन	शम्भूलाल दोषी और प्रकाश चन्द्र जैन	2007	नेशनल पब्लिशिंग हाउस, जयपुर
53	भारतीय संस्कृति की रूप रेखा	पृथ्वीकुमार अग्रवाल	2000	विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी
54	भारतीय संस्कृति	शिवदत्त ज्ञानी	2003	राजकमल प्रकाशन, दिल्ली

55	भूगोल	अजय कुमार	2013	उपकार प्रकाशन, आगरा, यू.पी
56	मध्यकालीन भारत	संपादक- इरफ़ान हबीब	1993	राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली
57	मानव समाज	राहुल सांकृत्यायन (संशोधनकर्ता- महादेव साहा)	1986	लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद
58	मुख्यधारा और दलित साहित्य	ओमप्रकाश वाल्मीकि	2010	सामयिक प्रकाशन, नई दिल्ली
59	मनुष्यता के आईने में दलित साहित्य का समाजशास्त्र	निरंजन कुमार	2010	अनामिका पब्लिशर्स एंड डिस्ट्रीब्यूटर्स (प्रा.) लिमिटेड, नई दिल्ली
60	शास्त्रीय समीक्षा के सिद्धांत	गोविन्द त्रिगुणायत	1962	भारत साहित्य प्रकाशन मन्दिर
61	शूद्रों का प्राचीन इतिहास	रामशरण शर्मा	2009	राजकमल प्रकाशन प्रा. लि., नई दिल्ली
62	सत्ता संस्कृति और दलित सौंदर्यशास्त्र	सूरज बड़तया	2010	अनामिका पब्लिशर्स एंड डिस्ट्रीब्यूटर्स प्रा. लि., नई दिल्ली
63	साहित्य और दलित दृष्टि मैनेजर पाण्डेय	संपा.सर्वेश कुमार मौर्य	2015	स्वराज प्रकाशन, नई दिल्ली
64	समकालीन नारीवाद और दलित स्त्री का प्रतिरोध	अनिता भारती	2013	स्वराज प्रकाशन, नई दिल्ली
65	संस्कृति के चार अध्याय	रामधारी सिंह	2008	लोकभारती प्रकाशन,

		‘दिनकर		इलाहाबाद
66	हाशिये की वैचारिकी	संपा.- उमाशंकर चौधरी	2008	अनामिका पब्लिशर्स एंड डिस्ट्रीब्यूटर्स प्रा. लि., नई दिल्ली
67	हिन्दी दलित साहित्य	मोहनदास नैमिशराय	2011	साहित्य अकादेमी नई दिल्ली
68	हिंदी साहित्य और संवेदना का विकास	रामस्वरूप चतुर्वेदी	2006	लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद
69	हिंदी आलोचना की पारिभाषिक शब्दावली	डॉ. अमरनाथ	2009	राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली
70	हिंदी दलित कथा-साहित्य : अवधारणाएँ और विधाएँ	डॉ. रजत रानी ‘मीनू’	2011	अनामिका पब्लिशर्स एण्ड डिस्ट्रीब्यूटर्स (प्रा.) लिमिटेड, नई दिल्ली
71	हिन्दी का गद्य-साहित्य	डॉ. रामचन्द्र तिवारी	2006	विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी
72	हिन्दी साहित्य का इतिहास	संपा.- डॉ. नगेन्द्र	2005	मयूर पेपरबैक्स, नोएडा
73	हिन्दू बनाम हिन्दू	एम. राममनोहर लोहिया	2012	लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद

3. पत्र-पत्रिकाएँ

1	अपेक्षा	संपा.-तेज सिंह	वर्ष 9, अंक 30-31, जनवरी-जून 2010	27-घौंडली, कृष्णा नगरं, दिल्ली-
---	---------	----------------	-----------------------------------	---------------------------------

				110051
2	अपेक्षा	संपा.-तेज सिंह	वर्ष 10, अंक 48, जनवरी-मार्च 2012	27-घौंडली, कृष्णा नगरं, दिल्ली- 110051
3	अपेक्षा	संपा.-तेज सिंह	वर्ष 11, अंक 45, अक्टूबर-दिसंबर 2013	27-घौंडली, कृष्णा नगरं, दिल्ली- 110051
4	दलित साहित्य (वार्षिकी) 2005	संपा.- डॉ. जयप्रकाश कर्दम	वर्ष : 7, अंक : 7	बी-634, डी.वी.ए.फ्लैट्स, ईस्ट ऑफ लोनी रोड, दिल्ली 110093
5	हंस	संपा.राजेंद्र यादव	फरवरी- 2010	अक्षर प्रकाशन प्रा.लि.,2/36 अन्सारी रोड, दरियागंज. दिल्ली- 110002

4. वेब-सामग्री

1	https://hi.wikipedia.org/s/eo1
---	---

2	https://hi.wikipedia.org/wiki/जाति
3	http://www.hindikiduniya.com/india/social-issues/gender-inequality/
4	http://www.hindisamay.com/

द्वितीय अध्याय

हिन्दी दलित उपन्यासों
में चित्रित समाज

तृतीय अध्याय

हिन्दी दलित उपन्यासों में
चित्रित संस्कृति

चतुर्थ अध्याय

हिन्दी दलित उपन्यासों में
चित्रित सत्ता के सवाल

पंचम अध्याय

हिन्दी दलित उपन्यास :

भाषा एवं शिल्प